ओ३म्

सामवेदसंहितायाम्

तृतीय उत्तरार्चिकः प्रथमोऽध्यायः

इस उत्तरार्चिक में बहुत सी छन्दआर्चिक की ऋचायें पुनर्वार आई हुई भी देखी जाती हैं, इस का कारण यह भी है कि छन्दआर्चिक में गानग्रन्थ के साम सिद्ध होने के लिये एक २ ऋचा आई थी, परन्तु यहां उत्तरार्चिक में स्तोमों की सिद्धि के लिये दो ऋचाओं के द्व्यृच वा प्रगाथ और तीन ऋचाओं के तृच आदि सूक्तों के प्रकार से कहने की आवश्यकता थी, जिन स्तोमों का विस्तारपूर्वक वर्णन ताण्ड्यमहाब्राह्मण के दूसरे तीसरे अध्यायों में है और जिस में से लेकर थोड़ा सा वर्णन हम पूर्व छन्दआर्चिक अध्याय २, दशति ५, ऋचा १० वीं (१६४) पृ० १६४, १६५ में लिख आये हैं। "पन्द्रह आज्य और सत्रह पृष्ठ होते हैं" इत्यादि अन्य ग्रन्थों में कहे आज्यों और पृष्ठों में वे वे स्तोम काम में आते हैं। इस प्रकार के स्तोमों की सिद्धि के लिये यह उत्तरार्चिक का क्रम है ॥

अथ प्रथमप्रपाठके प्रथमार्धम्

अथ प्रथमाध्याये प्रथमसूक्तस्य तृचस्य-असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः।
सोमो देवता। गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(६५१) उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे।
३ २ ३ १ २र
अभि देवाँ इयक्षते ॥ १ ॥

भावार्थः (नरः) हे मनुष्यो! (अस्मै) इस (पवमानाय) पावन शुद्धिकारक (इन्दवे) परमैश्वर्यवान् (देवान्) देवतों को (अभि इयक्षते) लक्ष्य करके अपना ज्ञानप्रदानरूप यजन करना चाहते हुवे परमात्मा के लिये (उप गायत) उपगान करो। इस क्रिया से स्तोमगान की भी ध्वनि ध्वनित है ॥

अथवा-(इन्दवे) सोम ओषधि के लिये। शेष पूर्ववत् जानो॥ ऋग्वेद ९। ११। १ में भी॥ १॥

अथ द्वितीया

३ २ ३ १-२ ३ १ २र
(६५२) अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः।
३ २ ३ १ २ ३ २
देवं देवाय देवयु॥ २॥

भावार्थः-(ते) वे (अथर्वाणः) स्थिरात्मा ज्ञानी लोग (देवाय) ईश्वर प्राप्ति के लिये (देवम्) दिव्यगुणयुक्त (देवयु) परमात्मदेव को चाहनेवाले (पयः) प्राणरूपी अन्न को (मधुना) आत्मज्ञानानन्दरूपी मिठाई से (अभि अशिश्रयुः) संस्कृत करते हैं॥

अथवा-(ते अथर्वाणः) वे ऋत्विज् अध्वर्यु आदि लोग (देवाय) वायु आदि देवगण के लिये (देवम्) दिव्य (पयः) सोम रस को (मधुना) मिठाई से (अभि अशिश्रयुः) संस्कृत करते हैं॥

शतपथ ब्राह्मण १४। ५। ५। १४, १६, १७, १८, १९॥ १२। ८। १। २० निघण्टु ५। ५ निरुक्त ११। १८ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद ९। ११। २ में भी॥ २॥

अथ तृतीया

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र
(६५३) सः नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
१ २ ३ १ २
शᳫं राजन्नोषधीभ्यः॥ ३॥

भावार्थः-(राजन्) हे प्रकाशमान परमेश्वर! वा ओषधिराज सोम (सः) वह तू (नः) हमारे (गवे) गौ आदि पशुओं के लिये (शम्) सुख (जनाय) पुत्रादि वर्ग के लिये (शम्) सुख (अर्वते) प्राण के लिये (शम्) सुख और (ओषधीभ्यः) गेहूं आदि ओषधियों के लिये (शम्) सुख (पवस्व) वर्षाव॥

निघण्टु १। १४ शतपथ ब्राह्मण ५। २। ४। ९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद ९। ११। ३ में भी॥ ३॥

अथ द्वितीयतृचस्य–कश्यपोमारीच ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(६५४) दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा ।
१ २ ३ १ २र
सोमाः शुक्रागवाशिरः ॥ ४ ॥

भावार्थः–(शुक्राः) श्वेत (गवाशिरः) दूध मिले (सोमाः) सोम (दविद्युतत्या) देदीप्यमान (परिष्टोभन्त्या) बार बार अभ्यास की जाती हुई (कृपा) समर्थ (रुचा) दीप्ति से [चमकते हैं] । ऋ० ९ । ६४ । २८ में भी ॥४॥

अथ द्वितीया

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३क २र
(६५५) हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत् ।
१ २ ३ १ २
सीदन्तो वनुषो यथा ॥ ५ ॥

भावार्थः–(यथा) जिस प्रकार (हेतृभिः) प्रेरकों से (हिन्वानः) प्रेरित किया हुवा (वनुषः) वीर (हितः) कहने में चलने वाला (वाजी) बलवान् अश्व (आवाजम्) बल वा शक्ति भर (अक्रमीत्) दौड़ता है, वैसे ही (सीदन्तः) तीव्र गति से चलते हुवे सोम दौड़ते हैं ॥ निघं० २ । १४ में वनुष्यति का अर्थ क्रोध वा वीरता है ॥ ऋ० ९ । ६४ । २९ में भी ॥ ५ ॥

अथ तृतीया

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(६५६) ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे ।
१ २ ३ १ २ ३ २
पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ६ ॥

भावार्थः–(कवे) बुद्धितत्त्व के बढ़ाने जगाने वाले ! (सोम) सोम ! (ऋधक्) चढ़ता बढ़ता हुवा (दिवा) और आकाश से सङ्गत होता हुवा (सूर्यः) जैसे सूर्य (दृशे) दृष्टि की सहायता के लिये चढ़ता है वैसे तू भी (स्वस्तये) सुख के लिये (पवस्व) हम से हवन किया हुवा आकाश को प्राप्त हो ॥

जैसे वृष्टि के लिये सूर्य आकाश में चढ़ता है वैसे सुख के लिये सोम का हवन कर आकाश में चढ़ाना चाहिये ॥

विवरणकार की संमति, निरुक्त ४।२५ का प्रमाण और ऋ० ९। ६४। ३० का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ६ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—वैखानसा आङ्गिरसा ऋषयः। सोमोदेवता। गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ २ ३ १ २
(६५७) पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ ७ ॥

भावार्थः—(कवे) विद्वन्! (वाजिन्) योगवलैश्वर्ययुक्त! पुरुष! (पवमानस्य) योगाभ्यास से आत्मा को शोधने वाले (ते) तेरे (सर्गाः) प्राणायामान्तर्गत वायुओं के विसर्ग (श्रवस्यवः) तेरा यश चाहते हुवे (सृज्यन्ते) छोड़े जाते हैं (न) जैसे (अर्वन्तः) अश्व ॥

अथवा—(कवे) बुद्धितत्त्व के जगाने वाले! (वाजिन्) बलदायक! सोम! (पवमानस्य) वायु की शुद्धि करते हुवे (ते) तेरी (सर्गाः) धारायें (श्रवस्यवः) यजमान का यश चाहती हुईं (असृक्षत) छोड़ी जाती हैं (न) जैसे (अर्वन्तः) अश्वशाला से अश्व छोड़े जाते हैं, तद्वत् ॥ ऋ० ९। ६६। १० में भी॥७॥

अथ द्वितीया

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(६५८) अच्छाकोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये।
१ २ ३ १ २
अवावशन्त धीतयः ॥ ८ ॥

भावार्थः—(धीतयः) ध्यानी लोग (अव्यये) मानससूर्यमय (वारे) नाड़ी समूह पर (मधुश्चुतम्) मधुर=आनन्द टपकाने वाले (कोशम्) घट को (असृग्रम्) उघाड़ते हैं और (अच्छ) अच्छे प्रकार (अवावशन्त) चाहते हैं ॥

अथवा—(धीतयः) ऋत्विजों की अङ्गुलियें (अव्यये) ऊर्णामय (वारे) दशापवित्र पर (मधुश्चुतम्) मिठास टपकाने वाले (कोशम्) सोमघट को

(अस्तम्) उघाड़ते और (अच्छ) भले प्रकार (अवाचशन्त) इच्छा करते हैं। ऋ० ९। ६६। ११ में भी ॥ ८॥

अथ तृतीया

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(६५९) अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ ९ ॥

भावार्थः-(इन्दवः) शान्तस्वभाव भगवदुपासक लोग (ऋतस्य योनिम्) सत्य वेद के धाम (समुद्रम्) समुद्रतुल्य गम्भीर परमात्मा को (अच्छ) भले प्रकार सानन्द (आ अग्मन्) प्राप्त होते हैं। दृष्टान्त-(न) जैसे (धेनवः गावः) दुधार गौवें (अस्तम्) घर को [जहां से गई थी] प्राप्त होतीं हैं॥

यद्वा (इन्दवः) सोम (ऋतस्य योनिम्) यज्ञ के स्थान (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को (अच्छ आ अग्मन्) भलेप्रकार सब ओर से प्राप्त होते हैं (धेनवः) दुधार (गावः) गौवें (न) जैसे (अस्तम्) दूध देने को घर आती हैं तद्वत्॥

निघण्टु १। ३॥ ३। ४ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ९। ६६। १२ में भीं॥

इस अवसर में श्री सत्यव्रत सामश्रमी जी कहते हैं कि "विवरणकार यहां ज्योतिष्टोमसम्बन्धी बहिष्पवमान समाप्त लिखते हैं। और मीमांसाद० ९। ४। ३ में लिखा है कि यह तीन सूक्तों के गान से साध्य स्तोत्र बहिष्पवमान कहाता है। क्योंकि उन में की ऋचायें पवमानार्थ हैं और बाहर से सम्बन्ध है। यह स्तोत्र अन्य स्तोत्रों के समान सदस् नामक मण्डप के भीतर उदुम्बर की स्तम्बशाखा के समीप नहीं पढ़ा जाता, किन्तु सदस् से बाहर चलते हुवे इसे पढ़ते हैं। बहिष्पवमान नामक वेदी वह है, जहां स्थित होकर इस बहिष्पवमान नाम ९ नव ऋचाओं से साध्य त्रिवृत् नामक स्तोम का पूर्व पाठ करके मार्जन होता है और वह वेदी उदग्वंशा नाम शाला के अन्तर्गत सदोमण्डप के पश्चिम की ओर प्राचीनवंशा नाम शाला के अन्तर्गत ऐष्टिक वेदी से उत्तर की ओर होती है और इस बहिष्पवमान के प्रकृतियाग अग्निष्टोमादि में त्रिवृत् नामक स्तोम होता है"। इत्यादि॥

इस त्रिवृत् की व्याख्या ताण्ड्यमहाब्राह्मण प्रपाठक २ के ३ खण्डों के अनुसार हम पूर्व (पृ० १६४-१६५ में) कर चुके हैं॥ ९॥

इति प्रथमः खण्डः ॥

अथ द्वितीया

अथ द्वितीयखण्डे प्रथमतृचस्य भरद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(६६०) अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
१ २र ३ १ २
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥

भावार्थः—इस की व्याख्या छन्द आर्चिक (१) में कर चुके हैं। यहां पुनर्वार पाठ, भिन्न प्रकार के सूक्त में समन्वित होने आदि प्रयोजनार्थ जानिये ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(६६१) तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि।
३ १ २
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ २ ॥

भावार्थः—(अङ्गिरः) प्रकाशमान! (यविष्ठ्य) अति बलिष्ठ! अग्ने! वा परमात्मन्! (तम्) उस पूर्व मन्त्रोक्त (त्वा) आप को (समिद्भिः) समिधाओं वा योगाभ्यासादि साधनों से तथा (घृतेन, घृत वा स्नेह=प्रीति=आप की ओर झुकाव से हम (वर्धयामसि) अत्यन्त प्रज्वलित, वा हृदय में अत्यन्तसाक्षात् करें और आप (बृहत्) बहुत (शोच) प्रकाश कीजिये ॥

यजुः ३। ३। ऋ० ६। १६। ११ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(६६२) सः नः पृथु श्रवाय्यमच्छदेव विवाससि।
३ १ २ ३ १ २
बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—(अग्ने) प्रकाशमान! (देव) दिव्यगुणयुक्त! (सः) पूर्वोक्त आप (पृथु) विस्तृत (श्रवाय्यम्) सुनने योग्य प्रशंसनीय (बृहत्) बड़े

भारी (सुवीर्यम्) शोभायुक्त वीर्य को (नः) हमें (विवासथः) प्राप्त कराते हैं॥
ऋ० ६ । १६ । १२ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—विश्वामित्रो जमदग्निर्वा ऋषिः ।
मित्रावरुणौ देवते । गायत्री छन्दः ।

१ २ ३ १ २र
(६६३) आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
२ ३ १ २
मध्वा रजाᳪंसि सुक्रतू ॥ ४ ॥

भावार्थ इस का (२२०) पर कर चुके हैं, वहीं मित्र वरुण का निरुक्त भी लिख आये हैं ॥ ४ ॥

अथ द्वितीया

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
(६६४) उरुशᳪंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः ।
१ २
द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥ ५ ॥

भावार्थः—(उरुशंसा) बहुल वर्णनीय गुण कर्म स्वभाव वाले (नमोवृधा) हव्यरूपी अन्न से बढ़ने वाले (शुचिव्रता) शुद्धिकारक मित्र और वरुण नामक मध्यस्थान वृष्टिकारक देव (दक्षस्य मह्ना) बल की बड़ाई से (द्राघिष्ठाभिः) अत्यन्त लम्बी बिजुलियों के साथ (राजथः) विराजते हैं ॥
निघं० २।७ ॥ २ । ९ ॥ २ । १ ॥ ३ । १ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥
ऋ० ३ । ६२ । १७ ऽपि ॥ ५ ॥

अथ तृतीया

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(६६५) गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् ।
३ १ २र
पातᳪं सोममृतावृधा ॥ ६ ॥

भावार्थः-मित्र और वरुण संज्ञक आकाशगत देव=वायुविशेष वा अवस्था विशेषापन्न सूर्यकिरण (गृणाना) वेदमन्त्रों से वर्णित किये जाते हुवे (ऋतस्य)

जल के (योनौ) स्थान=गगनमण्डल में (सीदतम्) स्थित हों तथा (जमदग्निना) जाज्वल्यमान दहकते अग्नि से हूयमान (सोमम्) सोमादि ओषधिरस को (पातम्) पीवें। उस से (ऋतावृधा) वृष्टिजल के बढ़ाने वाले हों ॥

ऋ० ३। ६२। १८ में भी ॥ ६ ॥

अथ तृतीयतृचस्य–इरिमिठ् ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

(६६६) आयाहि सुषुमा हित इन्द्र सोमं पिबा इमम्।

२उ ३ १ २ ३ २ ३

एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥

इस की व्याख्या (१९१) बड़ी संख्या में देखिये ॥ ७ ॥

अथ द्वितीया

१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(६६७) आत्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना।

२ ३ १ ३

उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ ८ ॥

भावार्थः–(इन्द्र) परमेश्वर! (केशिना) वृत्तिरूप केशों वाले (ब्रह्मयुजा) ब्रह्म में योग करने वाले (हरी) आत्मा और मन दोनों (त्वा) आप को (आवहताम्) प्राप्त हों (नः) हमारे (ब्रह्माणि) वेदोक्त स्तोत्रों को (उप शृणु) स्वीकार कीजिये ॥

यद्वा (इन्द्र) विद्युत्! (केशिना) किरणरूपी केशों वाले (ब्रह्मयुजा) ब्रह्म परमात्मा के जोड़े हुए (हरी) धारण और आकर्षण अश्व (त्वा) तुझे (आवहताम्) प्राप्त हों (नः) हमारे (ब्रह्माणि) बड़े हविषों को (उप शृणु) ग्रहण कर ॥

निघण्टु १। १५ ॥ निरुक्त १२। २५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८। १७। २ में भी ॥ ८ ॥

अथ तृतीया

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २

(६६८) ब्रह्माणस्त्वा युजा वयंँ सोमपामिन्द्र सोमिनः।

३ १ २

सुतावन्तो हवामहे ॥ ९ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) परमेश्वर! (सोमिनः) सौम्य भाव वाले (सुतावन्तः) हृदय शुद्ध कर चुकने वाले (ब्रह्माणः) वेदवेत्ता (वयम्) हम योगी लोग (युजा) योग से (सोमपां त्वा) सौम्य भाव वालों के ग्राहक आप को (हवामहे) पुकारते हैं॥

यद्वा-(इन्द्र) विद्युत्! (सोमिनः) सोमरसवाले (सुतावन्तः) अभिषव कर चुकने वाले (ब्रह्माणः) ब्रह्मा आदि (वयम्) हम ऋत्विग् लोग (युजा) सम्बन्ध से (सोमपाम्) सोमरस शोषने वाले (त्वा) तुझ को (हवामहे) वर्णित करते हैं। ऋ० ८।१७।३ में "वयं युजा" ऐसा उलट कर पाठ है॥९॥

अथ चतुर्थतृचस्य-विश्वामित्रोगाथिन ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ १ २
(६६९) इन्द्राग्नी आगतꣳ सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्।
३ १ २ ३ २ ३ २
अस्य पातं धियेषिता॥१०॥

भावार्थः-(इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि दोनों भौतिक देव (नभः) आकाश में वर्त्तमान (धिया) यज्ञ कर्म से (इषिता) प्रेरित (आगतम्) प्राप्त हों और (गीर्भिः) वेदमन्त्रों से (सुतम्) अभिषुत किये हुए (वरेण्यम्) उत्तम (अस्य) इस सोम का (पातम्) पान करें॥

ऋग्वेद ३।१२।१ यजुः ७।३१ में भी॥१०॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ १ २र ३ १ २ १ ३ १ २
(६७०) इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः।
३ १ २ ३ २ ३ २
अया पातमिमꣳ सुतम्॥११॥

भावार्थः-(यज्ञः) विष्णुपरमात्मा (चेतनः) सब का चेताने वाला (जिगाति) उपदेश करता है कि (इन्द्राग्नी) पूर्वमन्त्र में कहे इन्द्र और अग्नि (जरितुः) प्राण के (सचा) सहायक हैं। (अया) इस वेदवाणी के साथ (इमम्) इस (सुतम्) अभिषुत किये सोम को (पातम्) शोषण करें=पीवें॥

शतपथ १४।६।१।८ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद ३।१२।२ में भी॥११॥

अथ तृतीया

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(६७१) इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे ।

१ २र ३ १ २

ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ १२ ॥

भावार्थः-(यज्ञस्य) यज्ञ के (जूत्या) सेवन के लिये (कविच्छदा) बुद्धिमानों की अनुकूलता करने वाले (इन्द्रम्, अग्निम्) इन्द्र और अग्नि इन दोनों का (वृणे) वरण=स्वीकार करता हूं । (ता) वे दोनों (इह) इस यज्ञ में (सोमस्य) सोम के पान से (तृम्पताम्) तृप्त हों ॥

यह ऐन्द्राग्न आज्य है और "यह प्रातः सवन समाप्त हुवा" ऐसा विवरणकार का मत है ॥ "ये प्रातः सवन में गायत्र साम से गाये हुवे चार आर्यस्तोत्र कहाते हैं" मीमां० जै० ९ । ४ । ३ "जो कि आजि को प्राप्त होते हैं यह आज्यों का आज्यत्व है" यह आज्य का निर्वचन ताण्ड्यमहाब्राह्मण ७ । २ में देखिये ॥ इन आज्यस्तोत्रों में पञ्चदशनात्मक स्तोम बनता है जिस का बताने वाला ताण्ड्यब्राह्मण २ । ४ । ५ । ६ में देखिये ॥ यह स्तोम द्वितीय पृष्ठ्य भी कहाता है ॥ ऋ० ३ । १२ । ३ में भी ॥ १२ ॥

इति प्रथमाऽध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

तृतीयखण्डस्य प्रथमतृचे-प्रथमा

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

(६७२) उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्यादरे ।

३१र ३ २३ १२

उग्रꣳशर्म महि श्रवः ॥ १ ॥

व्याख्याता (४६७) इस की व्याख्या (४६७) ऋचा के तुल्य है ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २

(६७३) स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।

३ १ २र

वरिवोवित्परिस्रव ॥ २ ॥

व्याख्याता (५९२) इस की व्याख्या (५९२) पर देखिये ॥ २ ॥

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २
(६७४) एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
१ २
सिषासन्तो वनामहे ॥ ३ ॥

इस का व्याख्यान भी (५९३) में आ गया। इस सूक्त में "आमहीयव" से लेकर "सौमित्र" तक २४ साम निकले हैं ॥ ६ ॥

अथ प्रगाथे द्वितीयसूक्ते प्रथमा

३ १ १ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १
(६७५) पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि । आ रत्नधा
२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस की व्याख्या (५११) मन्त्र पर देखिये ॥ प्रगाथ का अर्थ सोम० ९।३।६ अध्या० १ वर्ग चिन्ह पर माधवाचार्य की व्याख्यानुसार संस्कृत भाष्य में ऊपर देखिये ॥ ४ ॥

अथ द्वितीयायाः—अमहीयुराङ्गिरस ऋषिः। सोमोदेवता। बृहती छन्दः॥

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(६७६) दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नꣳ सधस्थमासदत् ।
३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ॥ ५ ॥

भावार्थः—(विचक्षणः) चतुर बुद्धिमान् (धौतः) शुद्धान्तःकरण (वाजी), योगबलयुक्त पुरुष, (ऊधः) आनन्द के स्रोत परमात्मा से (दिव्यम्) अलौकिक (प्रियम्) प्यारे (प्रत्नम्) सनातन (सधस्थम्) वास्तव में सदा साथ रहने वाले (मधु) माधुर्य रस को (दुहानः) दुहता हुवा (आसदत्) पाता है। फिर (आपृच्छ्यम्) बूझने योग्य (धरुणम्) धारक परमात्मा को (नृभिः) योग सिखाने वाले नेताओं के साथ वह शिष्य (अर्षसि) प्राप्त होता है॥

यद्वा—(विचक्षणः) चतुर (धौतः) स्नानादि से शुद्ध शरीर वाला (वाजी) हव्य अन्न युक्त यजमान, (ऊधः) सोमलता से (दिव्यम्) उत्तम (प्रियम्) प्यारे (प्रत्नम्) पुराने पके हुवे (सधस्थम्) लता के साथ रहने वाले (आपृच्छ्यम्)

उस के जानने वालों से बूझने योग्य (धरुणम्) स्थिरता करने वाले (मधु) मधुर रस को (दुहानः) निचोड़ता हुवा (आवदन्) पाता और (नृभिः) ऋत्विजों सहित (अर्षसि) हवन करता है ॥

रौरव से लेकर कण्वरथन्तर पर्यन्त ४२ साम इस सूक्त में से निकले हैं ॥ऋ० ९।१०७।५ में (धूतः) पाठ है॥ गौवों के थान को ऊधः कहते हैं क्योंकि उस में से दूध दुहा जाता है। इसी प्रकार यहां परमात्मा को आनन्द के स्रोत होने से तथा सोमलता को रस का स्रोत होने से ऊधः कहा है ॥ ५ ॥

अथ तृतीयतृचस्य-अमहीयुराङ्गिरस ऋषिः। सोमोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २र३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र
(६७७) प्रतु द्रव परिकोशं निषीद नृभिः पुनानो अभि
२र २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
वाजमर्ष । अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तो-
२ ३ १ २ ३ १ २
ऽच्छा बर्हीरशनाभिर्नयन्ति ॥ ६ ॥

व्याख्याता (५२३) इस की व्याख्या (५२३) में देखिये ॥ ६ ॥

अथ द्वितीया

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
(६७८) स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
रक्षमाणः । पिता देवानां जनिता सुदक्षो
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
विष्टम्भोदिवो धरुणः पृथिव्याः ॥ ७ ॥

भावार्थः—(स्वायुधः) वज्रस्रुव स्रुक् शम्याकादि अच्छे यज्ञायुधों वाला, वा सुशासन (देवः) प्रकाशमान (अशस्तिहा) दुःखविनाशक (वृजना) उपद्रवों से (रक्षमाणः) बचाता हुवा (देवानाम्) इन्द्रियों का (जनिता) उत्पादक और (पिता) रक्षक (सुदक्षः) उत्तम बलयुक्त पुष्टिदायक (दिवः) अन्तरिक्षलोकस्थ पदार्थों का (विष्टम्भः) थामने वाला (पृथिव्याः) पृथिवीस्थ पदार्थों वा जनों का (धरुणः) धरन=धारण करने वाला (इन्दुः) सोम वा ईश्वर (पवते) अग्नि में होमा हुवा जाता वा पवित्र करता है ॥

मनु १ । ७६ का प्रमाण और ऋ० ९ । ८७ । २ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ७ ॥

अथ तृतीया

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ २ ३ १ २ १
(६७९) ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन । स

२र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २
चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यांऽ३गुह्यं नाम गोनाम् ॥८॥

भावार्थः—(ऋषिः) वेदों का उपदेशक (विप्रः) मेधावी (जनानां पुरएता) मार्ग दिखाने से प्राणियों का अगुवा (ऋभुः) सर्वेश्वर (धीरः) सब का धारक दृढ़ अचल (उशना) सर्वहितेच्छु (चित्) चेतनस्वरूप (सः) वह परमात्मा (काव्येन) वेदद्वारा (विवेद) बतलाता है (यत्) कि (आसाम्) इन (गोनाम्) किरणों में (अपीच्यम्) निर्णय किया हुवा और छिपा हुवा (गुह्यम्) अज्ञानियों से अज्ञात (नाम) प्रसिद्ध सोमनामक वस्तु (निहितम्) निधि होकर वर्त्तमान है ॥

निघण्टु ३ । १५ ॥ ३ । २५ ॥ १ । ४ निरुक्त ४ । २५ उणादि ४ । १८० ॥ २ । ८४ ॥ ४ । २३९ अष्टाध्यायी ७ । १ । ५७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये यह तीसरा माध्यंदिन पवमान है ॥ "माध्यंदिन पवमान कहा गया" यह विवरणकार के मत से श्रीसत्यव्रत जी का कथन है ॥ ऋ० ९ । ८७ । ३ में भी ॥८॥

इति उत्तरार्चिके प्रथमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थखण्डे प्रथमप्रगाथस्य—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(६८०) अभि त्वा शूर नोनुमो दुग्धा इव धेनवः ।

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥

व्याख्याता (२३३) इस की व्याख्या (२३३) में की गई ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१र २र ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १
(६८१) न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो

२र ३ १ २ ३ १ २
न जनिष्यते।अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो
३ १ २
गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥

भावार्थः-(मघवन् ! यज्ञवाले ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वावान्) आप के तुल्य (अन्यः) और कोई (दिव्यः) द्युलोकस्थ (न) नहीं है (न) और न (पार्थिवः) पृथिवीलोकस्थ है (न) न तो (जातः) पूर्व उत्पन्न हुआ और (न) न (जनिष्यते) आगे उत्पन्न होगा (अश्वायन्तः) मोक्ष चाहते हुवे(वाजिनः) अन्न वा बल चाहते हुवे और (गव्यन्तः) इन्द्रियां चाहते हुवे हम (त्वा) आप को (हवामहे) स्तुति प्रार्थना करके पुकारते हैं ॥

श्री सत्यव्रत जी विवरणकार के मत से कहते हैं कि यह "रथन्तर पृष्ठ" कहा गया ॥ ऋ० ७ । ३२ । २३ में भी ॥ २ ॥

अथ द्वितीयस्य तृचसूक्तस्य-वामदेव ऋषिः । सर्वादेवताः । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३२ ३ १ २३ १ २
(६८२) कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा ।
२३ १ २ १ २
कया शचिष्ठया वृता ॥ ३ ॥

व्याख्याता (१६९) इस का व्याख्यान (१६९) में हो चुका है ॥ ३ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(६८३) कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
३१ २ ३ २ ३ १ २
दृढा चिदारुजे वसु ॥ ४ ॥

भावार्थः-परमात्मा राजा को उपदेश करता है कि-हे राजन् ! इन्द्र ! (दृढा) दृढ (चित्) भी (वसु) शत्रु के वास करने की जगह दुर्गादि के (आरुजे) तोड़ने को (मदानाम्) हर्षकारक पदार्थों में (मंहिष्ठः) उत्तम (सत्यः) सच्चा हर्षकारक (कः) क्या पदार्थ (त्वा) तुझ को (मत्सत्) हृष्ट करे ? उत्तर-(अन्धसः) अन्न कर [निघं० २ । ७] ॥

अर्थात् राजा या राजपुरुषों को शत्रु के दुर्गादि तोड़ने के योग्य दृष्टि पुष्टि की प्राप्ति के लिये केवल अन्न का ही सदा मद=हर्ष प्रहण करना चाहिये, कोई अन्य मद्यादि वस्तु नहीं ॥ पूर्व मन्त्र में जो परमात्मा से प्राण और इन्द्रियों का बल पुरुषार्थ मांगा गया था उस का यह उत्तर परमात्मा की ओर से है कि अन्न से ही यह सब कुछ प्राप्त करो ॥

ऋ० ४ । ३१ । २ में भी ॥ ४ ॥

अथ तृतीया

३ २उ २ २ ३ २ ३ १

(६८४) अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ।

३ १ २ ३ १ २

शतं भवास्यूतये ॥ ५ ॥

भावार्थः-(नः) मेरी सृष्टि में स्थित (जरितॄणाम्) बूढ़े निर्बल और (सखीनाम्) तुझ से शत्रुभाव न कर के मित्रभाव रखने वालों को (शतम्) बहुत (सु) अच्छे (अभि) सर्वतः (ऊतये) रक्षा के लिये हे राजन् ! तू (अविता) रक्षक (भवासि) हो ॥

विवरण के मत से श्री सत्यव्रत कहते हैं कि यह "मैत्रावरुण पत्र" कहाता है ॥ ऋग्वेद ४ । ३१ । ३ में "ऊतिभिः" पाठ है ॥ ५ ॥

अथ प्रगाथस्य तृतीयसूक्तस्य—नोधाः काक्षीवत ऋषिः ।

इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १२ ३ २३ १ २ ३ १र २र

(६८५) तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

३ २ ३ १र २र ३ १ २ १ २ ३ २ २

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥६॥

इस की व्याख्या (२३६) में आ चुकी ॥ ६ ॥

अथ द्वितीया

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

(६८६) द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न

२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पुरुभोजसम् । क्षुमन्तं वाजं शतिनं

३ १ २ ३ १ २र
सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे इन्द्र ! परमेश्वर ! (द्युक्षम्) प्रकाश वाले (सुदानुम्) सुन्दर दानी (तविषीभिः) सेनाओं से (आवृतम्) युक्त भरपूर (गिरिं न) मेघ के समान (पुरुभोजसम्) बहुत पालन करने वाले (क्षुमन्तम्) अन्न वाले (शतिनं वाजम्) बहुबलयुक्त (सहस्रिणं गोमन्तम्) बहुत गौ आदि पशु-युक्त और उनके पालक राजा को (मक्षु) शीघ्र (ईमहे) हम आप से मांगते हैं ॥

निघण्टु २ । ८ ॥ १ । १० ॥ २ । ७ ॥ ३ । १९ उणादि ३ । ३२ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ८८ । २ में भी ॥ ७ ॥

अथ चतुर्थसूक्ते प्रगाथे—प्रथमा

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(६८७) तराभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रꣳ सबाधऊतये ।
३ १२ २र ३ १ २ ३ २ ३२उ ३ २ ३ १ २
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥८॥

इस की व्याख्या (२३७) में हो चुकी ॥ ८ ॥

अथ तृतीयायाः—कलिः प्रागाथ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः ॥

२उ ३ १२ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १२ २र २
(६८८) न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः । य
३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २र ३ २ ३र २र
आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥ ९ ॥

भावार्थः—(यम्) जिस (उक्थ्यम्) स्तुतियोग्य (शिप्रम्) जैसे नासिका सुगन्ध दुर्गन्ध का ज्ञान कराती है तद्वत् इष्ट अनिष्ट का बोध कराने वाले इन्द्र परमात्मा को (न स्थिरा) चञ्चल चित्त वाले (दुध्राः) दुर्धर (मुरः) मनुष्य (न) नहीं (वरन्ते) स्वीकार करते और (यः) जो परमात्मा (आदृत्य) आदर पूर्वक (सुन्वते) यज्ञार्थ सोम का अभिषव करने वाले (शशमानाय) गान रहित ऋग् मन्त्रों से स्तुति करने वाले और (जरित्रे) गानयुक्त स्तोत्रों से स्तुति करने वाले के लिये (अन्धसः) अन्नादि का (दाता) देने वाला है [उस को पुकारता हूं] यह पूर्व मन्त्र से सम्बन्ध जानिये ॥

निरुक्त ६ । १७ और निघण्टु ३ । १६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ संहिता में "मद्रेषु, शिप्रम्" ऐसा पाठ है और पदपाठकार ने भी इसी प्रकार पदच्छेद किया है, परन्तु सायणाचार्य और उन का बिना सोचे अनुकरण करने वालों ने ऋग्वेद ८ । ५५ । २ में "नद्दे, इुशिप्रम्" पाठ था, उसी के अनुसार यहां भी मूल से विरुद्ध की व्याख्या कर दी है ॥ ९ ॥

इति प्रथमाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

उक्तो माध्यंदिनः पवमानः ॥

अथ पञ्चमखण्डे प्रथमसूक्ते तृचे—प्रथमा

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

(६८९) स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।

१ २३ १ २ ३ २

इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥

व्याख्याता (४६८) इस की व्याख्या (४६८) में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः—मधुच्छन्दा ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २

(६९०) रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते ।

१ २ ३ २ ३ १ २

द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २ ॥

भावार्थः—(रक्षोहा) वायु आदि के दुर्विकार रूप राक्षसों का नाशक (विश्वचर्षणिः) विश्व में फैलने वाला सोम (अयोहते) सुवर्णमय (द्रोणे) द्रोण कलश में (सधस्थम्) यज्ञरूप (योनिम्) घर को (अभि) व्याप कर (आसदत्) स्थित होता है ॥

निरुक्त ५ । २४ निघण्टु १ । २ ॥ ३ । ३० के प्रमाण और ऋ० ९ । १ । २ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः—ऋष्यादिकं पूर्ववत्

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(६९१) वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥ [१५]

भाषार्थः-सोम ! (वरिवोधातमः) श्रेष्ठ पेय पदार्थों में उत्तम कक्षा का (मंहिष्ठः) सत्कार=आदर के योग्य (वृत्रहन्तमः) दुष्ट शत्रुनिवारण के लिये अत्यन्त सामर्थ्यदायक (भुवः) है और (मघोनाम्) यज्ञ करनेवालों के (राधः) धन आदि ऐश्वर्य को (पर्षि) पूरित करता है ॥ ऋग्वेद ९। १। ३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथरूपे द्वितीयसूक्ते प्रथमा

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(६९२) पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥

व्याख्याता (५७८) इस की व्याख्या (५७८) में कर आये हैं ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः—गौरिवीतिर्ऋषिः । सोमो देवता । निचृद्बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

(६९३) यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः ।

२ ३ १ २ ३क २र ३ २र ३ २ ३ १ २

स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥२॥ [१६]

भावार्थः—(वृषभः) वीर्यवान् पुरुष वा इन्द्र [वर्षा करने वाला विद्युत्] (यस्य ते) जिस तुझ सोम का (पीत्वा) पान करके (वृषायते) वृष के तुल्य पौरुष करता वा सिञ्चन करता है (अस्य स्वर्विदः) इस सुखदायक का (पीत्वा) पान करके (सुप्रकेतः) सुन्दर बुद्धियुक्त वा प्रकाशयुक्त (सः) वह पुरुष वा इन्द्र (इषः) अन्नों वा खेतियों को (अभ्यक्रमीत्) सब ओर से प्राप्त होता वा पकाता है । (न) जैसे (एतशः) अश्व (वाजम्) बल को (अच्छ) प्राप्त होता अर्थात् बलिष्ठ हो जाता है ॥

सोमपान से पुरुष का पुरुषत्व बढ़ता है, उस से वह सन्तानोत्पत्ति में भले प्रकार समर्थ होता है । परन्तु मद्यपान के समान बुद्धि भ्रष्ट नहीं होती किन्तु सुधरती है । इस में मादकता (नशा) नहीं है । इस सुखदायक पदार्थ के सेवन से अन्न पचाने का सामर्थ्य बढ़ कर बल बढ़ता है । यह पुरुष पद

का भाव है । दूसरे इन्द्रपक्ष में—होमयज्ञ से तृप्त हुवा इन्द्र भलेप्रकार बलिष्ठ होता और वृष्टि आदि पुष्कल करता है । यह भाव है ॥

निघण्टु १ । १४ का प्रमाण और ऋ० ९ । १०८ । २ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृचात्मके तृतीयसूक्ते प्रथमा

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

(६९४) इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥

व्याख्याता (५६६) इस की व्याख्या (५६६) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः—अग्निश्चाक्षुष ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

३ १ २र ३ १ २र ३ २

(६९५) अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥

भाषार्थः—(सानसिः) सेवनीय (सुतः) अभिषुत किया हुवा (अयं सोमः) यह सोम (भराय) संग्राम वा मेघविजय के लिये (इन्द्राय) राजा वा विद्युत् के लिये (पवते) प्राप्त होता है (यथा) जिस प्रकार (विदे) चेतन ज्ञानी के लिये चेतना करते हैं तद्वत् (जैत्रस्य) जयशील इन्द्र को (चेतति) उत्तेजित करता है ॥ ऋ० ९ । १०६ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः—ऋषिर्देवता प्रोक्ते । निचृदुष्णिक्छन्दः ॥

३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २

(६९६) अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥ ३ ॥ [१७]

भाषार्थः—(इन्द्रः) बिजुली वा राजा (अस्य) इस सोम के (इत्) ही (मदेषु) हर्षों के होने पर (सानसिम्) सेवनीय (ग्राभम्) दाव को

(आ गृभ्णाति) सर्वतः ग्रहण करता है। (च) और (अप्सुजित्) अन्तरिक्ष में, वा युद्धकर्म में जीतनेवाला पूर्वोक्त इन्द्र=बिजुली वा राजा (वृषभम्) वृष्टिकारक, वा शत्रुओं पर प्रहारों की वर्षा करने वाले (वज्रम्) आकाश में दीखनेवाले धनुष चिन्ह को, वा शस्त्रास्त्रसमूह को (संभरत्) अच्छे प्रकार धारण करता है ॥

निघण्टु १। ३॥ २। १ के प्रमाण और ऋ० ९। १०६। ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३॥

अथ चतुर्थसूक्ते प्रथमा

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(६९७) पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
अप श्वानꣳश्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥

व्याख्याता (५४५) इस की व्याख्या (५४१) में देखिये ॥

अथ द्वितीयायाः—अन्धीगुः श्यावाश्विर्ऋषिः। सोमः पवमानोदेवता।
निचृद्गायत्री छन्दः ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(६९८) यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः ।
२ ३ २ ३ २र
इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥ २ ॥

भावार्थः—पूर्वोक्त सोम का विशेष वर्णन करते हैं कि—(यः) जो (सुतः) अभिषुत किया हुवा (इन्दुः) सोम (कृत्व्यः) सुशिक्षित (अश्वो न) अश्व वा विद्युत् के समान (पावकया) पवित्र करने वाली (धारया) धारा से (परि प्रस्यन्दते) सब ओर फैलता वा वेग से जाता है ॥ ऋ० ९। १०१। २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः—देवतः ऋषिश्च पूर्वोक्तौ। विराड्गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(६९९) तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया ।
३ १ २ ३ १ २
यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥ ३ ॥ [१८]

भावार्थः-(तम्) पूर्वोक्तविशेषणों वाले (यज्ञाय दुरोषम्) यज्ञ के लिये कठिनाई से फुंकने वाले (सोमम्) सोमरस को (नरः) यज्ञ के नेता ऋत्विज् लोग (विश्वाच्या) विश्वव्यापिनी (धिया) क्रिया [होम] से (अभि) सब ओर [फैलावें] (अद्रयः सन्तु) जिस से मेघ होवें ॥

घृतादि की अपेक्षा गीला सोमरस कठिनाई से फुंकता है, इसलिये उस का "दुरोषम्" विशेषण प्रयुक्त किया गया है ॥ ऋ० ९ । १०१ । ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ पञ्चमसूक्ते प्रथमा

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ

(७००) अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो

३ २३ १२ १ २र ३ २ ३ २उ ३

अधि येषु वर्धते । आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि

२३ १ २ ३ २

रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥

व्याख्याता (५५४) इस की व्याख्या (५५४) में आगई ॥

अथ द्वितीयायाः-कान्वीगवऋषिः । सोमो देवता । पादनिचृज्जगती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २

(७०१) ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो

३ १ २र १ २ ३ २ ३ १२३ २ १ २

अस्या अदाभ्यः । दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं३नाम

३ २३ १२ ३२ ३ २

तृतीयमधिरोचनं दिवः ॥ २ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में सोम को सुपुत्र के समान यशस्कर होने से वर्णन किया गया है कि-(ऋतस्य) सत्यभूत यज्ञ की (जिह्वा) जिह्वा=अग्नि की लपट से (वक्ता) चटाचट शब्द करने वाला, (अस्याः धियः पतिः) इस यज्ञकर्म का पालक (अदाभ्यः) नष्ट न करने योग्य सोम (प्रियम्) प्यारे (मधु) रस को (पवते) प्राप्त कराता है [इस से] (दिवः) द्युलोक के (अधिरोचनम्) अधिकता से प्रकाश (नाम) ख्याति=यश को (दधाति)

धारण करता है। जैसे-(पुत्रः) बेटा (पित्रोः) माता पिता के बीच (तृतीयम्) तीसरे (अपीच्यम्) छिपेहुवे नाम को धारण करता है॥

जिस प्रकार माता का एक नाम, पिता का दूसरा, और पुत्र का तीसरा जो कि विख्यात होने से पूर्व अन्यसाधारणों को ज्ञात नहीं है, होता है। फिर जब पुत्र अपने गुणों को जतलाता हुआ प्रकाश करता है, तब प्रसिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्तरिक्ष लोक और पृथिवी लोक का पुत्रतुल्य यह सोम भी सोमयाग से पूर्व ऐसा होता है, जिस के गुणों की महिमा लोगों को प्रकट नहीं होती, परन्तु सोमयाग में होम किया जाता है, तब अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य में प्रकाशमान अपने तीसरे नाम को प्राप्त हुवा प्रकाशित होता है। यह अग्नि की लपट से गीला होने के कारण चटचटाता है, तो श्रोताओं को ऐसा प्रिय प्रतीत होता है, जैसा बालक का ललित भाषण सुखदायक होता है॥

ऋ० ९। ७५। २ में रोचनं=रोचने पाठ है॥२॥

अथ तृतीयायाः-ऋषिर्देवता चोक्ते एव। निचृज्जगती छन्दः॥

१ २ ३र ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३

(७०२) अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

आ हिरण्यये। अभी ऋतस्य दोहना अनूष-

१ २ ३ २ ३ १ २ १ २

ताऽधि त्रिपृष्ठ उषसो विराजसि॥ ३॥ [१९]

भावार्थः-फिर सोम का वर्णन है कि-(द्युतानः) प्रकाशमान, (नृभिः) ऋत्विजों द्वारा (कलशान्) कलशों में से (अव येमानः) लौटा जाता हुवा=निकाला जाता हुवा, (हिरण्यये कोशे) सुवर्णमय कोश स्रुवादि में (आ) चारों ओर से विराजमान, (त्रिपृष्ठे अधि) प्रातः सवनादि तीनो सवनों में अधिकृत सोम, (उषसः) सूर्य किरणों को (विराजसि) विराजित करता है (अचिक्रदत्) और शब्द करता है [उस सोम को] (दोहनाः) दुहने वाले ऋत्विज् (अनुषत) प्रशंसा करते हैं॥

"सोमकण्डन के पत्थर मानो बछड़े हैं और कण्डन करने वाले ऋत्विक् मानो दुहने वाले हैं" यह तैत्तरीयक ब्राह्मण में ऋत्विजों को दोग्धा

बताया गया है [सायण] अन्य व्याकरण के प्रमाण और ऋ० ९ । ७५ । ३ के पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ षष्ठेसप्तके प्रथमस्य प्रथमसूक्तस्य-अग्निर्वैश्वानर ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहतीछन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
(७७३) यज्ञा यज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे । प्र प्र
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥

व्याख्याता (३५) इस की व्याख्या ३५ वीं में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ६ १ २
(७७४) ऊर्जो नपातं स हिना यमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२॥ [२०]

भाषार्थः-(सः) वह प्रसिद्ध अग्नि, वा परमेश्वर (अस्मयुः) जाठराग्न्यादि भेद से वा भक्ति देखकर तुष्ट हो, हमको चाहने वाला (यम्) जिस (ऊर्जो-नपातम्) बल के न गिराने वाले का [हम (प्रशंसिषम्=प्रशंसामः) वर्णन करते हैं, यह पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति है] और (हव्यदातये) वायु आदि देव निमित्त द्रव्य पहुंचाने वा कर्मफल पहुंचाने के लिये (दाशेम) हविष्य वा आत्मा का अर्पण करते हैं । वह अच्छे प्रकार हवन किया हुवा अग्नि वा ध्यान किया हुवा परमात्मा (वाजेषु) अन्न जो भोजन किये गये उन के पच्य-मान होते हुवे (अविता) रक्षक (भुवत्) हो, (वृधे) शरीरादि की वृद्धि के लिये (भुवत्) हो, (उत) और (तनूनाम्) देहों का (त्राता) रक्षक हो॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि का भलेप्रकार से उपयोग करना जानते हैं और होमादि में काम में लाते हैं वा परमेश्वर की उपासना करते हैं, उन का बल क्षीण नहीं होता, उन के अन्न का पचना, शरीरादि की वृद्धि और रक्षा होती है ॥ ऋ० ६ । ४८ । २ में भी ॥ २ ॥ [२०]

अथ द्वितीयसूक्तस्य-साकमश्व ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७०५) एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।
३ १ २ ३ १ २
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १ ॥

व्याख्याता (७) इसकी व्याख्या (७) पर की जा चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

२ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(७०६) यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ।
२ ३ १ २
तत्र योनिं कृणवसे ॥ २ ॥

भावार्थः हे अग्ने ! [पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति] परमात्मन् (ते) आप की (मनः) इच्छा [जीवात्मा को कर्मानुकूल फल देने की रुचि] (यत्र, क्व च) जिस किसी लोक में वा देश में होती है (तत्र) उसी देश वा लोक में (योनिम्) मनुष्यादि योनि (कृणवसे) जीवों को नियत कर देते हैं (उत्तरम्) उत्तम और (दक्षम्) बल भी (दधसि) धारण करते हो ॥

प्राणिजन कर्मानुसार परमेश्वर के वश में रहकर अपने किये कर्मों के भोगार्थ उस २ योनि को प्राप्त होते हैं यह भाव है॥ यद्यपि परमात्मा सर्वेन्द्रिय विवर्जित होने से मन रहित है तथापि सर्वेन्द्रिय गुणा भास० इत्यादि श्वेताश्वतरोपनिषद् के वचनानुसार मन शब्द का प्रयोग शुद्ध है कुछ दोष नहीं ॥ ऋग्वेद ६ । १६ । १७ पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३
(७०७) नहि ते पूर्त्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते ।
२ ३ १ २
अथा दुवो वनवसे ॥ ३ ॥ [२१]

भावार्थः—पूर्वमन्त्र से [अग्ने] हे ज्ञानप्रकाशक! (ते) आप का (पूर्त्तम्) पूर्ण और पूरक तेज (अक्षिपत्) हमारी आंख आदि ज्ञानेन्द्रियों का दहन कराने वाला (नहि) न (भुवत्) होवे, किन्तु ज्ञान का वर्धक होवे (नेमानाम् पते) हे हम अल्पज्ञों के पालक वा स्वामिन् ! (अथ) इस प्रयोजन

के लिये (दुवः) हमारी की हुई भक्ति को (वनवरो) स्वीकार कीजिये ॥

(दुवः) यह परिचर्या भक्ति सेवा का नाम है । निघं० ३ । ५ ऋ० ६ । १६ । १८ में भी ॥ ३ ॥ [२१]

अथ प्रगाथस्य--तृतीयसूक्तस्य सौभरिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । ककुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३ २ ३ १ २ ३ १उ ३ १ २ ३ १ २
(७०८) वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।
१ २ ३ १ २
वज्रिञ्चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

व्याख्यात (४०८) इस की व्याख्या (४०८) पर हो चुकी ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
(७०९) उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥ [२२]

भावार्थः-(इन्द्र) हे राजन् ! हम (कर्मन्) व्यवहार [मुकद्दमें] में (त्वा) आप के (उप) शरण में आते हैं । (यः) जो आप (धृषत्) हम पर अन्याय करने वालों का दण्डादि से दमन करते हैं (सः) वह आप (उग्रः) असह्य तेजस्वी (युवा) वीर पुरुष दृढाङ्ग (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (चक्राम) दौरा करते हैं । अतः (सखायः) हम एक दूसरे के मित्र बनते हुवे (सानसिम्, अवितारम्, त्वाम्,इत् हि) संभजनीयरक्षक आप का, ही (ववृमहे) [राज्य के लिये] वरण करते हैं ॥

प्रजावर्ग को चाहिये कि राजगद्दी के लिये ऐसे पुरुष का वरण करें जो कि व्यवहारों को सुने, देखे, दृढाङ्ग और दृढव्यवसाय हो, जिस की उग्रता शत्रुओं को असह्य हो, जो राजभक्तों का सेवनीय और सब का रक्षक हो ॥

अष्टाध्यायी २ । ४ । ७३ ॥ ३ । १ । ८५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । २१ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृचस्य चतुर्थसूक्तस्य--नृमेध ऋषिः । इन्द्रोदेवता । ककुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७१०) अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे ।

३ २३ १ २ ३ २ २
उर्देव ग्मन्त उद्भिः ॥ १॥

व्याख्याता (४०६) इस की व्याख्या (४०६) में हो चुकी ॥

अथ द्वितीया

१ २र ३ २ ३ १ ३ ३ १ २
(७११) वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
३ १ २ ३ १ २
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवे दिवे ॥ २ ॥

भावार्थः-(अद्रिवः) हे वज्रादिधारी ! (शूर) वीर ! राजन् ! (न) जैसे (यव्याभिः) नदियों से [निघं० १ । १३] वा नहरों से (वाः) जल को (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं (चित्) इसी प्रकार (ब्रह्माणि) वेदोक्तकर्म वा वेद (वावृध्वांसम् । वृद्धि चाहते हुवे (त्वा) आप को (दिवे दिवे) प्रतिदिन बढ़ाते हैं । इस लिये आप को वेदोक्त कर्मानुष्ठान करना चाहिये । यह भाव है ॥ ऋ० ८ । ८८ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

३ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
(७१२) युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वचोयुजा । इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥ ३ ॥ [२३]

इति प्रथमोऽर्धप्रपाठकः ॥

भावार्थः-(इषिरस्य) कहीं जाना चाहते हुवे राजा के (उरु युगे, उरौ, रथे) बड़े जुवे वाले, बड़े, रथ में (वचोयुजा, स्वर्विदा, इन्द्रवाहा) वचन से ही जुतवाने वाले, सुखदायक राजावाहन (हरी) घोड़ों को (गाथया) राजा की प्रशंसा के साथ (युञ्जन्ति) सारथि आदि जोतते हैं ॥ ऋ० ८ । ८८ । ९ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

यह श्रीमत्कश्यपवंशावतंस पं० स्वामी हज़ारीलाल के पुत्र
परीक्षितगढ़ (ज़िला-मेरठ) निवासी तुलसीराम
स्वामिकृत सामवेदभाष्य उत्तरार्चिक में
प्रथमाऽध्याय समाप्त हुवा ॥ १ ॥

ओ३म्

अथ द्वितीयाध्यायः

तत्र प्रथमे खण्डे, प्रथमे तृचेसूक्ते, प्रथमायाः-श्रुतकक्ष ऋषिः।
इन्द्रोदेवता। अनुष्टुप् छन्दः॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(७१३) पान्तमावो अन्धसइन्द्रमभि प्रगायत।
३ १ २ ३ १ १ ३ १ २ ३ २
विश्वासाहꣳ शतक्रतुं मꣳहिष्ठंचर्षणीनाम्॥ १॥

व्याख्याता (१५५) इसकी व्याख्या (१५५) में हो चुकी है॥ १॥
अथ द्वितीयायाः-ऋषिर्देवता च पूर्ववत्। गायत्री छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २
(७१४) पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं ऽ ३ ऽ सनश्रुतम्।
२ ३ १ २
इन्द्र इति ब्रवीतन॥ २॥

भावार्थः—हे ऋत्विजो! तुम (पुरुहूतम्) बहुतों से या बहुत पुकारे हुवे (पुरुष्टुतम्) बहुत स्तुत किये हुवे (गाथान्यम्) गान कीर्तन करने योग्य (सनश्रुतम्) सदा से सनातन भाव से प्रसिद्ध परमात्मदेव को (इन्द्रइति) इन्द्र नाम से विख्यात (ब्रवीतन) कहो॥ ऋ० ८। ९२। २ में भी॥ २॥

अथ तृतीयायाः—ऋष्यादयं उक्ताः॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
(७१५) इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः।
३ १ २ ३ १ २
महाँ अभिज्ञ्वायमत॥ ३॥ [१]

भावार्थः—(इन्द्रः इत्) परमात्मा ही (नः) हमारे लिये (महोनां वाजानाम्) बड़े बलों का (दाता) देने वाला है, (नृतुः) वही हमारा कर्म-

नुकूल नचाने वाला है (महान्) बड़ी अनन्त (अभिशु) घुटनों के बल (आयसत्) हम को कर्ममय बन्धनों से बांधता है ऋ० ८। ९२। ३ में भी ॥३॥

अथ द्वितीयस्य तृचसूक्तस्य-वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

तत्र प्रथमा

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७१६) प्र व इन्द्राय मादनꣳ हर्यश्वाय गायत।
१ २ ३ १ २
सखायः सोमपाव्ने ॥ १ ॥

व्याख्याता (१५६) इस की व्याख्या (१५६) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

२र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २र ३ १ २
(७१७) शꣳसेदुक्थꣳ सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः।
३ २ ३ १ २
चकृमा सत्यराधसे ॥ २ ॥

भावार्थः– (यथा) जिस प्रकार (नरः) हम कर्मकाण्ड के नायक लोग (सत्यराधसे, सुदानवे) सत्य जिस का धन है, जो शोभन दानी है उस इन्द्र=परमात्मा के लिये (द्युक्षम्) प्रकाश का साधनभूत (उक्थम्) स्तोत्र (चकृम) करते हैं (उत) ऐसेही (शंस) तू भी उच्चारण कर (इत) पादपूरणार्थ है॥

अर्थात् मनुष्यों को परस्परोपदेश से परमेश्वर की स्तुति उपासना प्रार्थना का प्रचार करना चाहिये, जिस से ज्ञानप्रकाश बढ़े॥ नि० १। ९ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० ७। ३१। २ में भी॥ २॥

अथ तृतीया

१ २ ३ २उ ३ १ २
(७१८) त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो।
१ २ ३ १ २
त्वं हिरण्ययुर्वसो॥ ३॥ [२]

भावार्थः–अब स्तोत्र कहा जाता है कि-(इन्द्र) हे परमेश्वर! (त्वम्) आप (नः) हमारे लिये (वाजयुः) अन्न की इच्छा वाले और (शतक्रतो) हे अनन्तज्ञान! (त्वम्) आप (गव्युः) गौ आदि पशु की इच्छा वाले तथा

(वसो) हे वास देने वाले ! (त्वम्) आप (हिरण्ययुः) सुवर्णादि धन चाहने वाले हूजिये ॥

अर्थात् आप हमारे लिये ऐसी इच्छा करें कि हमारे पास अन्न पशु लक्ष्मी आदि सब सुखसामग्री विद्यमान हो ॥ व्याकरण का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ७ । ३१ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयस्य तृचसूक्तस्य-मेधातिथि प्रियमेधावृषी । इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(७१९) वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वा यन्तः सखायः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

व्याख्याता (१५७) इसकी व्याख्या (१५७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(७२०) न घेमन्यदापपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।
२उ ३र १ २
तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥ २ ॥

भावार्थः—(वज्रिन्) हे दुष्टनिबर्हण ! नियन्तः ! परमेश्वर ! मैं (अपसः) कर्मकाण्ड के (नविष्टौ) नवीन यज्ञ [आरम्भ] में (अन्यत्) आप को छोड़ अन्य की (न घ ईम्) नहीं ही (आपपन) स्तुति करता हूं (उ) क्योंकि (तव इत्) आप के ही (स्तोमैः) स्तोत्रों से (चिकेत) ज्ञान पाता हूं ॥

ज्ञानलाभ के लिये मनुष्यों को परमात्मा का परित्याग करके अन्य की स्तुति नहीं करनी चाहिये ॥ व्याकरण और निघण्टु ३ । १४ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८ । २ । १७ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
(७२१) इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
१ २ ३ २ ३ १ २
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥ [३]

भावार्थः—हे इन्द्र! परमेश्वर! (देवाः) विद्वान् लोग (इच्छन्तम्) अपने साक्षात् कराते हुवे आप को (इच्छन्ति) इच्छा करते हैं, और (स्वप्नाय) निद्रा के लिये (न स्पृहयन्ति) नहीं इच्छा करते। किन्तु (अतन्द्राः) निरालस होकर (प्रमादम्) अत्यन्तानन्द को (यन्ति) प्राप्त होते हैं॥

अर्थात् परमात्मा का साक्षात्कार चाहने और यत्न करने वालों के निद्रा आलस्यादि तमोगुण दूर हो जाते हैं, निरन्तर आनन्द प्राप्त होता है॥

अष्टाध्यायी १। ४। १६ आदि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद ८। २। १८ में भी॥ ३॥

अथ चतुर्थतृचसूक्तस्य—श्रुतकक्ष ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः

तत्र प्रथमा

१ २ ३ १ २ ३१र २र ३ १ २
(७२२) इन्द्राय मद्वने सुतं परिष्टोभन्तु नो गिरः।
३ १ २ ३ १ २
अर्कमर्चन्तु कारवः॥ १॥

व्याख्याता (१५८) इस की व्याख्या (१५८) में हो चुकी है॥१॥

अथ द्वितीया

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(७२३) यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः।
१ २ ३ २ २
इन्द्रं सुते हवामहे॥ २॥

भावार्थः-(सप्त) सात ७ (संसदः) योगभूमियों में आसन जमाने वाले पुरुष (यस्मिन्) जिस परमेश्वर में (विश्वाः) सब (श्रियः) योग लक्ष्मियों को (अधि रणन्ति) अधिकता से वर्णित करते हैं (सुते) मन शुद्ध होने पर (इन्द्रम्) उस परमेश्वर को (हवामहे) हम पुकारते हैं॥

अथवा-(सप्त संसदः) सात ऋत्विज्=३ उद्गाता, ४ होता, ५ मैत्रावरुण, ६ ब्राह्मणाच्छंसी, ७ अच्छावाक (यस्मिन्) जिस सोम में (विश्वाः सब (श्रियः) सौभाग्यलक्ष्मियों को (अधिरणन्ति) अधिकता से बताते हैं (सुते उस सोम के सम्यक् अभिषुत हो जाने पर (इन्द्रम्) वृष्टिकारक भौतिक देवविशेष को (हवामहे) हम प्रशंसित करते हैं॥ ऋ० ८। ९२। २० में भी॥२

अथ तृतीया

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७२४) त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
१ २र ३ १ २
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥ [४]

भावार्थः-(देवासः) विद्वान् लोग (त्रिकद्रुकेषु) त्रिकद्रुकनामक यज्ञ के ३ दिनों में (चेतनं यज्ञम्) ज्ञानसाधन यज्ञ का (अत्नत) विस्तार करते हैं (तम् इत) उसी यज्ञ को (नः) हमारी (गिरः) वाणी (वर्धन्तु) बढ़ावें ॥
आभिप्लविक ३ दिन त्रिकद्रुक होते हैं। जैसा कि गवामयनादि सत्र (यज्ञ) ३६१ दिन में सिद्ध होता है उन में १-प्रायणीयोऽतिरात्र,२-चतुर्विंश,३-उक्थ, ४-ज्योतिर्गौ,५-आयुर्गौ,६-आयुर्ज्योति;ये छः ६ दिन आभिप्लविक कहाते हैं, इन में ४ । ५ । ६ ये अन्त के तीन त्रिकद्रुक हैं। अष्टाध्यायी २ । ४ । ७३ और ६ । ४ । ९९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥
ऋ० ८ । ९२ । २१ में भी ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयखण्डे प्रथमतृचस्य-इरिमिठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्रीछन्दः

तत्र प्रथमा

३ १ २ ३ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २
(७२५) अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधिबर्हिषि ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ १ ॥

व्याख्याता (१५९) इस की व्याख्या (१५९) में आ गई ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
(७२६)शाचिगो शाचिपूजनायꣳ रणाय ते सुतः ।
१ २ ३ १२
आखण्डल प्रहूयसे ॥ २ ॥ —

भावार्थः (शाचिगो) समर्थ किरणयुक्त (शाचिपूजन) किरणों के समर्थक (आखण्डल) मेघ के अवयवों को खण्ड २ करने वाले सूर्य ! (अयम्)

यह सोम (ते) तेरे (रणाय) मेघों के साथ संग्राम और विजय के लिये (सुतः) खींचकर रक्खा है(प्रहूयसे) और आह्वान वा वर्णन किया जाता है ॥

अर्थात् सूर्य की किरणें समर्थ हैं और सूर्य रन का समर्थक है। इसलिये सूर्य और मेघ के युद्ध में सूर्य के विजय अर्थात् वृष्टि के लिये सोम से यज्ञ करना चाहिये ॥ ऋ० ८। १७। १२ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(७२७) यस्ते शृङ्गवृषोणपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः।

२र ३ १र २र
न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥ ३ ॥ [५]

भावार्थः—(शृङ्गवृषोणपात्) रश्मियों से वर्षाने वाले इन्द्र=सूर्य का पतन न कराने वाले। अर्थात् अपने स्थान पर स्थित रखने वाले इन्द्र ! (यः) (जो प्रणपात्) अतिशय करके न गिराने वाला=रक्षा करने वाला (ते) तेरा (कुण्डपाय्यः) कुण्डपाय्य यज्ञविशेष है (अस्मिन्) इस यज्ञ में [ऋत्विगादि लोग] (मनः) चित्त को (नि आ दध्रे) नितरां धारण करते हैं॥

अष्टाध्यायी २। १। २॥ ३। १। १३० ॥ ६। ४। ७६ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८। १७। १३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—कुसीदः काण्व ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
(७२८) आतू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं संगृभाय।

३ २र २र
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥

व्याख्याता (१६७) इस की व्याख्या (१६७) में हो चुकी ॥१॥

अथ द्वितीया

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ २
(७२९) विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम्।

३ १र २र
तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥

भावार्थः—हे राजन्निन्द्र ! (अवोभिः) आप की की हुई हमारी रक्षाओं से (त्वा) आप को (तुविकूर्मिम्) बहुकर्मयुक्त पुरुषार्थी (तुविदेष्णं) बहु-दानी (तुवीमघम्) बहुत धनी और (तुविमात्रम्) बहुत बड़े परिमाण वाला हम (विद्म) जानते हैं (हि) निश्चय ॥

निघण्टु ३ । १ ॥ २ । १० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ८१ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २र ३ २र २र ३ १ २
(७३०) न हि त्वा शूर देवा न मर्त्तासो दित्सन्तम् ।
३ २उ ३ १ २
भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥ [६]

भावार्थः (शूर) पराक्रमी राजन् ! (दित्सन्तम्) शत्रुओं के शिर काटना चाहते हुवे (गाम्) बैल के (न) तुल्य बली (त्वा) आप को (देवाः) देवता (न, हि) नहीं (मर्त्तासः) और मनुष्य (न) नहीं (वारयन्ते) रोकते ॥

अर्थात् दैवी और मानुषी कोई बाधा विघ्न नहीं कर सकतीं । विज्ञान बल से दैवी और बाहुबल से मानुषी रुकावटों को आप हटा सकते हैं ॥ ऋ० ८ । ८१ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(७३१) अभि त्वा वृषभा सुते सुतꣳ सृजामि पीतये ।
३ १ २ ३ १ २
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥

व्याख्याता (१६१) इस की व्याख्या (१६१) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ द्वितिया

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ २
(७३२) मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आदभन् ।
१ २ ३ १ २
मांकी ब्रह्मद्विषं वनः ॥ २ ॥

भावार्थः—(अविष्यवः) भोजनभट्ट लोग [निघं० २ । ८] जो कि (उपहस्वानः) उपहास करने वाले और (मूराः) मूढ हैं (त्वा) तुझ को (मा दभन्) न हिंसित करें और तू भी (ब्रह्मद्विषम्) वेद के द्वेष करने वाले को (माकीम्) मत (वनः) भज ॥

अर्थात् इन्द्रयागादि कर्मानुष्ठान के विरोधी, स्वार्थी, मूढ़ लोग यज्ञ के नाश से वृष्टिकारक इन्द्र के विघातक न हों और इन्द्र से उन्हें आनुकूल्य भी न हो। यह परमात्मा का अनुग्रह प्रार्थित है ॥ ऋ० ८ । ४५ । २३ में भी ॥२॥

अथ तृतीया

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७३३) इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे ।
१ २ ३ १र २र
सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥ [७]

भावार्थः—(गोपरीणसम्) किरणों में मिले हुवे (त्वा) तुझ इन्द्र को (इह) इस यज्ञ में (महे) बड़े (राधसे) अन्नादि धन के लिये [वृष्टि द्वारा] (मन्दन्तु) मनुष्य सोम से हृष्ट अर्थात् वृष्टि आदि स्वकार्य करने में अनुकूल करें। और तू (पिब) उस सोम को शोष। दृष्टान्त—(यथा) जैसे (गौरः) गौर मृग (सरः) सोमरसरूप जल को पीता है तद्वत ॥

निघण्टु १ । ४ ॥ २ । १० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थतृचस्य—काण्वः प्रियमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(७३४) इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
१ २ ३ १ ३
अनाभयिन् ररिमा ते ॥ १ ॥

व्याख्याता (१२४) इस की व्याख्या (१२४) में हो चुकी ॥१॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
(७३५) नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥

अथ तृतीया

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(७३६) तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र त्वास्मिन्सधमादे ॥ ३ ॥ [८]

भावार्थः—(नृभिः) कर्म के नेता ऋत्विजों से (धौतः) धोया हुवा, फिर (अश्नैः) अश्मा=पत्थरों से (सुतः) छेल कर निचोड़ा हुवा और (अव्यावारैः) ऊर्णामय दशापवित्रों से (परिपूतः) सर्वथा स्वच्छ किया हुवा सोम है (न) जैसा (नदीषु) नदियों में (निक्तः) स्नान कराया हुवा (अश्वः)घोड़ा ॥ (तम्) उस सोम को (ते) आप के लिये (श्रीणन्तः) दुग्धादि में मिला कर पकाते हुवे हम लोग (स्वादुम्) स्वाद (अकर्म) बनाते हैं । दृष्टान्त—(यथा) जैसे (गोभिः) गौवों के लिये (यवम्) यवादि से सिद्ध किया दलिया आदि रातिब स्वादु बनाते हैं तद्वत् (इन्द्र) हे राजन् । यजमान ! (अस्मिन्) इस (सधमादे) यज्ञ में (त्वा) आप को 'हम सोम पिलाते हैं' यह शेषार्थ है ॥

जिन घटों में सोम ग्रहण किया गया हो वे घट "ग्रह" कहाते हैं। और वे (ग्रह) प्रातःसवन में "उपांशु" आदि, माध्यन्दिन सवन में "मरुत्वतीयादि" तृतीयसवन वा सायंसवन में "आदित्यादि" संज्ञक होते हैं । इन के अतिरिक्त षोडशी आदि यज्ञों में बहुत से "षोडशी" संज्ञकादि (ग्रह) घट होते हैं । इन सब के अतिरिक्त एक "अदाभ्य" नामक ग्रह होता है । और यह वह ग्रह है कि जिस गूलड़ की लकड़ी के पात्र में सोम रक्खा हो, उस में होता के चमसे वाले "निग्राभ्या" नामक जल लेकर उस में तीन सोमलता-खण्ड डाल कर "अग्नये त्वा०" (यजुः ८।४७) इत्यादि तीन मन्त्रों से क्रम से ग्रहण किया जाता है । ऐसा ही कात्यायन ने १२ । ५ । १३-१५ में कहा है कि "अदाभ्यं गृह्णाति०" इत्यादि ॥

अष्टाध्यायी २ । ४ । ८० का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ८ । २ । २-३ में (अव्योवारैः) पाठन्तर है ॥ २-३ ॥

अथ तृतीयखण्डे प्रथमतृचसूक्तस्य—विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३ १र २र ३ १ २
(७३७) इदं ह्यन्वोजसा सुतंराधानां पते ।
२ ३ २ १ ३
पिबा त्वा ऽ३स्य गिर्वणः ॥ १ ॥

व्याख्याता (१६५) इस की व्याख्या (१६५) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

२ ३ १ ३ २ १र २र ३ २र ३र ३क २र
(७३८) यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नियच्छ तन्वम् ।
१ २
स त्वा ममत्तु सोम्य ॥ २ ॥

भावार्थः-(सोम्य) हे सोमपानयोग्य राजन् ! इन्द्र ! (सुते) अभिषुत होने पर (यः) जो सोम (ते) आप के लिये (स्वधाम् अनु) भोजन के साथ (असत्) होवे (सः) वह सोम (त्वा) आप को (ममत्तु) हृष्ट करे और आप (तन्वम्) शरीर को (नियच्छ) नियम से रखिये ॥

मनुष्यों को सोमरस खींचकर राजा के अर्पण करना चाहिये और राजा को उस का सेवन करके व्यायामादि से शारीरिक उन्नति करनी चाहिये ॥

अष्टाध्यायी ८ । १ । ६६ ॥ ४ । ४ । १३७ ॥ ६ । ४ । ८६ और ६ । १ । १६२ के प्रमाण और ऋ० ३ । ५१ । ११ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(७३९) प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
२ ३ १ २ ३ २
प्र बाहू शूर राधसा ॥ ३ ॥ [९]

भावार्थः-(शूर) वीर ! (इन्द्र) राजन् ! (ते) आप की (कुक्ष्योः) दोनों कोखों में (प्र,अश्नोतु) उक्त सोमरस व्याप जावे (ब्रह्मणा) भोजन के रस के साथ (शिरः) शिर को (प्र) व्याप जावे और (राधसा) धनैश्वर्य के साथ (बाहू) दोनों भुजों को (प्र) व्याप जावे ॥

निघं० २ । ७ ॥ २ । १० अष्टाध्यायी ३ । १ । ८५ के प्रमाण और ऋ० ३ । ५१ । १२ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचसूक्तस्य-मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

(७४०) आ त्वे ता निषीदतेन्द्रमभिप्रगायत ।

१ २ ३ १ २

सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥

व्याख्याता (१६४) इस की व्याख्या (१६४) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

(७४१) पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २

इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥

भावार्थः-हे मित्रो । [यह पूर्वमन्त्र से लेकर] (पुरूतमम्) बहुत शत्रुओं के नाशक (पुरूणाम्) बहुत (वार्याणाम्) धनादि वरणीय पदार्थों के (ईशानम्) स्वामी (इन्द्रम्) परमात्मा को (सोमे सुते) सोम अभिषुत होने पर (सचा) मिलकर [अभिप्रगायत] गाओ ॥ ऋ० १ । ५ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र

(७४२) स घा नो योग आभुवत्स राये स पुरन्ध्या ।

२ ३ १ २ ३ १र २र

गमद्वाजेभिरासनः ॥ ३ ॥ [१०]

भावार्थः-हे मित्रो ! (स घ)वही ईश्वर (नः) हमारे (योगे) योग-साधन में (आभूवत्) साक्षात् हो, (सः) वही (राये) धन के लिये अनुकूल हो, (सः) वही (पुरन्ध्या) बुद्धि से अनुकूल हो (सः) वही (नः) हम को (वाजेभिः) बलों वा अन्नों से (आगमत्) प्राप्त हो ॥ ऋ० १ । ५ । ३ में "पुरन्ध्याम्" पाठ है ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचसूक्तस्य-शुनश्शेप ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(७४३) योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥

व्याख्यात (१६३) इस की व्याख्या (१६३) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया.

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
(७४४) अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ २ ॥

भाषार्थः—(प्रत्नस्य) सनातन (ओकसः) मोक्षपद के (अनु) आनुकूल्य से (नरम्) लेजाने वाले (तुविप्रतिम्) बहुत समय के प्रति पहुंचाने वाले (ते) आप को (हुवे) मैं स्तुत करता हूं (यम्) जिस आप को (पूर्वम्) इस से पूर्व (पिता) मेरे गुरु ने (हुवे) स्तुत किया है ॥

शिष्य प्रशिष्यों को गुरुपरम्परा से परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना करनी चाहिये । यह भाव है ॥ ऋ० १ । ३० । ९ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७४५) आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ३ ॥ [११]

भाषार्थः—प्रकरण से परमेश्वर (यदि) जो (नः) हमारे (हवम्) स्तोत्र वा पुकार को (श्रवत्) सुनले स्वीकार करले (घ) तो उसी समय (सहस्रिणीभिः) बहुत सी (ऊतिभिः) रक्षाओं और (वाजेभिः) बलों के साथ (उप आ गमत्) हमको प्राप्त होवे ॥ ऋ० १ । ३० । ८ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थतृचसूक्तस्य-नारद ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ २ ३क ३र

(७४६) इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

विदे वृधस्य दक्षस्य महां हि षः ॥ १ ॥

व्याख्याता (३८१) इस की व्याख्या (३८१) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २३ २

(७४७) स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ ३

सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥

भावार्थः—(सः) वह परमेश्वर (देवानाम्) सूर्यादि के (सदने) स्थान (प्रथमे) विस्तृत (व्योमनि) आकाश में (वृधः) महिमा से स्थित (सुपारः) भक्तों के कार्य भले प्रकार पूरे करने वाला (सुश्रवस्तमः) अत्युत्तम यश वाला (समप्सुजित्) कर्मों में [निघं० २ । १] भले प्रकार जीतने वाला= कर्मानुकूल फलदायी है ॥ ऋ० ८ । १३ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २

(७४८) तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥ [१२]

भावार्थः—(वाजसातये) बलों का जिस में लाभ है ऐसे (भराय) कामादि शत्रुओं से संग्राम के लिये (तम् उ) उस ही (शुष्मिणम्) महाबली (इन्द्रम्) परमेश्वर को (हुवे) पुकारता हूं कि हे परमेश्वर ! आप (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि (सुम्ने) और सुख के निमित्त (अन्तमः) समीपवर्त्ती (सखा) मित्र (भव) हूजिये ॥

निघं० २ । १७ ॥ ३ । ६ ॥ २ । १ के प्रमाण और ऋ० ८ । १३ । ३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थखण्डे प्रगाथस्य प्रथमसूक्तस्य—वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३१ २ ३ १ २र३ १ २र३१ २
(७४९) एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
प्रियं चेतिष्ठमरतिꣳ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१॥

व्याख्याता (४५) इस की व्याख्या (४५) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
(७५०) स योजते अरुषा विश्वभोजसा स
२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ ३
दुद्रवत्स्वाहुतः । सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी
१ २ ३ २उ ३ १ २
वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥२॥ [१३]

भावार्थः—(सः) वह पूर्वमन्त्रोक्त अग्नि (जनानाम्) यजमानादि जनों के (वसूनाम्) धनों में (देवम्) उत्तम (राधः) धन को (योजते) युक्त करता है । (सः) वह (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार आहुति दिया हुवा (सुब्रह्मा) उत्तम ब्रह्मावाला (सुशमी) शोभन शमी आदि काष्ठ वाला (यज्ञः) होम (विश्वभोजसा) संसार के रक्षक (अरुषा) तेज से (दुद्रवत्) दूर तक जाता है ॥

ऋग्वेद ७ । १६ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ प्रगाथस्य द्वितीयसूक्तस्य—वसिष्ठ ऋषिः । उषा देवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २
(७५१) प्रत्यु अदर्श्यायत्यू ऽ ३ ऽ इच्छन्ती दुहिता दिवः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥

व्याख्याता (३०३) इस की व्याख्या (३०३) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
(७५२) उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च संभक्तेन गमेमहि ॥२॥ [१४]

भावार्थः–(सूर्यः) सूर्यलोक (उद्यन्) सदा उदित (नक्षत्रम्) नक्षत्र और (अर्चिवत्) किरणों वाला है । और वह (सचा) एक साथ ही (उस्रियाः) किरणों को (उत् सृजते) ऊपर को छोड़ता है । तथा च–(उषः) प्रभात वेला । हम (तव) तेरे (च) और (सूर्यस्य) सूर्य के (व्युषि) प्रकाश में (इत्) ही (भक्तेन) अन्न से (संगमेमहि) समागम करें ॥

मनुष्यों को सदा सूर्यादि के प्रकाश में ही भोजन करना चाहिये, अन्धकार में नहीं । यह तात्पर्य है ॥ सायणाचार्य ने इस के भाष्य में लिखा है कि "सूर्य के तेज से ही रात्रि में चन्द्रादि नक्षत्र चमकते हैं" इस से पाया जाता है कि सायण तक हमारे देशवासी इस विज्ञान को वेदादि शास्त्रानुसार जानते, मानते रहे ॥ ऋग्वेद ७ । ८१ । २ में "सचाँ" पाठ है ॥ २ ॥

अथ प्रगाथस्य तृतीयसूक्तस्य–वसिष्ठ ऋषिः । अश्विनौ देवते । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७५३) इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशं विशं हि गच्छथः ॥१॥

इस की व्याख्या (३०४) में आ गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७५४) युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अर्वाग्रथं समनसा नियच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥२॥ [१५]

भावार्थः–(नरा) सब जगत् के नेता ! (समनसा) समान मन वाले सूर्य और चन्द्रमा ! (युवम्) तुम दोनों (सूनृतावते) वैदिकवाणीवाले यज्ञानुष्ठानसंपन्न पुरुष के लिये (चित्रम्) अनेक प्रकार का (भोजनम्)

भोजन (ददथुः) देते हो, (चोदथाम्) कर्म में प्रवृत्त करते हो, (अर्वाक्) जगत् के सामने (रथम्) अपने रमणीय स्वरूप को (नियच्छतम्) नियम पूर्वक लाते हो। सो तुम दोनों (सोम्यम्) सोम का (मधु) रस (पिबतम्) शोषण करो ॥

सूर्य चन्द्रमा शीतोष्ण से जगत् के निर्वाहक हैं। औषधि वनस्पत्यादि रूप भोजन सब के लिये देते हैं। प्रकाश से जगत् को व्यापार में प्रवृत्त करते हैं और सोमादि ओषधियों के रस को पीकर जगत् का उपकार करते हैं। जिस प्रकार मनुष्यादि के भीतरी बलसाधन का नाम मन है, इसी प्रकार सूर्य चन्द्र के आन्तरिक बलसाधन को यहां मन जानिये। ऋ० ३।७४।२ में भी ॥२॥

अथ पञ्चमे खण्डे प्रथमस्य तृचसूक्तस्य—अवत्सार ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७५५) अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः।
१ २ ३ १र २र
पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अस्य) इस सोम की (प्रत्नाम्) पुरातन (द्युतम्) चमक को (अनु) पहचान कर (अह्रयः) विद्वान् ऋत्विज् (शुक्रम्) श्वेत (सहस्रसाम्) बहुतों के सेवनीय (ऋषिम्) बुद्धिवर्द्धक (पयः) दुग्ध को (दुदुह्रे) दुहते हैं ॥

अष्टाध्यायी ३।२।६७॥ ६।४।४१॥ ६।१।६७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ यजुः ३।१६ ऋ० ९।५४।१ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ १ २१र ३ २ ३१र २र
(७५६) अयꣳ सूर्यइवोपदृगयꣳ सराꣳसि धावति।
३ २ ३ २र३ १र २र
सप्त प्रवत आदिवम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अयम्) यह सोम (सूर्य इव) सूर्यवत् (उपदृक्) नेत्रसहायक है। (अयम्) यह सोम (सरांसि) ३० उक्थ पात्रों अथवा महीने के ३० दिनों को तथा (सप्त) सात ७ (प्रवतः) नदियों रूप पूरादिकों को (आदिवम्) द्युलोकपर्यन्त (धावति) जाता है ॥

निरुक्तकार यास्क ५।११ में कहते हैं कि-"याज्ञिक लोग तो 'सरांसि' पद से ३० उक्थपात्रों का अर्थ बतलाते हैं जोकि माध्यन्दिन सवन में एक देवता वाले होते हैं और जिन को उस समय में एक प्रतिधान से पीते हैं। तथा नैरुक्तों की यह सम्मति है कि ३० अपरपक्ष के अहोरात्र और ३० पूर्व पक्ष के अहोरात्र हैं। जोकि चन्द्रमा से आने वाले जल हैं, उन को किरणें अपरपक्ष में पीती हैं। तथा हि-(यमक्षि०) यह वेद में कहा है। उस को पूर्व पक्ष में आप्यायित करती हैं, जैसाकि-(यथा देवाः) वेद में कहा है" ॥ ऋ० ९। ५४। २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

३ १र २र ३ १र २र३ १ २
(७५७) अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि ।
१ २ ३ १र २र
सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥ [१६]

भावार्थः-(अयम्) यह सोम (विश्वानि) सब (भुवना) भुवनों को (पुनानः) शुद्ध करता हुवा (उपरि) आकाश में (तिष्ठति) स्थित होता है। (न) जैसे (देवः) प्रकाशमान (सूर्यः) सूर्य सब भुवनों को किरणों से शोधता हुवा स्थित है ॥ ऋ० ९। ५४। ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचसूक्तस्य—असितः काश्यपोऽमहीयुर्वा ऋषिः। सोमोदेवता। गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(७५८) एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।
१ २ ३ १ २
हरिः पवित्रे अर्षति ॥ १ ॥

भावार्थः-(हरिः) हरित वर्ण (एषः) यह सोम (प्रत्नेन) प्राचीन (जन्मना) जन्म से (सुतः) अभिषुत किया हुवा (देवः) द्योतमान (पवित्रे) दशापवित्र पर रक्खा हुवा (देवेभ्यः) वायु आदि देवों के लिये (अर्षति) प्राप्त होता है ॥ ऋ० ९। ३। ९ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(७५९) एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि ।

३ १र २र
कविर्विप्रेण वावृधे ॥ २ ॥

भाषार्थः—(एषः) यह सोम (प्रत्नेन) पुराणे (मन्मना) ज्ञानसाधन से (देवः) प्रकाशमान (कविः) बुद्धि तत्त्व का उभारने वाला (विप्रेण) विद्वान् ऋत्विज् से (देवेभ्यः) वायु आदि के लिये (परि वावृधे) सब ओर बढ़ता है ॥ ऋ० । ९ ।४२। २ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥२॥

अथ तृतीया

३ २ ३ १र २र ३ ३ ३ १ २
(७६०) दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परिषिच्यसे ।
१ २ ३ १ २
क्रन्दन्देवाँ अजीजनः ॥ ३ ॥ [१७]

भाषार्थः—(प्रत्नम्) पुराणे (इत्) ही (पयः) रस को (दुहानः) पूर्ण करता हुआ सोम (पवित्रे) दशापवित्र पर (परिषिच्यसे) सर्वतः सेचन किया जाता है । (क्रन्दन्) अग्नि में पड़ने से चटचट करता हुआ (देवान्) वायु आदि देवों को (अजीजन) जनता है ॥ ऋ० ९ । ४२ । ३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचसूक्तस्य—ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(७६१) उपशिक्षापतस्थुषो भियसमाधेहि शत्रवे ।
१ २ ३ २ १ २
पवमान विदा रयिम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(पवमान) सोम । (अपतस्थुषः) विरोध में खड़े होने वालों को (उपशिक्ष) दण्ड से शिक्षा दे (शत्रवे) शत्रु के लिये (भियसम्) भय (आधेहि) रख (रयिम्) और राज्यलक्ष्मी का (विदाः) लाभ करा ॥

सोम सेवन करने वाले वीरों के शत्रुओं का नाश और राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति होती है ॥ ऋ० ९ । १९ । ६ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
(७६२) उपोषु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।

१ २ ३ १ २
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ २ ॥

इस की व्याख्या (४८७) में हो चुकी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(७६३) उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
३ २ ३ १ २र
अभि देवाँ इयक्षते ॥ ३ ॥ [१८]

इस की व्याख्या (६५१) में आगई ॥ ३ ॥

अथ षष्ठे खण्डे प्रथमतृचसूक्तस्य—श्यावाश्व ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(७६४) प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः ।
१ २ ३ १ १
वनानि महिषा इव ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४७८) में हो गई ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ १ २र ३ १ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २
(७६५) अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया ।
२ ३ १ २
वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(बभ्रवः) पीतवर्ण पके हुवे (शुक्राः) चमकीले सोम (ऋतस्य) यज्ञ की (धारया) परिणामरूप वर्षा से (गोमन्तम्) इन्द्रिययुक्त (वाजम्) बल वा अन्न को (द्रोणानि) दोनों अर्थात् मणों वा बहुत (अभिअक्षरन्) सर्वतः वर्षाते हैं ॥ ऋ० ९ । ३३ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

२ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(७६६) सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।

१ २ ३ १ २
सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ ३ ॥ [१९]

भावार्थः—(सुताः) खींचे हुवे (सोमाः) प्रसिद्ध २४ प्रकार के सोम (इन्द्राय) इन्द्र (वायवे) वायु (वरुणाय) जल (मरुद्भ्यः) ऋत्विजों [निघं० ३ । १८] और (विष्णवे) व्यापक सूत्रात्मा वायु के लिये (अर्षन्तु) यज्ञ द्वारा जावें ॥ ऋ० ९ । ३३ । ३ में "अर्षन्ति" पाठ है ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथात्मकद्वितीयसूक्तस्य भरद्वाजादयः सप्त ऋषयः ।
सोमो देवता । बृहती छन्दः ॥
तत्र प्रथमा

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(७६७) प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा । अंशोः पयसा
३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या (५१४) में हो चुकी है ॥ १ ॥
अथ द्वितीया

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
(७६८) आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥२॥[२०]

भावार्थः—(हर्यतः) इच्छा करने योग्य (अर्जुनः) श्वेत रङ्ग का (प्रियः) प्यारा (मर्ज्यः) शोधने योग्य (सूनुः न) पुत्र सा सोम (अत्के) पखालने पर (आ अव्यत) लिपड़ जाता है (तम् ईम्) उस इस सोम को (नदीषु) नाद करते हुए वसतीवरी नामक जलों में (गभस्त्योः) दोनों भुजाओं की अङ्गुलियें (आहिन्वन्ति) चलाती हैं । इस में दृष्टान्त-(यथा) जैसे (अपसः) शूरवीर लोग (रथम्) रथ को संग्रामों में चलाते हैं तद्वत् ॥

सायण, विवरणकार, निघं० २ । ४ ॥ २ । ६ के प्रमाण और ऋ० ९ । १०७ । १३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीयतृचसूक्तस्य—श्यावाश्व ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥
तत्र प्रथमा—

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ ३
(७६९) प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।

१२ ३ १२
सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥
इस की व्याख्या (४७७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
(७७०) आर्द्रीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् ।
२ ३ १ २र
अत्यो न गोभिरज्यते ॥ २ ॥

भावार्थः-(आत्) और (ईम्) यह सोम (यथा) जैसे (हंसः) सूर्य (गणम्) लोकसमूह को वश में करता है वैसे (विश्वस्य) सब की (मतिम्) बुद्धि को (अवीवशत्) वश में करता है । (अत्यः न) अश्व के समान (गोभिः) लगामों के तुल्य अङ्गुलियों से (अज्यते) वश में किया जाता है ॥

विवरणकार, अमर १ । ३ । ३१, निघं० १ । १४, १ । ५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ३२ । ३ में भी ॥ २ ॥

तत्र तृतीया

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७७१) आर्द्रीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
२ २ १ २ ३ १ २
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ३ ॥ [२१]

भावार्थः-(आत्) और (ईम्) इस (हरिम्) हरे (इन्दुम्) सोम को (त्रितस्य) १ विद्या २ शिक्षा ३ ब्रह्मचर्य युक्त ऋत्विज् की (योषणः) मिलाने वाली अङ्गुलियें (इन्द्राय) वृष्टिकारक विद्युद्विशेष के (पीतये) पीने= शोषण के लिये (अद्रिभिः) पत्थरों से (हिन्वन्ति) अभिषुत करती हैं ॥

त्रित शब्द पर व्याकरण, निरुक्त ४ । ६ इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ३२ । २ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थतृचसूक्तस्य प्रथमायाः-श्यावाश्व ऋषिः । सोमो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

३ १ २ ३१र २र १ २ ३ १ २
(७७२) अया पवस्व देवयूरेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ।

२ ३ १ २
मधोर्धारा असृक्षत ॥ १ ॥

भावार्थः—(देवयुः) देव=वायु आदि को चाहने वाला सोम (अया) इस हवन की जाती हुई धारा से (पवस्व) टपकता है। फिर (रेभन्) शब्द करता हुवा (विश्वतः) सब ओर को (पर्येषि) फैलता है। अनन्तर (मधोः) रस की (धाराः) धारों को (असृक्षत) छोड़ता है ॥

यहां से लेकर अध्यायान्त ३ ऋचाओं का—पदकार, विवरणकार, मूल और गानग्रन्थ के मतों से १ ही सूक्त देखा जाता है, परन्तु सायणाचार्य ने तीनों ऋचाओं के पृथक् २ एक २ ऋचा का एक २ सूक्त करके ३ सूक्त लिखे हैं। ऋ० ९। १०६। १४ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-प्रजापतिर्ऋषिः। छन्दोदेवते उक्ते ॥

१ २ ३ १उ ३२३ १ २ २ १ २
(७७३) पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांꣳसि रꣳह्या।
३क २र ३ १ २ ३ २३ १ २
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ २ ॥

इस की व्याख्या (५७६) में हो चुकी है ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः—अम्बरीष ऋषिः। सोमो देवता। अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
(७७४) प्र सुन्वायान्धसो मर्तो नवष्ट तद्वचः।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
अप श्वानमराधसꣳहता मखं न भृगवः ॥ ३ ॥ [२२]

इति द्वितीयोर्धप्रपाठकः प्रथमश्च प्रपाठकः समाप्तः ॥१॥

इस की व्याख्या (५५३) में की गई ॥ ३ ॥

द्वितीय अर्धप्रपाठक और प्रथम प्रपाठक समाप्त हुवा ॥१॥

विवरणकार कहते हैं कि त्रिवृत् स्तौमिक नामक प्रथम दिन समाप्त हुवा ॥

यह

कण्ववंशावतंस श्रीमान् पं० स्वामी हजारीलाल के पुत्र परीक्षितगढ़
(जिला—मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत
सामवेदभाष्य उत्तरार्चिक में
द्वितीयाध्याय समाप्त हुवा ॥ २ ॥

ओ३म्

अथ द्वितीयः प्रपाठकः

अथ तृतीयाऽध्यायः

तत्र—

पञ्चदृचात्मके प्रथमखण्डे प्रथमतृचसूक्तस्य—जमदग्निर्ऋषिः ।
पवमानः सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ १ २ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(७७५) पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः ।
३ १ २र १ २
अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥

भावार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप ! परमात्मन् ! (अग्रियः) सब में मुख्य आप (विश्वानि) सब (काव्या) स्तोत्रों और (वाचः) प्रार्थनाओं को (चित्राभिः) अनेक प्रकार की (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अभि) सर्वतः (पवस्व) पवित्र कीजिये ॥

विवरणकार लिखते हैं कि अब द्वितीय दिन का आरम्भ होता है और दूसरे ही प्रपाठक का। पञ्चदश स्तोम का दूसरा दिन होता है ॥ ऋ० ९ । ६२ । २५ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ १ २ ३ २ २ १र २र ३ १ २
(७७६) त्वꣳ समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् ।
१ २
पवस्व विश्वचर्षणे ॥ २ ॥

भावार्थः—(विश्वचर्षणे) हे सर्वसाक्षिन् ! (अग्रियः) मुख्य (त्वम्) आप (समुद्रियाः) आकाशस्थ मेघ के (अपः) जलों और (वाचः) वेद-

याज्ञियों का (ईरयन्) प्रेरित करते हैं। वह आप (पवस्व) हमें पवित्र कीजिये ॥ ऋ० ९। ६२। २६ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

२ ३ १र २र ३ १ २
(७७७) तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे।
१ २ ३ १ २
तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ३ ॥ [१]

भावार्थः (कवे) हे ज्ञानिन् ! (तुभ्यम्) आप की (महिम्ने) महिमा के लिये (इमा) ये (भुवना) भुवन (तस्थिरे) उपस्थित हैं। (तुभ्यम्) आप के लिये (धेनवः) वेदवाणियें (धावन्ति) दौड़ती हैं ॥

शतपथ ९। १। २। १७ का प्रमाण और ऋ० ९। ६२। २७ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचसूक्तस्य-अमहीयुर्ऋषिः। छन्दोदेवते पूर्वे ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(७७८) पवस्वेन्द्रो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने।
२ ३ २ ३ १ २
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या (४७९) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २
(७७९) यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः।
१ २ ३ १ २ ३ २
तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥ २ ॥

भावार्थः (इन्दो) हे परमेश्वर ! (यस्य) जिस (ते) आप के (सख्ये) मित्रभाव में रहने वाले (वयम्) हम (तव) आप के (उत्तमे) श्रेष्ठ (द्युम्ने) यश में (पृतन्यतः) शत्रुओं को (सासह्याम) तिरस्कृत करें वह आप ऐसी कृपा कीजिये ॥

निरुक्त ५। ५ निघण्टु २। १७ के प्रमाण और ऋ० ९। ६१। २९ का पाठभेद और सायणाचार्य के व्याख्यान का मूल, पद, मन्त्र से विरुद्ध होना संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ १र २र ३ २ १ २ ३ १ २
(७८०) या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे ।
३ २ ३ १
रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३ ॥ [२]

भावार्थः-हे परमेश्वर ! (या) जो (ते) तेरे (तिग्मानि) तीक्ष्ण (भीमानि) भयानक (आयुधा) विद्युदादि शस्त्रास्त्र (धूर्वणे) दुष्ट नाशार्थ (सन्ति) हैं, उन से (समस्य) सब दुष्ट गण का (निदः) नितरां विदारण कीजिये और (नः) आप के भक्त हम लोगों की (रक्ष) रक्षा कीजिये ॥ ऋ० ९ । ६१ । ३० में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचसूक्तस्य- कश्यप ऋषिः । छन्दोदेवते पूर्वे ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७८१) वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषा व्रतः ।
२ ३ २ ३
वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या (५०४) में हो गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २३ १ २ ३ २
(७८२) वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः ।
१र २र ३ १र २र
स त्वं वृषन्वृषेदसि ॥ २ ॥

भावार्थ-(वृष्णः) वीर्यकारक (ते) तेरा=सोम का (शवः) बल (वृष्ण्यम्) वीर्यकारक है । (वनम्) तेरा सेवन (वृषा) वीर्यकारक है । (सुतः) तेरा अभिषुत किया हुवा रस भी (वृषा) वीर्यकारक है । (सः) वह (त्वम्) तू (वृषा) वीर्यकारक (इत्) ही असि है ॥

यद्वा- (वृष्णः) अतिबलिष्ठ (ते) आप का (शवः) बल (वृष्ण्यम्) धर्मार्थकाममोक्ष का वर्षाने वाला है (वनम्) आपका सेवन (वृषा) धर्मादि वर्षक है । (सुतः) आप का साक्षात्कार भी (वृषा) धर्मादिपूरक है (सः त्वम्) वह आप (वृषन् इत्) धर्मादिवृद्धिकारक ही (असि) हैं ॥

ऋ० ९ । ६४ । २ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया

२ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र
(७८३) अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः ।
१ २ ३ १र २र
वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥ [३]

भावार्थः—(इन्दो) सोम ! तू (अश्वः) विद्युत् के (न) समान (चक्रदः) शब्द करता और (गाः) गौआदि पशुओं को (सम्) मिलाता तथा (अर्वतः) अश्वादिकों को (सम्) संगत कराता है (नः) हमारे (दुरः) द्वारों को (राये) ऐश्वर्य के लिये (वि वृधि) खोल ॥

अर्थात् सोमयाजियों को गौ अश्व धन धान्यादि ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ ऋ० ९ । ६४ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थेतृचसूक्तस्य—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ऋषिः । छन्दोदेवते उक्ते ॥

तत्र प्रथमा

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७८४) वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
१ २ ३ १ २
पवमान स्वर्दृशम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४८०) में हो गई ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

२ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७८५) यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥ २ ॥

भावार्थः—(यद्) जब (आयुभिः) मनुष्यों से [निघं० २ । ३] (मर्मृज्यमानः) अतिशयता से शोधा जाता हुवा सोम (अद्भिः) वसतीवरीसंज्ञक जलों से (परिषिच्यसे) सर्वतः छिड़का जाता है, तब (द्रोणे) द्रोणकलश में (सधस्थम्) यज्ञ को (अश्नुषे) प्राप्त होता है ॥

ऋ० ९ । ६५ । ६ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ २ ३ १ २
(७८६) आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध।
३ १ २ ३ १ २
इहोष्विन्दवागहि ॥ ३ ॥ [४]

भावार्थः (स्वायुध) सुन्दर यज्ञपात्ररूप आयुधों वाले (इन्दो) सोम! (इह) इस यज्ञ में [(सु उ) पादपूरणार्थ हैं] (आगहि) प्राप्त हो और (मन्दमानः) हर्ष प्राप्त कराता हुवा (सुवीर्यम्) सुन्दर वीर्य को (आपवस्व) सर्वतः प्राप्त करावे ॥ ऋ० ९। ६५। ५ में भी ॥ ३ ॥

अथ पञ्चमतृचसूक्तस्य—अमहीयुर्ऋषिः। इन्दोदेवते ऋके ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(७८७) पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः।
३ १ २र
सखित्वमावृणीमहे ॥ १ ॥

भावार्थः—हे परमेश्वर! (पवित्रम्) प्राण को (अभ्युन्दतः) शुद्ध करते हुवे (पवमानस्य) शुद्धिसंपादक (ते) आप के (सखित्वम्) मित्रभाव का (वयम्) हम (आवृणीमहे) वरण करते हैं ॥

शतपथ १। १। ३। २ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९। ६१। ४ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७८८) ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया।
१ २
तेभिर्नः सोम मृडय ॥ २ ॥

भावार्थः—(सोम) हे अमृतस्वरूप! परमात्मन्! (ये) जो (ते) आप की (ऊर्मयः) अमृत की लहरें (धारया) प्रवाह से (पवित्रम्) प्राण का (अभिक्षरन्ति) अभिषेक करती हैं (तेभिः) उन से (नः) हम को (मृडय) आनन्दित कीजिये ॥ ऋ० ९। ६१। ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(७८९) स नः पुनान आभर रयिं वीरवतीमिषम् ।
१ २ ३ १ २
ईशानः सोम विश्वतः ॥ ३ ॥ [५]

भावार्थः-(सोम) हे अमृतस्वरूप ! परमात्मन् ! (विश्वतः) सब के (ईशानः) स्वामी (पुनानः) पवित्र करते हुवे (सः) वह आप (नः) हमारे लिये (वीरवतीम्) पुत्रादिसहित (रयिम्) धन और (इषम्) अन्न को (आभर) प्राप्त कीजिये ॥ ऋ० ९ । ६१ । ६ में भी ॥ ३ ॥

उक्थ्यहिष्पवमानम्

(इति द्विवरणकारः)

अथ द्वितीयखण्डे प्रथमतृचसूक्तस्य मेधातिथिः काण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
(७९०) अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७९१) अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।
३ १ २ ३ २
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

भावार्थः-(विश्पतिम्) प्रजापालक (हव्यवाहम्) हव्य या भोग्य फल पहुंचाने वाले (पुरुप्रियम्) बहुतों के प्यारे (अग्निम् अग्निम्) अग्नि या परमेश्वर को (हवीमभिः) होमसाधनों वा पुकारने के मन्त्रों से (सदा) सर्वदा (हवन्त) होम करते वा पुकारते हैं ॥

अष्टाध्यायी ८ । १ । ४, ८ । १ । २, ८ । १ । ३, ३ । २ । ७१, ६ । ४ । ३४, ६ । १ । १०७, ५ । ३ । १५, ५ । ३ । ६, ३ । १ । ८५, १ । २ । १८, ६ । २ । १९९ और ६ । २ । ६४ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । १२ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(७९२) अग्ने देवाँ इहावह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
असि होता न ईड्यः ॥३॥ [६]

भावार्थः–(अग्ने) हे अग्नि वा परमेश्वर ! (देवान्) वायु आदि देवों वा शीलसन्तोषादि उत्तम दिव्यगुणों को (इह) इस यज्ञ में वा ध्यानयोग यज्ञ में (आवह) प्राप्त करा । (वृक्तबर्हिषे) यथार्थ आसन रखने वाले यजमान वा योगी के लिये (जज्ञानः) अरणियों में प्रकट वा हृदयकमल में साक्षात् हुआ (नः) हमारा (होता) होम का सिद्ध करने वाला वा कर्मफलदाता (ईड्यः) प्रशंसनीय (असि) है ॥

विवरणकार कहते हैं कि " आग्नेय आज्य कहा गया " ॥ ऋ० १ । १२ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचसूक्तस्य–मेधातिथिः काण्व ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७९३) मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये ।
२ ३ २ ३ १ २
या जाता पूतदक्षसा ॥ १ ॥

भावार्थः–(वयम्) हम याज्ञिक लोग (सोमपीतये) सोमपान के लिये (मित्रम्) प्राण और (वरुणम्) अपान को (हवामहे) पुकारते हैं । (या) जो दोनों (पूतदक्षसा) पवित्रबलयुक्त (जाता) हुवे हैं " यज्ञ से " यह शेष है ॥

जैसे मनुष्य के देह में देहरक्षार्थ प्राण अपान हैं, वैसे इस ब्रह्माण्ड में भी प्राण अपान हैं । सोमादि के होम से इन की अवस्था सुधरने और प्रसन्न होने पर प्राणियों का उत्तम निर्वाह होता है ॥ शतपथ १२ । ४ । ४ । १२

निरुक्त१० । ३, १० । २१ निघण्टु ५ । ४ के प्रमाण और ऋ०१ । १३ । ४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(७९४) ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती ।
२ ३ १२ १२
ता मित्रावरुणा हुवे ॥ २ ॥

भाषार्थः-(यौ) जो (ऋतेन) यज्ञ से (ऋतावृधौ) यज्ञ के बढ़ाने वाले (ऋतस्य) सच्ची (ज्योतिषः) ज्योति के (पती) पालक हैं (ता) उन (मित्रावरुणा) प्राण और अपान को (हुवे) पुकारता=बाहता हूं ॥

ऋ० १ । १३ । ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ १ २ ३ १२ २१ ३ १ २
(७९५) वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
१ २ ३ १ २
करतां नः सुराधसः ॥ ३ ॥ [७]

भाषार्थः-(वरुणः) अपान (अविता) रक्षक (प्र, भुवत्) समर्थ होवे । (मित्रः) प्राण (विश्वाभिः) सब (ऊतिभिः) रक्षाओं से समर्थ होवे । वे दोनों (नः) हम को (सुराधसः) बहुत धनयुक्त (करताम्) करें ॥

अष्टाध्यायी ३ । १ । ८५, ३ । ४ । ७८, ३ । ४ । १०१, ७ । ३ । ८४ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये । ऋ० १ । २३ । ६ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थस्य तृतीयसूक्तस्य-मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

२ ३ २ ३ १ २ ३१ २२ ३ १ २ ३ १ २
(७९६) इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
२ ३ १ २
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१९८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

२ ३ २उ १ २ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७९७) इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ १
इन्द्रोवज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥

भावार्थः—(इन्द्रः इत) परमेश्वर ही (वचोयुजा) वेदवचन से बंधे हुवे (हर्योः) डेयलनेवाले शुभ और अशुभ कर्मों के मध्य (सचा) साथ २ (आ, संमिश्लः) सब जगह व्यापक है और (इन्द्रः) परमेश्वर (हिरण्ययः) ज्योतिःस्वरूप तथा (वज्री) दुष्टों को दण्ड देने वाला है ॥ ऋ० १।७।२ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

२ ३ १ २ ३ १ २
(७९८) इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
३ १ ३ १ २ ३ १ २
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ३ ॥

भावार्थः—(उग्र) हे सर्वोपरिवर्त्तमान ! इन्द्र ! परमेश्वर ! (उग्राभिः) सर्वोपरि वर्त्तमान (ऊतिभिः) रक्षाओं से (वाजेषु) संग्रामों में (च) और (सहस्रप्रधनेषु) असंख्य महाधन वाले महायुद्धों में (नः) हमारी (अव) रक्षा कीजिये ॥ ऋ० १ । ७ । ४ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ २
(७९९) इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यंरोहयद्दिवि ।
२उ ३ १ ३
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ४ ॥ [८]

भावार्थः (इन्द्रः) परमेश्वर ने (दीर्घाय) बड़ी (चक्षसे) आंख के लिये (दिवि) द्युलोक में (सूर्यम्) सूर्य को (आ रोहयत्) चढ़ाया है। वह सूर्य (गोभिः) किरणों से (अद्रिम्) मेघ को (वि,ऐरयत्) इधर उधर फैलाता है ॥ ऋ० १ । ७ । ३ में भी ॥ ४ ॥

इत्यैन्द्रमाज्यम्

(इति विवरणकारः)

अथ चतुर्थतृचसूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १२ २२
(८००) इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमीरयामहे ।
३ १२ २२ ३ १ २
धिया धेना अवस्यवः ॥ १ ॥

भावार्थः—(इन्द्रे) सूर्य वा विद्युत् और (अग्ना) अग्नि के निमित्त (बृहत्) बहुत (नमः) हव्य का (आ-ईरयामहे) हम होम करते हैं । और (अवस्यवः) अपनी रक्षा चाहते हुवे हम (धिया) यज्ञ कर्म के साथ (धेनाः) वेदवाणियों को उच्चारित करते हैं । तथा (सुवृक्तिम्) [ऋत्विग् आदिकों का] भले प्रकार वरण करते हैं ॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ निघण्टु २ । ७, २ । १, १ । ११ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ७ । ९४ । ४ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१२ २२ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
(८०१) ता हि शश्वन्त ईडतइत्था विप्रासऊतये ।
३ २ ३ १ २
सबाधो वाजसातये ॥ २ ॥

भावार्थः—(ता) उन दोनों इन्द्र और अग्नि की (वाजसातये) अन्नलाभ के लिये और (ऊतये) रक्षा के लिये (विप्रासः) बुद्धिमान् (शश्वन्तः बहुत से (सबाधः) ऋत्विज् लोग (इत्था) ऐसे (हि) जिस कारण (ईडते) प्रशंसा करते हैं । इस कारण हम भी प्रशंसा करते हैं । यह अगले मन्त्र से अन्वय है ॥

निघण्टु ३ । १, ३ । १५, ३ । १८, २ । ७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ७ । ९४ । ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ २ १ २ ३ २ ३ १ २
(८०२) ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तोहवामहे ।

३१ २ ३ १ २
मेधसाता सनिष्यवः ॥ ३ ॥ [९]

भावार्थः—(ता) उन (वाम्) तुम दोनों इन्द्र और अग्नि की (मेधसाता) यज्ञसेवनार्थ (सनिष्यवः) सेवन को चाहते हुये (प्रयस्वन्तः) हव्य अन्न वाले (विपन्यवः) बुद्धिमान् हम (गीर्भिः) वेदवाणियों से (हवामहे)प्रशंसा करते हैं ॥

निघण्टु ३ । १५, २ । ७, ३ । १७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

ऋ० ७ । ९४ । ६ में भी ॥ ३ ॥

उक्तं प्रातः सवनम्

(इति विवरणकारः)

इदानीं माध्यन्दिनं सवनमभिधीयते

(इति च विवरणकारः)

अथ तृतीयखण्डे प्रथमतृचसूक्तस्य भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ऋषिः ।

पवमानः सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(८०३) वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।

२ ३ १ २ ३ १ २
विश्वा दधान ओजसा ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या (४६९) में हो गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
(८०४) तं त्वा धर्त्तारमोण्योऽ३ऽ५पवमान स्वर्दृशम् ।

३ १र २र ३ १ २
हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(पवमान) पवित्रतासंपादक ! सोम ! (तम्) पूर्व मन्त्र में वर्णित (ओण्योः धर्त्तारम्) द्युलोक और पृथिवी लोक को अपने प्रभाव से धारण करने वाले (स्वर्दृशम्) सूर्य के समान दृष्टि के सहायक (वाजिनम्)

धनयुक्त और बलदायक (त्वा) तुझ को (वाजेषु) बलों के निमित्त (हिन्वे) प्रसन्न=आत्मानुकूल करता हूं ॥

निघण्टु ३। ३०, १। ४ इत्यादि का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९। ६५। ११ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १२ ३ १ २
(८०५) अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।
२ ३ १ २
युजं वाजेषु चोदय ॥ ३ ॥ [१०]

भाषार्थः—पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति लेकर-हे पवमान ! सोम ! तू (अया) जाने वाली (अनया) इस (धारया) धारा से (विपा) विद्वान् ऋत्विज् द्वारा हवन किया हुवा (हरिः) हरितवर्ण (चित्तः) निकला हुवा (पवस्व) फैल। और (युजन्) सहयोगी इन्द्र को (वाजेषु) मेघयुद्धों में (चोदय) प्रवृत्त कर ॥

अर्थात् जब विद्वान् ऋत्विज् चलती धार से सोम का हवन करते हैं तब वह हरितवर्ण धूम्ररूप में परिणत होता हुवा मेघों तक पहुंचता और वर्षा का हेतु होता है ॥

अष्टाध्यायी ३। १। १३५, ७। १ ३९ और निघण्टु ३। १५, २। १७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९। ६५। १२ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचसूक्तस्य-उपमन्युर्वासिष्ठऋषिः। पवमानः सोमोदेवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २
(८०६) वृषा शोणो अभि कनिक्रदद्गा नदयन्नेषि
३ २ ३ २ १ २ ३ १२ २२
पृथिवीमुत द्याम् । इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(इव) जैसे (वृषा) सांड वा बैल (गाः) गौओं को (अभि) देखकर (कनिक्रदत्) शब्द करता है ऐसे ही सोम ! तू भी (पृथिवीम् उत

द्याम्) पृथिवी और द्युलोक को (नदयन्) शब्द से पूरित करता हुवा (एषि) आकाश को जाता है। तब (इन्द्रस्य) विद्युत् का (वग्नुः) शब्द (आजौ) मेघ और सूर्य के संग्राम में (आशृण्वे) सब ओर सुना जाता है। इस प्रकार (शोणः) पीतवर्ण सोम (इमाम्) इस घट घटा शब्दरूपिणी (वाचम्) वाणी को (प्रचोदयन्) बोलता हुआ (आ) सब ओर (अर्षसि) जाता है॥

अष्टाध्यायी ७।४।६५ निघण्टु १।११, २।१७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ९।९७।१३ में प्रचोदयन् के स्थान में प्रचेतयन् पाठ है और सायणाचार्य ने भ्रान्ति से वहां की व्याख्या यहां भी करदी है॥ १॥

अथ द्वितीया

३२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३
(८०७) रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तम

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
ꣳशुम्। पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय

३ १ २
सोम परिषिच्यमानः॥ २॥

भाषार्थः—(पवमान) शोधे जाते हुवे (सोम) सोम। तू (रसाय्यः) रसालु और (पयसा पिन्वमानः) प्राण से वृद्धि को प्राप्त होता हुवा (इन्द्राय) सूर्य के लिये (ईरयन्) ऊपर उठता हुवा (मधुमन्तम्) मधुरतायुक्त (अंशुम्) किरणगत जलकण को (एषि) प्राप्त होता है (परिषिच्यमानः) सब ओर वर्षता और (सन्तनिम्) विस्तार को (कृण्वन्) करता हुवा (एषि) जाता है॥

शतपथ ६।५।२।१५ उणादि ३।९६ इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० ९।९७।१४ में भी॥ २॥

अथ तृतीया

३ १ ३ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(८०८) एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्व-

३ २ २३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
धस्नुम्। परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो

३ १ २ ३ २
अर्ष परि सोम सिक्तः॥ ३॥ [११]

भावार्थः–(राजन्) आर्यविराज ! (एवा) इस प्रकार (मदः) हर्षदायक, (रुशन्तं, वर्णं, परि, भरमाणः) प्रकाशित श्वेत, रक्त को, सर्वतः, धारण करता हुवा (सिक्तः) सींचा=अग्नि में टपकाया हुवा (गभ्युः) सूर्यकिरणों को मानो चाहता हुवा (उदप्रामस्स, वपस्तुं, नमयन्) मेघ के, टपकते सानु को, नमाता हुवा (नः) हमारे (मदाय) हर्ष के लिये (परि–अर्ष) सब ओर फैल॥ ऋ० ९ । ९७ । १५ में–वपस्नैः पाठ है ॥ २ ॥

अथ चतुर्थखण्डे प्रथमस्य प्रगाथस्य सूक्तस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । बृहती छन्द ॥

तत्र प्रथमा

१र २र ३ १ २र ३ १ २
(८०९) त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१॥

इसकी व्याख्या (२३४) में हो चुकी है ॥१॥

अथ द्वितीया

१र २र ३ १ ३ १ २ ३ १ १
(८१०) स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह: स्तवानो अद्रिवः ।
१ २र ३ २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
गामश्वं रथ्यमिन्द्र संकिर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२॥ [११]

भावार्थः–(चित्र) हे आश्चर्यमय ! (वज्रहस्त) अपने सृजस्वरूप में दुष्टदमनार्थ दण्ड धारण करने वाले ! (अद्रिवः) मेघों के स्वामी ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (सः) पूर्ववर्णित (त्वम्) आप (धृष्णुया) शत्रुओं को दबाने वाले (महः) महान् (स्तवानः) स्तुतिकिये जाते हुवे (नः) हमारे लिये (गाम् अश्वम्) गौ बैल घोड़े आदि पशु (रथ्यम्) वाहनयोग्य (सत्रा) सदा (संकिर) दीजिये । (न) जैसे (जिग्युषे) जीतने वाले वीर को (वाजम्) अन्नादि उपहार भोगार्थ देते हैं तद्वत् ॥

अष्टाध्यायी ७।१।३९ उणादि ३। ८६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ६ । ४६ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ प्रगाथस्य द्वितीय सूक्तस्य–प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ।
इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ।

तत्र प्रथमा

३ १२ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(८११) अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथाविदे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः
३ १ २ ३ १ २
सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (२३५) में हो गई ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३२ ३ १ २
(८१२) शतानीकेव प्रजिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि
३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३२ ३ १ २
दाशुषे । गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि
३ १ २
पुरुभोजसः ॥ २ ॥ [१३]

भावार्थः-(धृष्णुया) तेजस्वी वीर (शतानीकेव) बहुत सी शत्रुसेनाओं को जीतता और नष्ट करता है वैसे ही परमेश्वर (वृत्राणि) पापों को (प्रजिगाति) जीतता और (हन्ति) नष्ट करता है। तथा (पुरुभोजसः) असंख्य धन वाले (अस्य) इस परमेश्वर के (दत्राणि) दान (दाशुषे) दान यज्ञादि करने वाले यजमान के लिये (प्रपिन्विरे) प्रवाह से बहते हैं । दृष्टान्त-(गिरेरिव रसाः) जैसे पर्वत के जल बहते हैं तद्वत् ॥

ऋ० ८ । ४९ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयप्रगाथस्य-नृमेधाऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

२ ३ १२ २२ ३ १ २ १ २ ३
(८१३) त्वामिद्धि ह्वामहे सातौ वाजस्य कारवः । त्वां वृत्रेष्विन्द्र
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमागहि ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३०२) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ १ २ ३ १ १ ३ १ २

(८१४) मत्स्वा सुशिप्रिन्हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः।

२ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २

तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥२॥ [१४]

भाषार्थः-(सुशिप्रिन्) हे उत्तम व्याप्ति वाले। (हरिवः) कर्मों को धरो-हर रखने वाले। (उक्थ्य) स्तुत्य। (गिर्वणः) वाणियों से भजनीय। (इन्द्र) परमेश्वर। (तम्) पूर्वोक्त गुणगरिष्ठ आप से (ईमहे) हम मांगते हैं प्रार्थना करते हैं-कि (त्वया) आप की सहायता से (वेधसः) बोधयुक्त उपासक लोग (भूषन्ति) शोभमान होते हैं। (तव) आपके (श्रवांसि) यश (उपमानि) उपमान हैं, न कि किसी से उपमेय। वह आप (सुतेषु) पुत्रतुल्य भक्तों पर (मत्स्व) प्रसन्न हूजिये ॥

उणादि २। १३ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० ८। ९९। २ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

पञ्चमखण्डे प्रथमतृचसूक्तस्य-अमहीयुर्ऋषिः। पवमानः सोमोदेवता। गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

२ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(८१५) यस्ते मदो वरेण्यस्तेनापवस्वान्धसा।

३ १ २ ३ २

देवावीरघशंसहा ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४७०) में हो गई ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(८१६) जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवे दिवे।

१ २ ३ १ २

गोषातिरश्वसा असि ॥ २ ॥

भावार्थः—सोम (अमित्रियं वृत्रं जघ्निः) अमित्रकर्मकारक शत्रु का घातक (वाजं सनिः) बल का दायक, (गोपातिः) इन्द्रियों का दाता और (अश्वसाः) प्राणप्रद (अग्नि) है ॥ ऋ० ९ । ६१ । २० में "गोषा उ अश्वसाः" ऐसा पाठ है ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(८१७) संमिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।
१ २ ३ २उ ३ २
सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ ३ ॥ [१५]

भावार्थः—सोम (सूपस्थाभिः) सुन्दर उपस्थान वाली (धेनुभिः) गौओं के (न)समान वेदवाणियों के साथ (संमिश्लः) मिला हुवा (योनिम्) वेदी में (आसीदन्) होम होते हुवे स्थित हुवा (श्येनः) श्येन पक्षी (न) सा (अरुषः) तीव्रगामी (भुवः) होता है ॥

शतपथ ९ । १ । २ । १७ उणादि ४ । ७३ निघण्टु १ । ११ इत्यादि प्रमाण और ऋ० ९ । ६१ । २१ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य - नहुषोमानव ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(८१८) अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या (५४६) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(८१९) समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
१ २ ३ १र २र ३ १ २
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ २ ॥

भावार्थः—(उ) प्रसिद्ध है कि (प्रियाः) प्रीतिकरी (घृष्वयः) अत्यन्त दीप्त (गावः) वाणियें (मदाय) हर्ष के लिये (सम् अनूषत) सोम का भले

प्रकार वर्णन करती हैं और (पवमानासः) शुद्धि करते हुवे (इन्दवः) दीप्तिमान् (सोमासः) सोम (पथः) मार्गों को (कृण्वते) आकाशगमनार्थ करते हैं ॥ ऋ० ९ । १०१ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २र ३ १र २र३ १ २ ३ १ २
(८२०) य ओजिष्ठस्तमाभर पवमान श्रवाय्यम् ।
१ २र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥ ३ ॥ [१६]

भाषार्थः—(पवमान) सोम! वा शुद्धस्वरूप परमात्मन्! (यः) जो (ओजिष्ठः) अति बलवान् तेरा रस वा आप के आनन्द का रस है और (यः) जो (पञ्च) पांच (चर्षणीः) १ यजमान और ४ होतादि ऋत्विज् इन ५ मनुष्यों को वा पञ्चज्ञानेन्द्रियों को (अभि) व्याप कर वर्त्तमान है और (येन) जिस से (रयिम्) धनादि ऐश्वर्य को (वनामहे) हम संभजन करते हैं (तम्) उस (श्रवाय्यम्) श्रवण करने योग्य प्रशंसनीय रस वा आनन्द रस को (आभर) हमें प्राप्त करा, वा कराइये ॥ ऋ० ९ । १०१ । ९ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—आद्ययोर्द्वयोः सिकतानिवारी, तृतीयायाः पृश्नयोऽजा ऋषयः । पवमानः सोमो देवता । जगती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
(८२१) वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां
३ १ २र ३ २ ३ १र २र ३ १ ३
प्रतरीतोषसां दिवः । प्राणा सिन्धूनां कलशां
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्यो विशन्मनीषिभिः ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या (५५९) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २च ३ १ २
(८२२) मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशां

३ १ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १
असिष्यदत् । त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्नि-
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न्द्रस्य वायुꣳ सख्याय वर्धयन् ॥ २ ॥

भावार्थः—यह सोम (नृभिर्विप्रैः) विद्वानों द्वारा (यतः) शुद्ध किया जाता है । फिर (पूर्व्यः) पुराना (कविः) बुद्धि तत्त्वबाला (नृभिः यतः) कर्मकर्त्ता पुरुषों से यत्नपूर्वक प्रयोग में लाया जाता हुआ (कोशान्) द्रोण-कलशों को (परि) छोड़ कर=उन से निकल कर (त्रितस्य) तीनों लोकों में फैले हुवे [यहां सायणाचार्य ने भी यही अर्थ किया है, त्रित नामक ऋषि अर्थ नहीं किया] (इन्द्रस्य) वायुविशेष के (नाम) नमाने वाले जल को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (मधु) मधुर रस को (क्षरन्) बर्षाता हुवा (सख्याय) स्नेह वा मित्रता के लिये (वायुम्) इन्द्रनामक वायु विशेष को (वर्धयन्) बढ़ाता हुवा (असिष्यदत्) बर्षता है ॥ ऋ० ९ । ८६ । ८० से पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ २
(८८३) अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो
३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
अभवदु लोककृत् । अयं त्रिः सप्त दुदुहान
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आशिरꣳ सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ३ ॥ [१७]

भावार्थः—(अयम्) यह सोम (पुनानः) पवित्र करता हुवा (उषसः) प्रभातसमयों को (अरोचयत्) प्रकाशित करता है (उ) और (अयम्) यह सोम (सिन्धुभ्यः) नदियों से (लोककृत्) लोकों का कर्त्ता (अभवत्) है (अयम्) यह (सोमः) सोम (त्रिःसप्त) एक मन, १० इन्द्रियें, १० प्राण=सब इक्कीसों को (आशिरम्) रस से (प्रपूरयन्) भरता हुवा (हृदे) हृदय के लिये (चारु)उत्तम (मत्सरः) हर्षकारक (पवते) पवन के समान बहता है ॥

अर्थात् सोमयाग से सुवृष्टि आदि होकर सुन्दर प्रभात समय होते हैं, नदियों के प्रवाह बढ़ कर लोक की वृद्धि होती है, सोमसेवन से प्राणादि

का यश बढ़ता है। यह सोम वायु को व्याप कर चित्तको हर्षदायक होता हुआ वायु के समान बढ़ता है ॥ ऋ० ९। ८६। २१ में विरोचयत् पाठ है ॥३॥

अथ षष्ठे खण्डे प्रथमतृचस्य आङ्गिरसः श्रुतकक्षोवा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
(८२४) एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या (२३२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ २ ३ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(८२५) एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
१ २ ३ १ २
अधा चिदिन्द्र नः सचा ॥ २ ॥

भावार्थः–(तुवीमघ) हे बहुत कोष धन वाले ! (इन्द्र) राजन् ! (विश्वेभिः) सब (धातृभिः) कर्मधारक राजपुरुषों से [आप का] (रातिः) [वेतनादि] देना (धायि) धारण किया जाता है (अध) और आप (नः) हम प्रजाजनों के (चित्) भी (सचा) धनादि देने से (एव) ही व्यापारसहायक हूजिये ॥ ऋ० ८। ९२। २९ में–इन्द्र मे सचा–पाठ है ॥ २ ॥

अथ तृतीया

२उ ३ १ २ ३ १र २र
(८२६) मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
१ २ ३ २ ३ १ २
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥

भावार्थः–(वाजानां पते) हे सेना वा बलों के रक्षक ! राजन् ! तू (गोमतः) इन्द्रियों की शक्ति के उत्तेजक (सुतस्य) अभिषुत सोम के, पान से (सु मत्स्व) अच्छे प्रकार हृष्ट जो (उ) और (तन्द्रयुः) धनादि सम्पत्ति के प्रमाद से आलस्ययुक्त (मा) मत (भुवः) हो। दृष्टान्त–(ब्रह्मेव) जैसे ब्राह्मण लोग प्रायः

धनादि भोगसाधनों में रति न होने से उन का सञ्चय नहीं करते और इसी से प्रमाद नहीं करते, तद्वत् ॥ ऋ० ८ । ९२ । ३० में भी ॥ ३ ॥ [१८]

अथ द्वितीयतृचस्य-जेता माधुच्छन्दस ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

२ ३ १ ४ ३ १ २ ३ १ २
(८२७) इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
४ १ २ ३ २ ४ १ २ ३ १ २ ३ १ २
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या (३४३) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ १ २ २ ३ २ १ २
(८२८) सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
२ ३ १ २र ३ १ २३१२
त्वामभि प्रनोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! वा हे राजन् ! (ते) तेरी (सख्ये) मित्रता= अनुकूलता में हम (वाजिनः) अन्न और बल वाले होते हुवे (मा भेम) किसी से न डरें । (शवसस्पते) हे बलपते ! (जेतारम्) जीतने वाले (अपराजितम्) किसी से भी न हारने वाले (त्वाम्) तुझ को (अभि प्र नोनुमः) सर्वतः अत्यन्त स्तुत करते हैं ॥

अष्टाध्यायी ६ । १ । ६५, २ । ४ । ७४, १ । १ । ६२, ६ । १ । ९, ७ । ४ । ८२, ३ । १ । ३२, ३ । ४ । ७८, २ । ४ । ७२ के प्रमाण और ऋ० १ । ११ । २ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया

३ १र २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १र
(८२९) पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न विदस्यन्त्यूतयः । यदा
२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥ [१९]

भावार्थः-(यदा) जब (गोमतः) गौ के सहित (वाजस्य) अन्न का (मघम्) धन (स्तोतृभ्यः) ऋत्विजों को (मंहते) कोई यजमान श्रद्धा से दान करता

तब (इन्द्रस्य) परमात्मा की (ऊतयः) रक्षायें और (रातयः) दानक्रियायें जो (पूर्वीः) सनातन हैं (न विदस्यन्ति) उस यजमान पर क्षीण नहीं होतीं॥

अर्थात् श्रद्धा और विधि से यज्ञ करते हुवे गौ आदि धन धान्य की दक्षिणा देने वाले यजमान को परमात्मा कृपया अनेक प्रकार के धन धान्या द दान से उपकृत करता है और उस की रक्षा करता है॥

ऋ० १ । ११ । ३ का पाठान्तर और निघण्टु २ । १०, ३ । १० अष्टाध्यायी ६ । १ । १०६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ॥३॥

इति द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः॥

इति श्रीमत्कश्यपवंशावतंस पण्डित हज़ारीलाल स्वामिसूनुना,
हस्तिनापुर पार्श्ववर्त्ति परीक्षितगढ़ निवासिना तुलसीरामस्वामिना कृते
सामवेदभाष्ये उत्तरार्चिके तृतीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः॥
तृतीयोऽध्यायश्च समाप्तः॥ ३॥

ओ३म्

अथ चतुर्थोऽध्यायः

द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः

तत्र

प्रथमखण्डे—एते असृग्रमिति प्रथम तृचस्य—जमदग्निर्ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २३ १ २

(८३०) एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।

१ २ ३ १ २र

विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥

भावार्थः—(तिरः पवित्रम्) तिरछे दशापवित्र के प्रति (आशवः) शीघ्र जाने वाले (एते) ये (इन्दवः) सोम (विश्वा) सब (सौभगा) सौभाग्यों को (अभि) लक्ष्य में रख कर (असृग्रम्) [अग्नि में] छोड़े जाते हैं ॥

विवरणकार कहते हैं कि "अब तृतीय दिन का आरम्भ किया जाता है।" ऋ० ९ । ६२ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ १ २ ३ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(८३१) विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।

१ २ ३ २ ३ १ २

त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥ २ ॥

भावार्थः—[प्रकरण से] सोम (दुरिता) दुःखों को (विघ्नन्तः) नष्ट करते हुये (वाजिनः) बलयुक्त और बलदायक हैं तथा (तोकाय) सन्तान के लिये (पुरु) बहुत (सुगा) सुगम (अर्वतः) प्राणों के [शतपथ ५ । २ । ४ । ९] (त्मना) आत्मा के सहित (कृण्वन्तः) करने वाले हैं इस लिये सोम सेवनीय हैं ॥

ऋ० ९ । ६२ । २ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया

३ २ ३ १२ ३ २ ३क २र ३ २
(८३२) कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
१२ ३ १ २ ३ १२
इडामस्मभ्यꣳ संयतम् ॥ ३ ॥ [१]

भावार्थः—(गवे) इन्द्रियों के लिये (इडाम्) अन्न के रस को (संयतं कृण्वन्तः) संबद्ध करते हुवे और (अस्मभ्यम्) हम सोमसेवियों के लिये (वरिवः) धनैश्वर्य करते हुवे सोम (सुष्टुतिम्) शोभन प्रशंसा को (अभ्यर्षन्ति) सर्वतः प्राप्त होते हैं ॥ ऋ० ९ । ६२ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीय तृचस्य—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ऋषिः ।
पवमानः सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १र २र
(८३३) राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि ।
३ १२ ३ १ २
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १ ॥

भावार्थः—(पवमानः) शुद्धि करता हुवा (राजा) सोम [सायणाचार्य ने भी "सोमं राजानम्" इत्यादि देखने से यही अर्थ किया है] (अन्तरिक्षेण) आकाश मार्ग से (यातवे) जाने के लिये (मनौ अधि) यज्ञ में (मेधाभिः) बुद्धितत्वों के सहित (ईयते) प्राप्त होता है ॥ ऋ० ९ । ६५ । १६ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ २३ १ २ ३ १ २र
(८३४) आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर ।
३ २ ३ १ २
सुष्वाणो देववीतये ॥ २ ॥

भावार्थः—(सोम) सोम (देववीतये) देवतों को देने=होम के लिये (सुष्वाणः)अभिषुत किया हुवा (नः) हमारे लिये (वर्चसे) तेज के निमित्त (सहः) शत्रुदमनयोग्य (जुवः) बल (न) और (रूपम्) सौन्दर्य (आभर) देता है ॥ ऋ० ९ । ६५ । १८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(८३५) आ न इन्दो शातग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
वहा भगत्तिमूतये ॥ ३ ॥ [२]

भावार्थः—(इन्दो) सोम (नः) हमारे लिये (शातग्विनम्) बहुतसी इन्द्रियों की शक्ति वाली [इसी से] (गवाम्) इन्द्रियों की (पोषम्) पुष्टि, (स्वश्व्यम्) उत्तम अश्वों के भाव और (भगत्तिम्) ऐश्वर्य का दान (ऊतये) रक्षा के लिये (आ–वह) प्राप्त कराता है ॥ ऋ० ९ । ६५ । १७ में भी ॥३॥

तन्त्वा नृम्णानीति पञ्चर्चस्य तृतीयसूक्तस्य—कविर्भार्गवऋषिः । छन्दोदेवते उक्ते ॥

तत्र प्रथमा

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
(८३६) तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतꣳ सधस्थेषु महोदिवः ।
१ २ ३ १ २
चारुꣳ सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप ! सोम ! परमात्मन् ! (महोदिवः) अनन्त आकाश के (सधस्थेषु) साथ वाले सब लोकों में और उससे भी बाहर व्यापक, (नृम्णानि) धनों वा बलों को (बिभ्रतम्) धारते हुवे (चारुम्) आनन्दस्वरूप (तम्) उस अनेक वैदिक स्तोत्रों से स्तुत (त्वा) आप को (सुकृत्यया) सुकर्म से (ईमहे) हम पाते हैं ॥

निघण्टु २ । ९, १० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ४८ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २
(८३७) संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् ।
३ २ २र ३ १ २
शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥ २ ॥

भावार्थः—हे सोम ! परमात्मन् ! (संवृक्तधृष्णुम्) शत्रुविनाशक (उक्थ्यम्) स्तुति योग्य (महामहिव्रतम्) प्रशंसनीय अनन्त कर्मों के कर्त्ता, (मदम्) आनन्दस्वरूप, (शतम्) असंख्य (पुरः) प्राणिदेहों के (रुरुक्षणिम्) मृत्यु द्वारा विनाशक [आप को हम पाते हैं] यह पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति है ॥

महामहिम्नतम्—यहां महान् अर्थ के लिये दो शब्दों के प्रयोग से अत्यन्त महान् अर्थ लिया जाता है॥ ऋ० ९। ४८। २ में भी॥ २॥

अथ तृतीया

१ २ ३ २ ३क२र ३ १ २ ३ २
(८३८) अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः।
३ १ २ ३ १ २
सुपर्णो अव्यथी भरत्॥ ३॥

भावार्थः—(सुक्रतो) हे उत्तम कर्मों के अधिष्ठाता! सोम! शान्तस्वरूप! परमात्मन्! क्योंकि (सुपर्णः) सुन्दर पालनादि गुणों वाले (अव्यथी) दुःखरहित निरञ्जन आप (भरत्) त्रिलोकी का पोषण करते हैं (अतः) इस से (रयिः) ऐश्वर्य और उसका चाहने वाला पुरुष (दिवः) आकाशगत लोक लोकान्तरों के (राजानम्) राजा (त्वा) आप को (अभ्ययत्) सब ओर से शरण लेता है॥ ऋ० ९। ४८। ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ३॥

अथ चतुर्थी

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
(८३९) अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे।
३ १ २र
अभिष्टिकृद्विचर्षणिः॥ ४॥

भावार्थः—(अध) और (अभिष्टिकृत्) अभीष्टफलदाता (विचर्षणिः) विविध मनुष्यों का स्वामी, वा विशेष द्रष्टा जगत् का साक्षी परमात्मा (इन्द्रियम्) अपने आपे से व्याप्त जगत् को (हिन्वानः) प्रेरित करता हुवा (ज्यायः) बड़े उत्तम (महित्वम्) महत्त्व को (आनशे) प्राप्त है॥

अष्टाध्यायी ५। २। ९३ इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० ९। ४८। ५ में भी॥ ४॥

अथ पञ्चमी

१र २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २
(८४०) विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणꣳरजस्तुरम्।
३ २ ३ २ ३ १ २
गोपामृतस्य विर्भरत्॥ ५॥ [३]

भावार्थः—(रजस्तुरम्) सूर्यादि लोकों के घुमाने वाले, (ऋतस्य) यज्ञ के (गोपाम्) रक्षक, (विश्वस्मै) सर्व (स्वर्दृशे) आनन्द दिखाने के लिये (साधारणम्) साधारण (इत्) ही वर्त्तमान सोम शान्तस्वरूप परमात्मा का (विः) पक्षी जीवात्मा (भरत्) ध्यान करे ॥

निरुक्त ४ । १९ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ लोकों को रज इस लिये कहा जाता है कि धूलिकण के समान परमात्मा ने धार रक्खे हैं ॥ ऋ० ९ । ४८ । ४ में भी ॥ ५ ॥

अथ तृचात्मकस्य चतुर्थसूक्तस्य—कश्यप ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(८४१) इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।

१ २ ३ १ २र

इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या (५०३) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ १ २र ३ २ ३ १ २

(८४२) पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः ।

१ २ ३ २ ३ १ २

हरे सृजान आशिरम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(गिर्वणः) वाणियों से प्रशंसनीय ! सोम ! परमात्मन् ! वा ओषधि ! (हरे) जगद्धर्त्तः ! वा हरित वर्ण हुवा सोम (पुनानः) शुद्धि करता हुवा और (आशिरम्) प्राण को (सृजानः) देता हुवा (जनाय) ध्यानयज्ञ वा देवयज्ञ के यजमान के लिये (वरिवः) धन वा सुख और (ऊर्जम्) बल संपादन (कृधि) कीजिये वा करता है ॥

ध्यान स्मरण किया परमात्मा वा हवन किया हुवा सोम यजमान के धन धान्य बल पौरुषादि को बढ़ाता है ॥

शतपथ १२ । ३ । ५ । २० निघण्टु २ । १० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ६४ । १४ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(८४३) पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
द्युतानो वाजिभिर्हितः ॥ ३ ॥ [४]

भाषार्थः—हे सोम ! शान्तस्वरूप ! निरुपद्रव ! परमात्मन् ! (पुनानः) अपवित्रों को पवित्र करने वाले, (द्युतानः) अन्धियारे को उजियाला करने वाले, (वाजिभिः) प्राणायामों के साथ (हितः) ध्यान=धारण किये हुवे आप (देववीतये) विद्वान् भक्त जनों को प्राप्त होने के लिये (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव के (निष्कृतम्) शुद्ध किये हुवे अन्तःकरण स्थान में (याहि) सर्वग होने से वर्तमान भी साक्षात् अनुभूत हूजिये ॥

ओषधि के पक्ष में सोम ! (पुनानः) पवित्रता और (द्युतानः) प्रकाश करता हुवा (वाजिभिः) हविष् वाले होता आदि से (हितः) धारण किया हुवा (देववीतये) वायु आदि देवों को प्राप्त होने के लिये (इन्द्रस्य) विजुली के (निष्कृतम्) स्थान अन्तरिक्ष को (याहि) प्राप्त हो [होमद्वारा] ॥

शतपथ ५ । २ । ४ । ९ का प्रमाण और ऋ० ९ । ६४ । १५ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयखण्डे प्रथमतृचस्य—मेधातिथिः काण्वऋषिः ।
अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

३ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(८४४) अग्निनाऽग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।
३ २ ३क २र
हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ १ ॥

भाषार्थः—विवरणकार कहते हैं कि—बहिष्पवमान कहा गया, अब सप्तदश स्तोम के भेद कहते हैं कि यहां से आज्यों का वर्णन है, जिस में यह आग्नेय आज्य का आरम्भ है ॥ (कविः) मेधातरवद्बोधक (गृहपतिः) यज्ञानुष्ठान संपन्न घर का रक्षक (युवा) कभी वृद्ध न होने वाला (हव्यवाट्) हव्य पहुंचाने वाला (जुह्वास्यः) यज्ञपात्र जुहू जिस का मुख है (अग्निः) सो

आवहवनीय अग्नि (अग्निना) अरणिमन्थन से उत्पन्न हुवे अग्नि द्वारा (समिध्यते) भले प्रकार सुलगाया जाता है ॥

अध्यात्मपक्ष में-(कविः) ज्ञानी (गृहपतिः) गृहरूप देह का स्वामी (युवा) वास्तविक स्वरूप से अजर अमर (हव्यवाट्) कर्म फल का भोक्ता (जुह्वास्यः) वाणीरूप मुख वाला (अग्निः) चेतन जीवात्मा (अग्निना) अनन्त ज्ञान वाले परमात्मा से (समिध्यते) भले प्रकार तेज प्राप्त करता है ॥

शतपथ ११ । ५ । ६ । ३ अष्टाध्यायी ३ । २ । ६४, ७ । २ । ११५, ३ । २ । ६६ ६ । २ । १३९, ३ । २ । १ । १७८, ६ । १ । १०, ७ । ४ । ६२, ८ । ४ । ५४, ६ । २ । १, ८ । २ । १, ६ । १ । ६७, ८ । २ । ४ उणादि २ । ६१ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । १२ । ६ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(८४५) यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति ।
१ २ ३ १ २
तस्य स्म प्राविता भव ॥ २ ॥

भावार्थः-(देव) दिव्यगुणयुक्त ! (अग्ने) अग्ने ! (हविष्पतिः) सामग्री वाला (यः) जो यज्ञकर्त्ता (दूतम्) हव्य पहुंचाने वाले (त्वा) तेरा (सपर्यति) होम करता है, (तस्य) उस का [(स्म) पादपूरणार्थ है] (प्राविता) अत्यन्त रक्षक (भव) हो ॥

ईश्वरपक्ष में- (देव) हे देव ! (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप ! (हविष्पतिः) सुकर्म वासना रूप कर्मफल का भागी (यः) जो उपासक भक्त (दूतम्) कर्मफल पहुंचाने वाले (त्वा) आप की (सपर्यति) पूजा=उपासना करता है (तस्य स्म प्राविता भव) उस के रक्षक हूजिये ॥ ऋ० १ । १२ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(८४६) यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति ।
१ २
तस्मै पावक मृडय ॥ ३ ॥ [५]

भावार्थः-(यः) जो (हविष्मान्) हव्य सामग्री वाला (देववीतये) देव-

यजन के लिये (अग्निम्) अग्नि को (आविवासति) होमता है (तस्मै) उस के लिये (पावक) शोधक ! अग्ने ! (मृडय) सुख कर ॥

ईश्वरयज्ञ में (यः) जो (हविष्मान्) सुकर्मानुष्ठानी उपासक (देववीतये) दिव्य गति के लिये (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमात्मा की (आविवासति) उपासना=पूजा करता है [निघं० ३ । ५] (तस्मै) उस के लिये (पावक) हे अपवित्रों को पवित्र करने वाले ! (मृडय) आनन्द दीजिये ॥ ऋ० १ । १२ । ९ में भी ॥ ३ ॥

अथ मैत्रावरुणमाज्यम्

(इति विवरणकारः)

अथ द्वितीयतृचस्य—मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(८४७) मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २

धियं घृताचीं साधन्ता ॥ १ ॥

भावार्थः—मैं यज्ञकर्ता यजमान (पूतदक्षम्) पवित्र बल वाले (मित्रम्) प्राणवायु (च) और (रिशादसम्) हिंसक दुःखदायक वायु आदि के अणुओं के नाश करने वाले (वरुणम्) अपानवायु को (हुवे) उद्देश करके होम करता हूं । जो कि प्राण और अपान (घृताचीं,धियम्) जल वर्षाने वाले कर्म को (साधन्ता) साधने वाले हैं ॥

जिस प्रकार मनुष्यादि प्राणियों के शरीर में प्राण अपान वायु हैं इसी प्रकार अन्तरिक्ष में भी प्राण और अपान व्याप्त हैं, जोकि निरुक्त के अनुसार अन्तरिक्षस्थान देवतों में गिने गये हैं । उन का दूसरा नाम यहां मित्र और वरुण है । वे ही अन्तरिक्ष में फैले हुवे मित्रावरुणा=प्राणाऽपान मनुष्यादि-देहस्थ प्राणाऽपान का आप्यायन करते हैं, उन के उत्तम शुद्ध तृप्त बनाने के लिये इस मन्त्र में होम करने का विधान सिद्धानुवाद से वर्णित है । शतपथ ६ । ३ । ६ । ५ में मित्र=प्राण और श० १२ । ४ । ४ । १२ में वरुण=अपान का नाम है । निरुक्त अ० १० खण्ड १ और ३ में मध्यस्थान देवतों के शीर्षक (हैडिङ्ग) में वरुण का व्याख्यान है और ऋ० ५ । ८५ । ३ का प्रमाण देकर निरुक्तकार

ने वरुण=अपान वायु के काम बताये हैं कि वह मेघ को वर्षाता है, नीचा करता है, वह द्युलोक, पृथिवीलोक और अन्तरिक्ष लोक को तर करता है, इस से वह सब भुवनों का राजा कहाता है, वह जैसे वृष्टि खेती को तर करती है, वैसे पृथिवी को गीला और तर करता है। फिर उसी ऋ० १० खण्ड २१। २२ में मित्र=प्राण वायु का व्याख्यान करते हुवे ऋ० ३। ५९। १ का प्रमाण देकर मित्र=प्राण के काम बताये हैं कि वह शब्द करता है, प्राणियों को जीवित रखता=मृत्यु से बचाता है, इस लिये प्राण पृथिवी और द्युलोक के प्राणिवर्ग का धारक है, प्राण प्रतिक्षण मनुष्यादि प्राणियों पर अपना प्रभाव रखता है, जिस से मनुष्यादि कर्म करने में समर्थ होते हैं। उस प्राण के लिये घृत मिले चरु से होम करो इत्यादि ॥

अष्टाध्यायी ३। १। ८५, ३। १। ४, ६। १। १६२, ७। १। ३९ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १। २। ७ और यजुः ३३। ५७ में भी ॥१॥

अथ द्वितीया–

३ १ २
(८४८) ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा।
१ २ ३ १ २
क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ २ ॥

भावार्थः–(ऋतावृधौ) यज्ञ से बढ़ने और (ऋतस्पृशौ) यज्ञ को स्पर्श करने के स्वभाव वाले (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान (ऋतेन) अनुष्ठित किये यज्ञ से (बृहन्तं क्रतुम्) बड़े कर्म को (आशाथे) व्यापते हैं ॥ निरुक्त २। २५, ४। १९ और निघण्टु १। १२ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १। २। ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २३ १ २
(८४९) कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया।
१ २ ३ १ २
दक्षं दधाते अपसम् ॥ ३ ॥ [६]

भावार्थः–(कवी) बुद्धिवर्धक (तुविजाता) बहुतों के उपकारक होकर

उत्पन्न (उरुक्षया) बहुत निवास वाले (मित्रावरुणा) प्राण और अपान (नः) हमारे (दक्षम्) बल और (अपसम्) कर्म का (दधाते) धारण करते हैं॥

अष्टाध्यायी ६। ३। २६, ६। १। १०७, ६। १। १६३, ६। १। २०१, ६। १। २२३, ६। २। १४४, ६। २। १९९ फिट्सूत्र १। १ निघण्टु ३। १, २। १, २। ९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० १। २। ९ में भी॥ ३॥

अथैन्द्रमाज्यम्

(इति विवरणकारः)

अथ तृतीयतृचस्य—मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः। मरुद्गण इन्द्रश्च देवता। गायत्री छन्दः॥ तत्र प्रथमा—

१ २ १ ३ २र ३ १ २र
(८५०) इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा।
३ १ २ ३ १ २
मन्दू समानवर्चसा॥ १॥

भाषार्थः—हे जीवात्मन्! तू (अबिभ्युषा) भयरहित निर्भय (इन्द्रेण) परमात्मा से (हि) ही (संजग्मानः) मिला हुवा [मुक्त हुवा] (संदृक्षसे) जब जाना जाता है तब (मन्दू) तुम परमात्मा और जीवात्मा दोनों आनन्दयुक्त (समानवर्चसा) समान तेज वाले होते हो। यह समानता चेतनत्वधर्म को लेकर कही गई है, सर्वांश में नहीं॥

भौतिक पक्ष में—मरुद्गण (हि) निश्चय करो कि (अबिभ्युषा) अधृष्य (इन्द्रेण) बिजुली से (संजग्मानः) सङ्गत हुवा जब (संदृक्षसे) चमकता है तब (मन्दू) मरुद्गण और बिजुली दोनों खिले हुवे (समानवर्चसा) समतेज जान पड़ते हैं॥

इस से यह उपदेश किया गया है कि यह जो आकाश में बिजुली (मेघों में) चमकती है सो वायुवों (मरुतों) की रगड़ से चमकती है। यह ऋचा ऋ० १। ६। ७ में भी आई है सो निरुक्त ४। १२ में यास्कमुनि ने इस प्रकार व्याख्यात किई है कि " अधृष्य गण बिजुली से मिलता हुवा दीखता (चमकता) है, दोनों प्रकाशमान होते हैं वा 'समानवर्चसा' को तृतीया का १ वचन मान कर यह व्याख्या समझो कि सम तेज वाले, (मन्दू=मन्दुना) प्रकाशयुक्त विद्युत्तत्त्व से मरुद्गण प्रकाशित होता है "॥ १॥

अथ द्वितीया

१ २र ३ २उ ३ १२३ १ २ ३ २
(८५१) आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ २ ॥

भावार्थः—जीवात्मन् ! इन्द्र ! (स्वधाम्) पृथिवी और द्युलोक को लक्ष्य करके (आत् अह) मोक्षानन्द के अनुभव के अनन्तर आश्चर्य के साथ (यज्ञियम्) यज्ञसंबन्धी (नाम) नमाने वाले बल को (दधानाः) धारण करते हुवे मरुद्गण वायु तुझ को (पुनः) फिर (गर्भत्वम्) गर्भभाव को (एरिरे) प्राप्त करते हैं ॥

भौतिक पक्ष में—(यज्ञियम्)-यज्ञ से संपन्न (नाम) नमाने वाले जल को (दधानाः) धारण करते हुवे मरुद्गण (स्वधाम्) जल वा अन्न को (अनु) लक्ष्य करके (आत् अह) वर्षा ऋतु के पश्चात् आश्चर्य के साथ (पुनः) पुनः पुनः प्रतिवर्ष (गर्भत्वम्) इन्द्र और बिजुली के गर्भ भाव को (एरिरे) प्राप्त करते हैं ॥

निघण्टु ३ । ३०,१ । १२ फिट्सूत्र ४ । १२ निरुक्त १ । ५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये । ऋ० १ । ६ । ४ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(८५२) वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अविन्द उस्रिया अनु ॥ ३ ॥ [७]

भावार्थः—(इन्द्र) इन्द्रियों के प्रवर्त्तक जीवात्मन् ! इस [पूर्वसन्त्रोक्त] रीति से जन्म ग्रहण करता हुवा तू (गुहा) छिपी जगह में (चित्) भी और (वीळु) दृढ को (चित्) भी (आरुजत्नुभिः) भेदन करने वाले (वह्निभिः) मार्गदर्शक ज्ञानाग्नियों से (उस्रियाः) पञ्चज्ञानेन्द्रियों के (अनु) अनुसार होकर (अविन्दः) प्राप्तव्य विषय को प्राप्त होता है ॥

भौतिक पक्ष में—(इन्द्र) विजुली वा सूर्य (गुहा चित्) गह्वरस्थानों में भी (वीळु चित्) दृढ महल आदि को भी (आरुजत्नुभिः) भङ्ग कर डालने वाले (वह्निभिः) अग्नियों वा किरणों से (उस्रियाः) पृथिव्यादि लोकों को (अनु अविन्दः) प्राप्त होता है ॥

निघण्टु २। ९, २। ११, १। १ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १। ६। ५ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थतृचस्य—भरद्वाजऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा

१ २३ १२ ३२ ३१ २र ३ २३ २
(८५३) ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् ।
३ १ २र
इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ १ ॥

भावार्थः—अब इन्द्राग्नि के उद्देश का आज्य कहते हैं—(ययोः) जिन दोनों की (पुरा) सृष्टि के आरम्भकाल में (कृतम्) सहायता से बना (इदं विश्वम्) यह चराऽचर जगत् (पप्ने) प्रशंसित किया जाता है (ता) उन इन्द्र और अग्नि को (हुवे) उद्देश करके होम करता हूं, जिस से (इन्द्राग्नी) वे सूर्य और अग्नि (न मर्धतः) दुःखदायक न हों ॥ ऋ० ६।६०।४ में भी ॥१॥

अथ द्वितीया

३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
(८५४) उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे ।
१ २ ३१२
ता नो मृडात ईदृशे ॥ २ ॥

भावार्थः—(उग्रा) बलिष्ठ (मृधः विघनिना) रोगादि शत्रुओं को नष्ट करने वाले (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि को (हवामहे) उद्दिष्ट करके हम होम करें। (ईदृशे) ऐसा यज्ञ करने पर (ता) वे दोनों (नः) हम को (मृडातः) सुखदायक हों ॥ ऋ० ६। ६०। ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

२ २ २१ २र ३ १ २र
(८५५) हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
हथो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥ [८]

भावार्थः-(सत्पती) यथानुष्ठानी सत्पुरुषों के रक्षक सूर्य और अग्नि (आर्या) आर्यों के (वृत्राणि) रोकने वाले द्रव्यों का (हथः) नाश करें। (दासानि) उन के उपक्षयकारक पदार्थों का (हथः) निवारण करें और उन की (विश्वाः द्विपः) सब हानिकारिणी प्रजाओं को (अप हथः) दूर करें॥

अग्न्यादि दिव्य पदार्थों की अनुकूलता से रोगादि की निवृत्तिद्वारा हम को सुख हो, यह भाव है॥

ऋ० ६। ६०। ६ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ३॥

उक्तं प्रातःसवनम्॥

(इति विवरणकारः)

विवरणकार कहते हैं कि " अब माध्यन्दिन सवन का आरम्भ किया जाता है " ॥

अथ तृतीयखण्डे प्रथमतृचस्य विश्वामित्र ऋषिः।
सोमोदेवता। बृहती छन्दः॥ तत्र प्रथमा-

१ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
(८५६) अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्। समुद्रस्या-
२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
धिविष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः॥ १॥

इस की व्याख्या ५१८ में हो चुकी॥ १॥

अथ द्वितीया-

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
(८५७) तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत्।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्राहिन्वान ऋतं बृहत्॥२॥

भावार्थः- (राजा) प्रकाशमान (देवः) दिव्यस्वरूप (पवमानः) स्वयं पवित्र और दूसरों को पवित्र शिक्षा देने वाला पुरुष (ऊर्मिणा) तरङ्गसहित (बृहत्) बड़े (ऋतम्) सत्यसंकल्प (समुद्रम्) मन को (तरत्) पार हो जाता है=मन का निग्रह कर लेता है और (मित्रस्य) प्राण और (वरुणस्य) अपान के (धर्मणा) धारण=प्राणायाम द्वारा (हिन्वानः) उन्नति करता हुआ (बृहत्) बड़े (ऋतम्) सत्य ब्रह्म को (मा अर्ष) प्राप्त हो जाता है॥

शतपथ ७। ५। २। ५२ का प्रमाण, जिस का अर्थ यह है कि "मन ही समुद्र है, मनरूपी समुद्र में से विद्वानों ने वाणीरूप फावड़े से त्रयीविद्या को खोदा" और ऋ० ९। १०७। १५ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथाऽध्यात्मरूपा तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २र

(८५८) नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवःसमुद्र्यः।३।[९]

भावार्थः—(नृभिः) योगशिक्षकों से (येमानः) शिक्षा पाया हुवा पुरुष (हर्यतः) मनभावना (विचक्षणः) तीव्रबुद्धि (राजा) प्रकाशमान (देवः) दिव्यस्वरूप (समुद्र्यः) मन को हित "होजाता है" ॥ ऋ० ९। १०७। १६ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—पराशरऋषिः। सोमोदेवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

(८५९) तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो

३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

मनीषाम्। गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः

१ २ ३ १ २ ३ २

सोमं यन्ति मतयोवावशानाः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५२५) में हो चुकी है ॥१॥

अथ द्वितीया—

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

(८६०) सोमं गावोधेनवो वावशानाः सोमंविप्रा मतिभिः

३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पृच्छमानाः। सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे

३ २ ३ २ ३ १ २

अर्कास्त्रिष्टुभः संनवन्ते ॥ २ ॥

भावार्थः—(धेनवः) प्रसन्न करने वाली (गावः) वेदवाणियें (सोमम्) परमात्मा को (वावशानाः) चाहती हुई सी प्राप्त होती हैं क्योंकि वह केवल

वेद से ही जानने योग्य है। (विप्राः) विद्वान् लोग (मतिभिः) अपनी २ बुद्धियों से (सोमम्) परमात्मा को (पृच्छमानाः) खोजते हैं। (सुतः) ध्यान किया हुआ (पूयमानः) हृदय को शुद्ध करता हुआ (सोमः) परमात्मा (ऋच्यते) ऋचाओं से स्तुत किया जाता है परन्तु (त्रिष्टुभः) त्रिष्टुप् आदि छन्दों वाले (अर्काः) मन्त्र (सोमे) परमात्मा के विषय में (संनवन्ते) झुक जाते हैं क्योंकि वाणी का विषय न होने से वे उसे सम्पूर्ण वर्णित नहीं कर सकते। ऋ० ९। ९७। ३५ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये॥ २॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(८६१) एवा नः सोम परिषिच्यमान आपवस्व

३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १र २र

पूयमानः स्वस्ति। इन्द्रमाविश बृहता मदेन

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

वर्धया वाचं जनया पुरन्धिम्॥ ३॥ [१०]

भावार्थः—(सोम) हे परमात्मन्! आप (परिषिच्यमानः) सब ओर प्रसृत वर्तते हुवे (पूयमानः) पवित्रता सम्पादन करते हुवे (नः) हम उपासकों को (आपवस्व) पवित्र कीजिये [जिस से हमारा] (स्वस्ति एव) कल्याण ही [हो] (इन्द्रम्) हमारे आत्मा को (आविश) आप व्याप रहे हैं इस लिये (बृहता) महान् (मदेन) आनन्द से (वाचम्) अपनी स्तुति को (वर्धय) बढ़ाइये और (पुरन्धिम्) बहुत बुद्धियुक्त विज्ञान को (जनय) हमारे लिये उत्पन्न कीजिये॥ ऋ० ९। ९७। ३६ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ३॥

अथ चतुर्थखण्डे प्रगाथस्य प्रथमसूक्तस्य—पुरुहन्मा ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः॥ तत्र प्रथमा—

१ २र ३ २र ३ १ २र ३ २

(८६२) यद्याव इन्द्र ते शतꣳशतं भूमीरुत स्युः।

१ २ ३२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

न त्वा वज्रिन्त्सहस्रꣳ सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी॥ १॥

इस की व्याख्या (२७८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

भावार्थः—इस की टिप्पणी में विवरणकार कहते हैं कि " माध्यंदिन सवन कहा गया, अब पृष्ठ कहे जाते हैं।— " इस प्रथम मन्त्र की व्याख्या छन्द आर्चिक २७८ संख्या पर कर आये हैं। छः दिन का १ पृष्ठ होता है। यथा—१ रथन्तर, २ बृहत, ३ विरूप, ४ वैराज, ५ शाक्कर और ६ रैवत। इसी प्रकार क्रम से इन छः पृष्ठ दिनों के ६ पृष्ठधर्म हैं। जैसे—१ रथघोष, २ दुन्दुभ्याहनन, ३ उपवाजन, ४ उरोग्निमन्थन, ५ आयोघोष और ६ गवांघोष ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २र ३ १ २
(८६३) आपप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शविष्ठ शवसा। अस्मां अव मघवन्गोमति
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ २ ॥ [११]

भावार्थः—(वृषन्) यथेष्ट कामनाओं के वर्षाने वाले ! (शविष्ठ) बलिष्ठ ! (मघवन्) इन्द्र ! परमात्मन् ! आप (महिना) बड़प्पन और (शवसा) बल से (विश्वा) सब (वृष्ण्या) वीर्यवानों को (आ पप्राथ) व्याप्त कर रहे हैं। सो आप (गोमति) इन्द्रियों से युक्त (व्रजे) खरकरूप देह में (चित्राभिः) विचित्र (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अस्मान्) हम को (अव) रक्षित कीजिये ॥ ऋ० ८ । ७० । ६ में भी ॥ २ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—मेधातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः ॥

-तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २
(८६४) वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते॥१॥

इस की व्याख्या २६१ में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(८६५) स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २
कदा सुतं तृषाण ओक आगमइन्द्र स्वब्दीव वंसगः २.

भावार्थः—(वसो) हे निर्धनों के धन । (इन्द्र) परमेश्वर । (एके नरः) कितने ही मनुष्य (उक्थिनः) स्तोता (सुते) अनादिलाभनिमित्त (निः) निरन्तर (त्वा) आप को (स्वरन्ति) पुकारते हैं । दृष्टान्तः—(इव) जैसे (सुतम्) स्वच्छ जल को (तृषाणः) प्यासा [पुकारता है कि] (वंसगः) सुचाल (स्वब्दी) उत्तमजलदाता (कदा) कब (ओकः) स्थान पर (आगमः) आवे ॥ ऋ० ८ । ३३ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया

१ २ ३ २ ३ २र २र ३ १ २
(८६६) कण्वेभिर्धृष्णवाधृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
३ १ २ ३ १र २र
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥३।[१२]

भावार्थः—(मघवन्) हे इन्द्र ! परमात्मन् ! (धृष्णो) सर्वोपरि विराजमान ! (आधृषत्) सर्वतः अभय आप (पिशङ्गरूपम्) पका, (सहस्रिणम्) बहुत, (गोमन्तम्) गौ बैल आदिसहित (वाजम्) धान्य (कण्वेभिः) बुद्धिमानों के लिये (मक्षु) शीघ्र (दर्षि) देते हैं । (विचर्षणे) हे साक्षिन् ! [अतएव आप से] (ईमहे) हम मांगते हैं ॥

निघण्टु ३ । १५, ३ । १९, २ । १५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ३३ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथस्य तृतीय सूक्तस्य—वसिष्ठऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(८६७) तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २र ३ १ २
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥१॥

इस की व्याख्या २३८ में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २३ १२ ३ १ ३ ३ १ २ २र ३ १ २

(८६८) न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।

३२ ३ १ २३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २

सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥२॥

भावार्थः—(मघवन्) हे धनपते ! (द्रविणोदेषु) धनादिदाताओं के विषय में (दुष्टुतिः) कल्पित [दिखावटी वा बनावटी] स्तुति (न) नहीं (शस्यते) कही जाती है । (स्रेधन्तम्) हिंसादि पराया अपकार करते हुवे को (रयिः) धनादि ऐश्वर्य (न) नहीं (नशत्) प्राप्त होता है [निघं० २ । १८] (देष्णम्) दान (यत्) जो कुछ (पार्ये) विना रोक वाले (दिवि) इस अनन्त आकाश में है सो (मावते) धनपति (तुभ्यम्) आप की (इत्) ही (सुशक्तिः) उत्तम शक्ति है । अन्य कोई क्या देगा । ऋग्वेद ७ । ३२ । २१ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

उक्तं माध्यंदिनं सवनम् ॥

विवरणकार कहते हैं कि " अब तृतीय सवन का आरम्भ है "

अथ पञ्चमे खण्डे प्रथमतृचस्य—त्रित आप्त्यो वा ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः

तत्र प्रथमा

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(८६९) तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।

१र ३ १ २

हरिरेति कनिक्रदत् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४७१) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ २

(८७०) अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः ।

३ १ २ ३ १ २र

मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(अक्षीः) परमात्मा की प्रकाशित, (यह्वीः) महती, (ऋतस्य) यज्ञ की (मातरः) माता के समान मान करने वाली, (मर्जयन्तीः) पवित्र करने वाली वेदवाणियें (दिवः) द्युलोक के (शिशुम्) प्रशंसनीय पुत्र के समान सोम की (अभि) सर्वतः (अनूषत) प्रशंसा करती हैं ॥

सायणाचार्य, विवरणकार, निघण्टु के प्रमाण और ऋ० ९।३३।५ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(८७१) रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यꣳ सोम विश्वतः ।
१ २ ३ १ २
आपवस्व सहस्रिणः ॥ ३ ॥ [१४]

भावार्थः—(सोम) परमात्मन् ! वा सोम ! (सहस्रिणः) बहुत संख्या वाले (रायः) मणिमुक्तादि रत्न धन के भरे (चतुरः) ४ चारों दिशास्थ (समुद्रान्) समुद्रों को (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (विश्वतः) सब ओर से (आपवस्व) प्राप्त कराइये ॥ ऋग्वेद ९।३३।६ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—ययातिर्नाहुषऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(८७२) सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वोमदाः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५४७) में आ गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
(८७३) इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ॥ २ ॥

भावार्थः—(इन्दुः) सोम (वाचस्पतिः) वाणी का पालक, (विश्वस्य) सब (ओजसः) बल पराक्रम के (ईशानः) उत्पादन में समर्थ, (मखस्यते)

यश चाहता और (इन्द्राय) वृष्टिकारक वायु वा विद्युत् के लिये (पवते) जाता है । (देवासः) सोमगुण जानने वाले विद्वान् (इति) इत्यादि प्रकार (अनुवन्) उपदेश करें । यह ईश्वराज्ञा है ॥ ऋग्वेद ९ । १०१ । ५ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

३ १ २   ३ १ २   ३ २
(८७४) सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सोमस्पतीरयीणाᳬसखेन्द्रस्य दिवे दिवे ॥ ३ ॥ [१५]

भावार्थः–(सहस्रधारः) अनेक धारों वाला, (समुद्रः) रस भरा, (वाचमीङ्खयः) वाणी का संस्कारकर्त्ता (रयीणाम्) हव्य धन वाले यजमानों का (पतिः) पोषक, (दिवे, दिवे) प्रतिदिन (इन्द्रस्य) वायु वा विद्युत् का (सखा) पोषक होने से हितकारी (सोमः) सोम (पवते) आकाश को जाता है ॥

सायणादि की पुष्टियें संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९।१०१।६ में भी ॥३॥

अथ तृतीयतृचस्य–पवित्र ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । जगती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा–

३ १ २ ३ १ २   ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
(८७५) पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥१॥

इस की व्याख्या (५६५) में हो चुकी है ॥१॥

अथ द्वितीया–

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३   १   ३
(८७६) तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य
२ ३ २क २र १ २ ३ १ २ ३ १ २
तन्तवोव्यस्थिरन् । अवन्त्यस्य पवितारमाशवो
३ २ ३ १ २र ३ १ २
दिवः पृष्ठमधिरोहन्ति तेजसा ॥ २ ॥

भावार्थः-(तपोः) तेजस्वी सोम का (पवित्रम्) पवित्रअङ्ग (दिवस्पदे) द्युलोक के उन्नतस्थान में (विततम्) फैला है (अस्य) इस सोम के (तन्तवः) वायुगत तार (अर्चन्तः) चमकते हुये (व्यस्थिरन्) अनेकधा स्थित होते हैं (अस्य) इस सोम के (आशवः) शीघ्रगामीरस (पवितारम्) यजमान की (अवन्ति) रक्षा करते हैं [सायणाचार्य कहते हैं कि-"होमद्वारा, फिर होम किये हुवे"] (दिवः) द्युलोक की (पृष्ठम्) पीठ पर (तेजसा) तेज के साथ (अधिरोहन्ति) चढ़ जाते हैं ॥

ऋ० ९ । ८३ । २ का अन्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया-

१ २   ३ २ ३   १ २   ३ २ ३ १   २   ३   १ २

(८७७) अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु

३ २   ३   १ २   ३ १ २ ३ १ २

वाजयुः । मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः

३ २३ २ ३ १ २

पितरो गर्भमादधुः ॥ १ ॥ [१६]

भावार्थः-(अस्य) इस सोम के (मायया) बुद्धि तत्त्व से (मायाविनः) बुद्धिमान् लोग वा बुद्धितत्त्वयुक्त पदार्थ (ममिरे) बने हैं, तथा (अग्रियः) मुख्य आदित्य सूर्य (उक्षाः) वृष्टि करने में समर्थ (भुवनेषु) लोकों में (वाजयुः) अन्नोत्पत्ति के लिये (मिमेति) जल बर्षाता है तथा (उषसः) प्रभातों को (अरूरुचत्) प्रकाशित करता है । (नृचक्षसः) मनुष्यों को दिखाने वाली (पितरः) चन्द्रकिरणें जो कि पालन करती हैं (गर्भम्) सोमगर्भ का (आदधुः) आधान करती हैं ॥

निरुक्त २ । १४ का प्रमाण, जिस का अर्थ यह है कि-"सूर्य पृश्नि है क्योंकि इस में रंगतें व्याप रही हैं" तथा निघण्टु ३ । ९ का प्रमाण, जिस का अर्थ यह है कि-"माया बुद्धितत्त्व का नाम है" और सायणाचार्य का प्रमाण जिस का यह तात्पर्य है कि "इस ऋचा में सूर्यकिरणगत सोम का वर्णन है, क्योंकि सूर्य की किरणों से चन्द्रमा की किरण बढ़ती हैं और चन्द्रमा की किरणें जगत् का पालन करने से पितर कहाती हैं और सोमलता का गर्भाधान करती हैं अर्थात् वैद्यकशास्त्रानुसार चन्द्रकिरणों से सोमलता की उत्पत्ति होती है" और ऋ० ९ । ८३ । ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥३॥

इति चतुर्थाऽध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥
" यज्ञायज्ञीयमग्निष्टोमसाम " इति
"इदानीमुक्थानि भवन्ति" इति च विवरणकारः ॥

भाषार्थः—यह चतुर्थ अध्याय का ५ वां खण्ड हुवा और विवरणकार का मत है कि—" यह यज्ञायज्ञीय अग्निष्टोम यज्ञ का साम हुवा, अब (आगे) उक्थ=स्तोत्र हैं" ॥

अथ षष्ठखण्डे प्रथमस्य प्रगाथस्य—सौभरिःकाण्वऋषिः । अग्निर्देवता । ककुप्सतोबृहती च क्रमेण छन्दसी ॥ तत्र प्रथमा—

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(८७८) प्रमᳪं हिष्ठाय गायत ऋतावने बृहते शुक्रशोचिषे ।
३ १ २ ३ १ २
उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१०७) में हो चुकी है ॥१॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(८७९) आवᳪं सते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।
३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छ वाजेभिरागमत् ॥२॥

भाषार्थः—(मघवा) यज्ञ वाला (द्युम्नी) यश वाला (समिद्धः) प्रदीप्त (आहुतः) सामने से होम किया हुवा अग्नि (वीरवत्) वीर पुत्रादियुक्त (यशः) अन्न (आवंसते) देता है (अस्य) इस अग्नि का (सुमतिः) शोभन बुद्धितत्त्व (वाजेभिः) अन्नों सहित (नः) हम (अच्छ) को (कुवित) बहुत (आगमत) प्राप्त हो ॥

भले प्रकार अग्नि में होम करने से मनुष्य—पुत्रादि सन्तान, उत्तम बुद्धि, बहुत धन धान्यादि को प्राप्त होते हैं ॥

निघण्टु २ । ७, ३ । १ निरुक्त ५ । ५ के प्रमाण और ऋ० ८ । १०३ । ९ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—गो.सूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनावृषी । इन्द्रोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(८८०) तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
३ १ २ ३ १ २
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३-३) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(८८१) येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मन्दानो अस्य बर्हिषो विराजसि ॥ २ ॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! इन्द्र ! (येन) जिस कारण (अस्य) इस उपासक के (बर्हिषः) योगयज्ञ के मध्य में (विराजसि) आप विराजते हैं इस कारण (मन्दानः) आनन्दस्वरूप आप (मनवे) मन=अन्तःकरण (च) और (आयवे) प्राण [शतपथ ४ । २ । ३ । १] के लिये (ज्योतींषि) ज्योतियों को (विवेदिथ) प्राप्त कराते हैं ॥

ऋ० ८ । १५ । ५ में भी ऐसा ही पाठ है । परन्तु आश्चर्य है कि विलायती जर्मन के छपे पुस्तक की नक़ल से वा अन्य किसी कारण से ऐशियाटिक सुसाइटी के सायणभाष्य और गानयुक्त पुस्तक में " मनवे मनवे " ऐसा दो बार पाठ भ्रान्ति से छप गया । उसी को देखा देखी अजमेर के वैदिक यन्त्रालय के मूल पुस्तक में भी वैसा ही छप गया और आगरे के भार्गव जी ने तो दूसरे " मनवे " पद का अर्थ भी कर डाला ॥ यह विचार नहीं किया कि न तो उष्णिक् छन्द में ये ३ अक्षर बढ़ सकते हैं, न सायणभाष्य में द्विरुक्त की व्याख्या है, न पदपाठ पुस्तक में, न ऋग्वेद ८ । १५ । ५ में, न गान ग्रन्थों में इस का पुनर्गान है, जीवानन्द के छपाये पुस्तक में भी इस का दो बार पाठ नहीं है ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २
(८८२) तदद्या चित्त उक्थिनोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा ।

१२ ३ १ २ ३ १ २
वृषपत्नीरपो जया दिवे दिवे ॥ ३ ॥ [१८]

भावार्थः—हे इन्द्र ! परमेश्वर ! वा वृष्टिकर्त्तः ! जो कि आप (वृषपत्नीः) मेघों के स्त्री रूप (अपः) जलों को (जय) स्वाधीन करते हैं (तद्) सो (ते) आप के यश को (उक्थिनः) वैदिक स्तोत्रों वाले मनुष्य (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अद्य चित्) अब भी (पूर्वथा) पूर्व के समान (अनुष्टुवन्ति) प्रशंसा करते हैं ॥ ऋ० ८ । १५ । ६ में भी ॥ ३ ॥

अथ तैरश्चं तृतीयमुक्थमिति विवरणकारः ॥

अथ तृतीयतृचस्य—तिरश्चीर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(८८३) श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २
सुवीर्यस्य गोमतोरायस्पूर्धि महाँ असि ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३४६) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
(८८४) यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥२॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यः) जो स्तोता उपासक (ते) आप के लिये (नवीयसीम्) अत्यन्त स्तुतिरूपिणी (मन्द्राम्) आनन्ददायिनी (गिरम्) वाणी को (अजीजनत्) उच्चारण द्वारा उत्पन्न करता है, (चिकित्विन्मनसम्) प्रज्ञानयुक्त मन वाली (प्रत्नाम्) सनातनी (ऋतस्य) यज्ञ की (पिप्युषीम्) पोषण करने वाली (धियम्) वेदस्थ बुद्धि को [उस के लिये आप देते हैं] ॥

विवरणकार कहते हैं कि " नवीयसी=उत्तम मधुर वा कोमल पद वर्ण स्वर उदाहरणों से युक्त " । और यह कि " प्रत्ना=अग्न्यसुः सामरूपा " ।

तथा यह कि–"ऋतस्यपिप्युषीम्=ऋत नाम यज्ञ, अन्न, प्रजापति वा परब्रह्मज्ञान के पोषण करने में समर्थ को"॥ ऋ० ८। ९३। ५ में का पाठव्यत्यय संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

१ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(८८५) तमुष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥ ३ ॥ [१९]

भावार्थः–हम (तम् उ) उसी की (स्तवाम) स्तुति करें (यम्) जिस (इन्द्रम्) परमात्मा [के ज्ञान] को (गिरः) वेदवाणियें (वावृधुः) बढ़ाती हैं। और (अस्य) इस परमात्मा के (उक्थानि) स्तुतियोग्य (पुरूणि) बहुत=अनन्त (पौंस्या) अखिलब्रह्माण्ड मण्डलधारणादि पुरुषार्थों को (सिषासन्तः) वर्णन करना चाहते हुवे हम (वनामहे) भजते हैं ॥

ऋ० ८। ९५। ६ में भी ॥ ३ ॥

——=:०*०:=——

यह

श्रीमान् कण्ववंशावतंस पं० हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र

परीक्षितगढ़ ज़िला मेरठ निवासी

तुलसीरामस्वामिकृत

सामवेदभाष्य उत्तरार्चिक का चतुर्थाध्याय संपूर्ण हुवा ॥ ४ ॥

——०:*X*:०——

ओ३म्

अथ पञ्चमाध्यायः

अथ तृतीयः प्रपाठकः

तत्र

प्रथमे खण्डे प्रतआश्विनीरिति प्रथमतृचस्य—आकृष्टामाषा ऋषिः।
पवमानः सोमोदेवता। जगतीछन्दः॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
(८८६) प्रतआश्विनीः पवमान धेनवोदिव्या असृग्रन्
१ २ ३ १ २ १२ २२ ३ १ २
पयसा धरीमणि। प्रान्तरिक्षात्स्थाविरिस्ते असृ-
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
क्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः॥ १ ॥

भावार्थः—(पवमान) शुद्धिकारक! (ऋषिषाण) ऋषिसेवित! चन्द्रकिरणस्थ! सोम! (ते) तेरी (आश्विनीः) व्याप्त (धेनवः) प्रसन्नता करने वाली (दिव्याः) अन्तरिक्षस्थ किरणें (पयसा) जल से युक्त (धरीमणि) धारक मेघमण्डल में (प्रासृग्रन्) प्रसृत हो जाती हैं। इसी लिये (ये) जो (वेधसः) विद्वान् ऋत्विज् (त्वा) तुझ लतारूप सोम को (मृजन्ति) [यज्ञ में] अभिषुत करते हैं (ते) वे (स्थाविरीः) स्थूल जलधारों को (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (प्र—असृक्षत) वर्षा लेते हैं॥

जो याज्ञिक लोग सोम से यजन करते हैं वे चन्द्रकिरणस्थ सोमरस से व्याप्त मेघमण्डल से वर्षा कराने में समर्थ होते हैं। यह तात्पर्य है॥

ऋ० ९। ८६। ४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ १॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १२ २२
(८८७) उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परियन्ति

३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र
केतवः । यदी पवित्रे अधिमृज्यते हरिः सत्ता नि

२र ३ १ २
योनी कलशेषु सीदति ॥ २ ॥

भावार्थः—(यदि) जब (हरिः) सोम (पवित्रे) दशापवित्र पर (अधिमृज्यते) अभिषुत किया जाता है और (सत्ता) उस की सत्ता (योनी) स्थान (कलशेषु) द्रोणकलशों में (निषीदति) स्थिर होती है तब (ध्रुवस्य) स्थिर (सतः) हुवे (पवमानस्य) सोम की (केतवः) ज्ञापक (रश्मयः) किरणें (उभयतः) इधर उधर (परियन्ति) सब ओर फैलती हैं ॥

ऋ० ९ । ८६ । ६ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र
(८८८) विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः

२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
परियन्ति केतवः । व्यानशी पवसे सोम धर्मणा

२ ३ १ २ ३ १ २
पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥ ३ ॥ [१]

भावार्थः—(विश्वचक्षः) सब की आखों को हितकारी होने से दिखाने वाले ! सोम ! वा सर्वसाक्षिन्नीश्वर ! (प्रभोः) प्रभावशाली (सतः) हुये वा समर्थ और नित्य (ते) तेरी (ऋभ्वसः) बड़ी (केतवः) किरणें=लहरें वा व्याप्तियें (विश्वा) सब (धामानि) स्थानों को (परियन्ति) सर्वतः प्राप्त हो जाती वा होती हैं (व्यानशी) व्याप्ति वाला तू (धर्मणा) अपने प्रभाव वा स्वभाव से (पवसे) पवित्र करता है । इस प्रकार तू (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) जगत् का (राजसि) राजा है ॥

सायण भाष्य और ऋ० ९ । ८६ । ५ के पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥३॥

अथ द्वितीयतृचस्य—आमहीयुर्ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
(८८९) पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।

१ २ ३ २ ३ २

ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४८४) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ ३ २

(८९०) पवमान रसस्तव मदोराजन्नदुच्छुनः ।

२उ २

वि वारमव्यमर्षति ॥ २ ॥

भावार्थः—(पवमान) हे परमात्मन् ! वा सोम ! (राजन्) प्रकाशक ! (तव) तेरा (अदुच्छुनः) दोषरहित (मदः) तृप्तिकारक (रसः) आनन्द वा रस (अव्यं वारम्) सूर्यादि के मण्डल वा ऊन के दशापवित्र को (अर्षति) प्राप्त होता है ॥ ऋ० ९ । ६१ । १७ । का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

(८९१) पवमानस्य ते रसो दक्षो विराजति द्युमान् ।

२ ३ २ ३ २२ ३ २

ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ ३ ॥ [२]

भावार्थः—(पवमानस्य) पवित्र परमात्मा, वा सोम (ते) आप का, वा तेरा (द्युमान्) तेजोयुक्त (दक्षः) बलवान् (रसः) आनन्द वा रस (विश्वम्) सब (ज्योतिः) ज्योति और (स्वः) सुख को (दृशे) दिखाने के लिये (विराजति) विराज रहा है ॥ ऋ० ९ । ६१ । १८ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ षडृचस्य तृतीयसूक्तस्य—मेध्यातिथिर्ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

(८९२) प्र यद्‌ गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २

घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४९१) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
(८९३) सुषितस्य वनामहेऽतिसेतुं दुराव्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
साह्याम दस्युमव्रतम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(सुषितस्य) अभिषुत सोम की (वनामहे) हम प्रशंसा करते हैं जिस से हम (अतिसेतुम्) मर्यादा के तोड़ने वाले (दुराव्यम्) जिसका रोकना कठिन हो उस (अव्रतम्) कर्म के त्यागी वा विरोधी (दस्युम्) शत्रु को (अभिभवेम) तिरस्कृत करें ॥ ऋ० ९ । ४१ । २ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(८९४) शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
१ २ ३ १ २ ३ २
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(शुष्मिणः) बलवान् (पवमानस्य) सोम का (स्वनः) शब्द (वृष्टेः) वर्षा के शब्द (इव) सा (शृण्वे) सुनाई दिया करता है। (विद्युतः) बिजुलियें (दिवि) आकाश में (चरन्ति) घूमती चमकती हैं ॥ ऋ० ९ । ४१ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

१ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २
(८९५) आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
१ २ ३ १ २
अश्ववत्सोम वीरवत् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(इन्दो) गीले ! वा कल्याणामृतवारिधे ! (सोम) ओषधे ! वा परमात्मन् ! कृपया (गोमत्) गौवों से युक्त (अश्ववत्) अश्वयुक्त (हिरण्यवत्) सुवर्णादि धनयुक्त (वीरवत्) और पुत्रादिसहित (महीम् इषम्) बहुत अन्न को (आपवस्व) प्राप्त कराइये ॥

ऋ० ९ । ४१ । ४ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

१ २ ३ २ ३ १ २र

(८९६) पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण ।

३ २उ ३ २ ३ १ २

उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥

भावार्थः—(विश्वचर्षणे) सब की आंखों के हितकारक ! वा सर्वद्रष्टा ! परमेश्वर ! (न) जैसे (सूर्यः) सूर्य (रश्मिभिः) किरणों से (उषाः) प्रभातों को भर देता है वैसे ही (मही) बड़े (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोक को (आ पृण) भर दीजिये [रसप्रभाव वा कृपा से] ऋ० ९ । ४१ । ५ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(८९७) परि नः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६ ॥ [३]

भावार्थः—(सोम) ओषधिराज ! वा हे परमात्मन् ! (नः) हमारे लिये (शर्मयन्त्या) सुखदायिनी (धारया) धारा से (विश्वतः) सब ओर (परि-सर) प्राप्त हूजिये । दृष्टान्त—(रसेव) जैसे नदी (विष्टपम्) नीचे प्रदेश को ॥ ऋ० ९ । ४१ । ६ में भी ॥ ६ ॥

अथ द्वितीयखण्डे षड्ऋचस्य प्रथमसूक्तस्य—बृहन्मतिर्ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १२ ३ २३ १ २

(८९८) आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।

१ २ ३ २उ ३ १ २

यत्र देवा इति ब्रवन् ॥ १ ॥

भावार्थः—(बृहन्मते) बुद्धिवर्धक ! सोम ! (प्रियेण) प्यारे (धाम्ना) स्वरूप से (आशुः) शीघ्रगामी (यत्र) जहां (देवाः) वायुआदि देव हैं (इति) ऐसे (ब्रवन्) बोलता हुआ सा (परि अर्ष) सब ओर फैल ॥

सोम के जड होने पर भी चलने का व्यपदेश अलङ्कार की रीति पर जानिये ॥ ऋ० ९ । ३९ । १ में भी ॥ २ ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(८९९) परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।

३ २ ३ १ २र
वृष्टिं दिवः परिस्रव ॥ २ ॥

भावार्थः—[प्रकरण से] "सोम" ! (अनिष्कृतम्) अपवित्र को (परिष्कृण्वन्) पवित्र करता हुवा और (जनाय) लोगों के लिये (इषः) अन्नों को (यातयन्) प्राप्तव्य करता हुवा (दिवः) आकाश से (वृष्टिम्) वर्षा को (परिस्रव) चुवा ॥ ऋ० ९ । ३९ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २उ ३ १र २र ३ १ २ १ २ ३ २
(९००) अयꣳस यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ ।

१ २ ३ १ २र
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ३ ॥

भावार्थः—(सः) वह (अयम्) यह सोम है (यः) जो (पवित्रे) दशापवित्र पर (आ) आसिञ्चन किया जाता और (सिन्धोः) समुद्र=अन्तरिक्ष की (ऊर्मा) लहर=वायु में (दिवः परि) द्युलोक में (रघुयामा) हलकीचाल वाला होकर (व्यक्षरत्) विविध प्रकार से पहुंचता है ॥ ऋ० ९ । ३९ । ४ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १२ ३ १ २
(९०१) सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधानओजसा ।

३ १ २ ३ १ २
विचक्षाणो विरोचयन् ॥ ४ ॥

भावार्थः—(पवित्रे) दशापवित्र पर (सुतः) अभिषुत सोम (विचक्षाणः) शब्द करता हुवा और (विरोचयन्) प्रकाश करता हुवा तथा (त्विषिम्) तेज का (आदधानः) लोकों में आधान करता हुवा (ओजसा) बल से (एति) द्युलोक को जाता है ॥ ऋ० ९ । ३९ । ३ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

३ १ २   ३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ २
(९०२) आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः ।
१ २   ३ १ २
इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥

भावार्थः—(सुतः) अभिषुत किया सोम (परावतः) दूरस्थ (अथो) और (अर्वावतः) समीपस्थ वायु आदि को (मधु) मिठास (आविवासन्) प्राप्त कराता हुवा (इन्द्राय) वृष्टिकारक विद्युत वा वायु के लिये (सिच्यते) होमा जाता है ॥ ऋ० ९ । ३९ । ५ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—

३   १ २ ३ १ २   ३ १ २
(९०३) समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
१ ३ १ २   ३ १ २
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ६ ॥ [४]

भावार्थः—(समीचीनाः) भद्र पुरुष ऋत्विज् लोग (हरिम्) हरे (इन्दुम्) गीले सोम को (अद्रिभिः) पत्थरों से (हिन्वन्ति) अभिषुत करते हैं। और (इन्द्राय) इन्द्र वा सोमयाजी यजमान राजा के लिये (पीतये) पानार्थ (अनूषत) प्रशंसा करते हैं ॥ ऋ० ९ । ३९ । ६ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥६॥

अथ द्वितीयस्य तृचसूक्तस्य—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्ऋषिः । पवमानः सोमो-देवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ २ ३   २ ३ १ २ ३   १ २   ३ २ ३ १ २
(९०४) हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् ।
३ १   २र   ३ १ २
महामिन्दुं महीयुवः ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे (उस्रयः) सूर्यकिरणें (स्वसारः) आपस में भगिनियें (जामयः) स्त्रीरूपिणियें (पतिम्) पालक (सूरम्) सूर्य को (हिन्वन्ति) मानो प्रीति से सेवन करती हैं वैसे ही (महीयुवः) पृथिवी से छुटी हुई सोमकिरणें (महाम्) प्रशंसनीय (इन्दुम्) सोम का सेवन करती हैं ॥

यद्वा—(जामयः) स्त्रीरूपिणी (स्वसारः) एक हाथ से उत्पन्न होने से परस्पर भगिनी अङ्गुलियें (उस्रयः) कर्म के लिये रहने वाली (महीयुवः) सोम-

के अभिषव करने को चाहती हुईं (सूरम्) सुन्दर वीर्य वाले। क्योंकि सोम-पान से वीर्य बढ़ता है। (पतिम्) पतिरूपपालक (मद्रम्) प्रशंसनीय (इन्दुम्) मह नामक सोम के घटों में टपकते सोम को (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं॥ निघण्टु २५ इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० ९।६५।१ में भी॥१॥

अथ द्वितीया—

१२ ३१ २३ ३१ ३१२ ३२
(९०५) पवमान रुचा रुचा देव देवेभ्यः सुतः।
२ ३ २३१ २
विश्वा वसून्याविश॥ २॥

भाषार्थः—(देव) दिव्यगुणसंपन्न! (पवमानः) पवित्रताकारक! सोम! वा परमात्मन्! (रुचा, रुचा) पूर्ण तेज के साथ (देवेभ्यः) वायु-आदि वा विद्वानों के लिये (सुतः) अभिषुत किया हुवा वा ध्यान किया हुवा (विश्वा) सब (वसूनि) धनों में (आविश) आवेश किये हुवे है। इस लिये सोमयाग से वा परमात्मा के ध्यान से सब पदार्थों की प्राप्ति हो सकती है॥ ऋ० ९।६५।२ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये॥ २॥

अथ तृतीया—

१ २ ३२ २३ ३२३ १२
(९०६) आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः।
३१ २ ३१२
इषे पवस्व संयतम्॥ ३॥ [५]

भाषार्थः—(पवमान) सोम! वा परमात्मन्! (देवेभ्यः) देवों की (दुवः) परिचर्या=देवयजन के लिये (इषे) अन्नोत्पत्त्यर्थ (संयतम्) ठीक समय और नियम से (सुष्टुतिं, वृष्टिम्) प्रशंसनीय वर्षा को (आपवस्व) वर्षाइये॥ ऋ० ९।६५।३ में भी॥ ३॥

{ उक्तं बहिष्पवमानमेकविंशतिस्तोमिकम्,
इदानीमाज्यानि वक्तव्यानि, इति विवरणकारः॥ }

अथ तृतीयखण्डे प्रथमतृचस्य—सुतंभर आत्रेय ऋषिः। अग्निर्देवता। जगतीछन्दः॥ तत्र प्रथमा—

१२ ३१ २ ३ १२ ३२ ३१२
(९०७) जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः
३२ ३ १२ ३१२ ३१ २३ १२
सुविताय नव्यसे। घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा
३ १र २र ३२ ३ १ २
द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ १॥

भावार्थः—(जनस्य) लोक का (गोपाः) रक्षक (जागृविः) जागने और जगाने वाला (सुदक्षः) सुन्दर बलवान् (अग्निः) अग्नि (नव्यसे) अतिनवीन (सुविताय) सुख वा कल्याण के लिये (अजनिष्ट) [वेदी में] उत्पन्न होता और (घृतप्रतीकः) घृतमुख (शुचिः) शुद्धिकारक वह (दिविस्पृशा) अन्तरिक्षगामी (बृहता) बड़े तेज से (भरतेभ्यः) ऋत्विज् आदि के हितार्थ (विभाति) प्रकाश करता है ॥

निघण्टु ३। १८ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ न जाने सायणाचार्य ने क्यों "विभाति" के "वि" उपसर्ग का अर्थ नहीं किया ॥

ऋ० ५। ११। १ और यजुः १५। २७ में भी ॥ १॥

अथ द्वितीया—

१ २३ १ २ ३ १२३१र २र ३ १
(९०८) त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं
२र १ २ ३१२ ३ १२३१र २र३
वने वने। स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः
१२ ३ १२
सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ २॥

भावार्थः—(अग्ने) अग्ने! (अङ्गिरः) अङ्गारवाले! (अङ्गिरसः) ज्ञानी लोग (त्वाम्) तुझ को (गुहा) गुहा में (हितम्) छिपे स्थित (वने वने) वन वन में (शिश्रियाणम्) रहते हुवे को (अन्वविन्दन्) खोजकर पाते हैं (सः) वह तू (महत्) बड़े (सहः) बल से (मथ्यमानः) रगड़ा हुवा (जायसे) प्रकट होता है। इस लिये (त्वाम्) तुझ को (सहसः) बल का (पुत्रम्) पुत्र (आहुः) कहते हैं ॥

यद्वा—(अग्ने) प्रकाशस्वरूप! (अङ्गिरः) सर्वज्ञ! परमात्मन्! (अङ्गि-

रसः) ज्ञानी उपासक योगी (त्वाम्) आप को (गुहा) बुद्धि में (हितम्) अन्तर्यामिता से स्थित (वने वने) वन वन में अर्थात् शून्यस्थानों में भी सर्वत्र (शिश्रियाणाम्) व्यापकता से रहते हुवे को (अन्वविन्दन्) योग से देखते हैं। (सः) वह आप (महत्) बड़े (सहः) बल=परमपुरुषार्थ से (मथ्यमानः) ध्यान रूप रगड़ा लगाये हुवे (जायसे) साक्षात् होते हैं। इस लिये (त्वाम्) आप को (सहसः) परमपुरुषार्थ का (पुत्रम्) उत्पादित पुत्रसमान (आहुः) कहते हैं ॥

ऋ० ५। ११। ६ और यजुः १५। २८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २ ३ १र
(९०९) यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे
२र १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र
समिन्धते। इन्द्रेण देवैः सरथꣳ स बर्हिषि सीदन्नि
२र ३ १ २र ३ १ २
होता यजथाय सुक्रतुः ॥ ३ ॥ [६]

भावार्थः—(नरः) उपासक वा याज्ञिक लोग (त्रिषधस्थे) [इडा पिङ्गला सुषुम्णा] तीन नाड़ियों के सहस्थान वा प्रातः सायं माध्यंदिन ३ सवन वाले यज्ञ में (यज्ञस्य) ज्ञानयज्ञ वा कर्मयज्ञ की (केतुम्) ध्वजारूप, (प्रथमम्) मुख्य, (पुरोहितम्) अग्रसर, (इन्द्रेण) जीवात्मा वा बिजुली और (देवैः) इन्द्रियों वा वायु आदि के साथ (सरथम्) समानस्थानी, (अग्निम्) प्रकाशक परमेश्वर वा अग्नि को (समिन्धते) प्रकाशमान साक्षात् करते वा सुलगाते हैं। (सः) वह अग्नि (सुक्रतुः) यज्ञ का सुधारनेवाला (होता) कर्मों का वा हव्यों का नायक (यजथाय) यजन के लिये (बर्हिषि) योगयज्ञ वा कर्मयज्ञ में (निषीदन्) साक्षात् वा स्थित प्रज्वलित होता है ॥

ऋ० ५। ११। २ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—गृत्समद ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते।
गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १र २र
(९१०) अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा।

२उ ३ १ २ ३ १ २
ममेदिह श्रुतꣳहवम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ऋतावृधा) यज्ञ से बढ़ने वाले (मित्रावरुणा) प्राण और अपान ! (वाम्) तुम दोनों के लिये (अयम्) यह सोम (सुतः) अभिषुत किया है (इत्) अतएव (इह) इस लोक में (मम) मेरे (हवम्) बुलावे को (श्रुतम्) सुनो ॥ ऋ० २ । ४१ । ४ में भी ॥

मित्र और वरुण का व्याख्यान ७९३ मन्त्र पर कर आये हैं । वहीं प्राण अपान के जड़ होने पर भी पुकार सुनने आदि का समाधान है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
(९११) राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे ।
३ १ २
सहस्रस्थूण आशाते ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अनभिद्रुहा) द्रोह न करने वाले (राजाना) प्रकाशमान प्राण और अपान (उत्तमे) उत्तम (ध्रुवे) स्थिर (सहस्रस्थूणे) सहस्रदल कमल (सदसि) स्थान में (आशाते) व्याप्त हैं ॥ ऋ० २ । ४१ । ५ का पाठ-भेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(९१२) ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।
१ २ ३ १ २
सचेते अनवह्वरम् ॥ ३ ॥ [७]

भाषार्थः—(ता) वे दोनों (सम्राजा) भले प्रकार प्रकाशमान (घृतासुती) जिन का अन्न घृत है (आदित्या) जो प्रकृति के पुत्र हैं (दानुनः) याज्ञिक की (पति) रक्षा करने वाले वे प्राण और अपान (अनवह्वरम्) अध्वर यज्ञ को (सचेते) सम्यक् प्राप्त होते हैं ॥ ऋ० २ । ४१ । ६ में भी ॥ ३ ॥

अथैन्द्रमाज्यम्

इतित्रिवरणकार:

अथ तृतीयतृचस्य-गोतमोराहूगणऋषिः । इन्द्रोदेवता ।
गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा-

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
(९१३) इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।
३ १ २ ३ १र २र
जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१७९) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया-

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(९१४) इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् ।
१ २ ३ १ २
तद्विदच्छर्यणावती ॥ २ ॥

भावार्थः-पूर्वमन्त्र से इन्द्र शब्द की अनुवृत्ति है । इन्द्र=सूर्य वा परमैश्वर्यवान् राजा (अश्वस्य) शीघ्रगामी मेघ वा शत्रु का (यत्) जो (शिरः) कटाशिर (पर्वतेषु) पर्व वाले अन्य मेघों वा पर्वताकार दुर्गों में (अपश्रितम्) गिर गया (तत्) उस को (इच्छन्) चाहता हुवा (शर्यणावति) आकाश वा बाणों की वर्षा वाले संग्राम में (विदत्) पाता है वा पावे ॥ ऋ० १ । ८४ । १४ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया-

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
(९१५) अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
इत्था चन्द्रमसोगृहे ॥ ३ ॥ [८]

इस की व्याख्या (१४७) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ चतुर्थतृचस्य-वसिष्ठऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा-

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
(९१६) इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः ।
३ २ ३ १ २
अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥ १ ॥

भावार्थः—(इन्द्राग्नी) हे अध्यापक और अध्येताओ ! (अस्य) इस (मन्मनः) मन्त्र से (इयम्) यह (युवयोः) तुम्हारी (पूर्व्यस्तुतिः) सनातनी प्रशंसा (अजनि) प्रकट होती है । (इव) जैसे (अभ्रात्) बादल से (वृष्टिः) वर्षा प्रकट होती है, तद्वत् ॥

इन्द्र शब्द से सूर्य और अग्नि शब्द से प्रसिद्ध आग का ग्रहण तो स्पष्ट ही है, परन्तु हमने यहां इन्द्र शब्द से अध्यापक और अग्नि शब्द से अध्येता ग्रहण किया है । क्योंकि जैसे सूर्य के प्रकाश से अग्नि प्रकाशित होता है वैसे ही अध्यापक के अध्यापन से अध्येता ज्ञानद्वारा प्रकाशित होता है । उन दोनों की प्रशंसा इस मन्त्र से की गई है ॥ ऋ० ७ । ९४ । १ में भी ॥१॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ २उ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९१७) शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः ।
३ १ २ ३ १ २
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

भावार्थः—(इन्द्राग्नी) हे अध्यापक और अध्येताओ ! (जरितुः) प्रशंसा करने वाले मन्त्र के (हवम्) आह्वान=पुकार को (शृणुतम्) सुनो और (गिरः) वाणियों को (वनतम्) विभागशः उच्चारित करो (ईशाना) समर्थ तुम (धियः) बुद्धियों को (पिप्यतम्) आप्यायित करो ॥
ऋ० ७ । ९४ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
(९१८) मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये ।
१ ३ ३ २
मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥ [९]

भावार्थः—(नरा) हे २ नर (इन्द्राग्नी) अध्यापक और अध्येताओ ! तुम दोनों (नः) हम को (पापत्वाय) पाप होने के लिये (मा) मत (रीरधतम्) प्रेरित करें (अभिशस्तये) निन्दा के लिये (मा) मत प्रेरित करें और (नः) हम को (निदे) निरे नाश वाले काम के लिये (मा) मत प्रेरित करें ॥ ऋ० ७ । ९४ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ माध्यंदिनं सवनमिति विवरणकारः

अथ चतुर्थखण्डे प्रथमतृचस्य-दृढच्युत ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा-

१ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
(९१९) पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
३ १   २ ३ २ ३ १ २
मरुद्भ्यो वायवेमदः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४७४) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया-

२ ३ १   २   ३   १ २   ३ २उ   ३ १ २   ३ २
(९२०) सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः ।
१ २   ३   १ २
पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥

भावार्थः-(योनौ अधि) अपने स्थान आकाश में स्थित (प्रियः) हितकारी (वृषा) वृष्टिकर्त्ता (कविः) बुद्धि तत्त्व का उद्बोधक (अदाभ्यः) नाश न करने योग्य (पवमानः) सोम (देवैः) इन्द्र वायु आदि देवों के साथ (संशोभते) सम्यक् शोभित होता है । ऋ० ९ । २५ । ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया-

१ २   ३   २   ३ २   २उ   ३ १ २
(९२१) पवमान धिया हितोऽ३ऽभि योनिं कनिक्रदत् ।
१ २   ३ १   २र
धर्मणा वायुमारुहः ॥ ३ ॥ [१०]

भावार्थः-(पवमान) सोम ! (धिया) कर्म से (हितः) हित कर हो (योनिम्) अपने स्थान को (अभि) लक्ष्य करके (कनिक्रदत्) शब्द करता हुवा (धर्मणा) अपने स्वभाव से (वायुम्) वायुमण्डल पर (आरुहः) चढ़ ॥

अर्थात् यज्ञकर्म से हितकारी सोम शब्द करता हुवा स्वभावानुसार वायुमण्डल पर चढ़ जाता है ॥

ऋ० ९ । २५ । २ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथस्य द्वितीयसूक्तस्य—मैत्रावरुणो वसिष्ठ ऋषिः । सोमो देवता । बृहती छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
(९२२) तवाहꣳ सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे । पुरूणि
३ १ २ ३ १२ २२ ३ ३ ३ ३ १ २
बभ्रो निचरन्ति मामव: परिधीꣳरतिताꣳ इहि ॥१॥

इस की व्याख्या (५१६) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९२३) तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्रऊधनि ।
३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
घृणा तपन्तमति सूर्यं पर: शकुनाइव पप्तिम ॥२॥ [११]

भावार्थः-(सोम) हे शान्तिदायक ! (बभ्रो) हे विश्वम्भर ! विष्णो ! (ऊधनि) गौवों के थान में (दुहानः) दोहन करते हुवे अर्थात् प्रातः काल और (दिवा) दिन में (उत) तथा (नक्तम्) रात्री में (अहम्) हम लोग (तव, ते) तेरी ही तेरी [उपासना करें] और (घृणा) दीप्ति से (सूर्यम्) सूर्य को (अति) उल्लङ्घित करके (तपन्तम्) प्रकाशमान (परः) सब से परे [आप] को (पप्तिम) होवें (इव) जैसे (शकुनाः) पक्षिगण [सूर्य वा आकाश की ओर अपनी शक्ति के अनुसार उड़ते हैं, तद्वत्] ॥

तात्पर्य यह है कि—हम प्रातःकाल उठकर, दिन में और रात्रि में परमात्मा के अतिरिक्त अन्य की उस के स्थान में उपासना न करें । यद्यपि वह अनन्त अचिन्त्य और अप्रमेय से हमें सर्वात्मरूप से प्राप्त नहीं हो सकता तथापि जैसे पक्षी सूर्य वा आकाश की ओर वहां तक उड़ते हैं, जहां तक उन के पंखों का बल है, वैसे ही हम को अपनी अल्पशक्ति भी समस्त रूप से परमात्मा के भजन में लगा देनी चाहिये । वह अनन्त तेजस्वी सूर्यादि का भी प्रकाशक है इस लिये हम को जो उस के भक्त हैं, कृतार्थ करेगा ॥

सायणाचार्य ने इस मन्त्र के " दुहानः " पद के स्थान में " सख्याय " पद की व्याख्या की है और जहां तक देखने को मिले किसी पुस्तक के मूल में यहां तक कि सायणभाष्ययुक्त पुस्तकों के भी मूल में "सख्याय" पाठान्तर नहीं पाया जाता । अनुमान होता है कि ऋ० ९।१०७।२० में जो " सख्याय " पद

है उसी की व्याख्या यहां सायणभाष्य में है नकि सामवेदस्थ पाठ की। हम ने अन्यत्र भी बहुधा सामवेद के सायणभाष्य में यह छिद्र देखा है ॥ २ ॥

अथ तृतीय तृचस्य—बृहन्मतिर्ऋषिः। पवमानः सोमो देवता। गायत्री छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
(९२४) पुनानो अक्रमीदभि विश्वामृधो विचर्षणिः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
शुभन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४८८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(९२५) आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम्।
३ १ २र
ध्रुवे सदसि सीदतु ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अरुणः) रक्तवर्ण सोम (योनिम्) अपने स्थान को (आरुहत्) चढ़े और (ध्रुवे) स्थिर (सदसि) स्थान आकाश में (सीदतु) स्थिर होवे। इस प्रकार (इन्द्रः) वृष्टिकारक वायुविशेष वा विद्युत्विशेष (सुतम्) सोम को (गमत्) प्राप्त हो ॥

ऋ० ९। ४०। २ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये। यहां भी सायण भाष्य में ऋग्वेद के "सीदति" पाठ की व्याख्या है। सामवेद के "सीदतु" की नहीं ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९२६) नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः।
१ २ ३ १ २
आपवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥ [१२]

भाषार्थः—(इन्दो) गीला (सोम) सोम (नु) शीघ्र (नः) हमारे (महाम्) बड़े (सहस्रिणम्) बहुत (रयिम्) धन और धान्यादि को (विश्वतः) सब ओर से (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आपवस्व) वर्षावे ॥

(विवरणकार कहते हैं कि माध्यंदिन पवमान कहा गया)

अर्थात् अनुष्ठान किया हुआ सोमयाग मनुष्यों के धन धान्यादि की वृद्धि करता है ॥ ऋ० ९ । ४० । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ पञ्चमे खण्डे प्रथम तृचस्य—वसिष्ठऋषिः । इन्द्रोदेवता । विराट् छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९२७) पिबा सोम मिन्द्रमन्दतु त्वायं ते सुपाव हर्यश्वाद्रिः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३
सोतुर्बाहुभ्याꣳ सुयतोनार्वा ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३९८) में हो चुकी है ॥१॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९२८) यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हꣳसि ।
१र २र
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

भावार्थः—(हर्यश्व) हरणकिरण ! वा शीघ्रगाऽश्वादि सेना वाले ! (इन्द्र) सूर्य, ! वा राजन् ! (प्रभूवसो) प्रभावशालिन् ! वसो, ! वा बहुत धनयुक्त ! (यः) जो सोम (ते) तेरा (युज्यः) प्रयोजनीय (चारुः) शोभन (मदः) हर्षकारक (अस्ति) है (येन) जिस से तुम (वृत्राणि) मेघों वा शत्रुओं को (हंसि) नाश करते हो (सः) वह सोम (त्वाम्) तुम को (ममत्तु) हर्ष दे॥ सूर्य के पक्ष में उस का शुभभाव ही हर्ष है ॥ ऋ० ७ । २२ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३
(९२९) बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति
३ ३ १र २र ३ १ २
प्रशस्तिम् । इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३॥ [१३]

भावार्थः—(मघवन्) धनवन् ! वा यज्ञवाले ! इन्द्र ! राजन् ! वा सूर्य ! (याम्) जिस (ते) तुम्हारी (प्रशस्तिम्) प्रशंसारूप (वाचम्) वाणी को (वसिष्ठः) उत्तम विद्वान् (अर्चति) प्राप्त करता है (इमाम्) उस वाणी को

(मे) मेरी उच्चारित को (उ श्रा बोध) भले प्रकार संमुख होकर ग्रहण करो (इमा) इन (ब्रह्म) वेदवचनों का (सधमादे) यज्ञ में (जुषस्व) सेवन करो ॥

स्वनुष्ठित यज्ञ में यजमान राजा वेदवचनों से प्रशंसित किया हुआ तदनुकूलाचरण करे, यही वेदवचनों का सेवन है । सूर्य के पक्ष में भी वेदानुकूल सूर्योपकार की प्राप्ति ही उस का सेवन जानिये ॥ ऋ० ७ । २२ । ३ में भी ॥३॥

अथ द्वितीयतृचस्य—रेभः काश्यप ऋषिः । इन्द्रोदेवता । अतिजगती छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ १२ ३१२३१२ ३१२ ३
(९३०) विश्वाः पृतना अभिभूतरन्नरः सजूस्ततक्षुरि-
२ ३१२ ३१२ २३१२३२३ १२३१
न्द्रञ्जजनुश्च राजसे । क्रत्वेवरेस्थेमन्यामुरीमुतो-
२र ३१२ ३ १२
ग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३७०) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३१ २ ३१२ ३१ २र ३२
(९३१) नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।
३१ २ ३२र ३१२३ २३ १ २र
सुदीतयो वो अद्रुहोपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः॥२॥

भावार्थः—(तरस्विनः) स्तोत्रादि कर्मों में फुर्तीले (सुदीतयः) सुन्दर दीप्ति वाले (अद्रुहः) किसी से द्रोह न करने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् ऋत्विज् ब्राह्मण लोग (अभिस्वरे) यज्ञ में (ऋक्वभिः) मन्त्रों से (चक्षसा) उपदेश से (वः) तुम्हारे (नेमिम्) मर्यादावर्त्ती (मेषम्) कामपूरक [प्रकरण से—इन्द्र=राजा यजमान को] (कर्णे) कान के समीप (अपि) और दूरस्थित भी (संनमन्ति) अच्छे प्रकार भक्ति श्रद्धादि वर्धक वाद्यजप आदि से नम्र करते हैं॥ ऋ० ८ । ९७ । १२ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१२ ३१ २ ३२३ १ २ ३१२
(९३२) समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रꣳसोमस्य पीतये ।

२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स्वः पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥३॥[१४]

भावार्थः—पूर्व मन्त्र से " अभिस्वरे "='यज्ञ में' की अनुवृत्ति है। यज्ञ में (रेभासः) स्तोता ऋत्विज् लोग [निघण्टु ३ । १६] (सोमस्य पीतये) सोम के पीने को (इन्द्रम्) इन्द्र राजा को (सम् उ अस्वरन्) बुलाते हैं (यत्) जिस से कि (स्वःपतिः) इन्द्र=राजा (वृधे) वृद्धि के लिये (धृतव्रतः) व्रत को धारण करने वाला (हि) निश्चय (ओजसा) बल और (ऊतिभिः) बलोत्पन्न रक्षाओं से (सम्) संगत होजावे (ई) पादपूर्णार्थ है ॥ ऋ० ८ । ९७ । ११ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथस्य तृतीयसूक्तस्य—पुरुहन्मा ऋषिः । इन्द्रो देवता । प्रागाथं छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(९३३) यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
१ २ ३ १ २र ३र ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वासां तरुता पृतानानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१॥

इस की व्याख्या (२७३) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९३४) इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य
३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
द्विता विधर्त्तरि । हस्तेन वज्रः प्रतिधायि
३ २ ३ २ ३ १ २र
दर्शतो महान्देवो न सूर्यः ॥ २ ॥ [१५]

भावार्थः—(पुरुहन्मन्) हे बहुज्ञानिन् ! (तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र=राजा को (अवसे) रक्षा के लिये (शुम्भ) प्रसन्न कर (यस्य) जिस के (हस्तेन) हाथ ने (वज्रः) शस्त्रास्त्र समूह (प्रतिधायि) धारण किया है [इस से उग्र है] और जो (दर्शतः) दर्शनीय भी है [इस से अभिगम्य है] इस प्रकार राजा (महान्) बड़े (देवः) देव (सूर्यः) सूर्य के (न) समान (विधर्त्तरि) ब्रह्माण्ड में (द्विता) दो प्रकार से वर्त्तमान है ॥

जैसे सूर्य तीक्ष्ण किरणों वाला होने से अधृष्य है और प्रकाशादि का उपयोगी होने से दर्शनीय और अभिगम्य है। इसी प्रकार राजा भी दुष्टों के दमनार्थ उग्र और धर्मात्माओं की रक्षार्थ शान्त दर्शनीय अभिगम्य होवे। उक्त गुणविशिष्ट राजा का विद्वानों को सत्कार करना चाहिये॥

ऋ० ८। १०। २ के पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये॥ २॥

अथ षष्ठे खण्डे प्रथमतृचस्य—असितःकाश्यपो देवलोवा ऋषिः। पवमानः सोमोदेवता। गायत्री छन्दः॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ ४र ३क ४र ३ २
(९३५) परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः।
३ १ २ ३ १ २
स्वानैर्याति कविक्रतुः॥ १॥

इस की व्याख्या (४७६) में हो चुकी है॥ १॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(९३६) स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत्।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
महान्मही ऋतावृधा॥ २॥

भावार्थः—(जातः) उत्पन्न हुवा (शुचिः) शुद्ध (महान्) बड़ा उत्तम हृव्य (सः) वह सोम (सूनुः) पुत्र-(मही) बड़ी (ऋतावृधा) यज्ञ की बढ़ाने वाली (जाते) सब की उत्पादिका (मातरौ) अपनी [सोम की] माता द्युलोक और पृथवी को (अरोचयत्) प्रकाशित करता है॥

ऋ० ९। ९। ३ में भी॥ २॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९३७) प्र प्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः।
३क २र ३ १ २
वीत्यर्ष पनिष्टये॥ ३॥ [१६]

भावार्थः—प्रकरण से सोम (प्रक्षयाय) उत्तरवाले (पन्यसे) व्यवहार

करने वाले (पनिष्टये) स्तोता (अद्रुहः) द्रोहरहित (जनाय) पुरुष के लिये (वीति) भक्षणार्थ (प्रार्थ्य) मिलता है ॥

ऋ० ९ । ८ । २ के पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथस्य द्वितीय सूक्तस्य—शक्तिरुरुश्च क्रमेण द्वयोर्ऋषी । पवमानः सोमोदेवता । ककुप्, सतोबृहती च क्रमेण छन्दसी ॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
(९३८) त्वं ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
३ १ २ ३ १ २
अमृतत्वाय घोषयन् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५८३) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
(९३९) ये ना नवग्वा दध्यङ्पोर्णुते येन विप्रास
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३'
आपिरे । देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो
२ ३ २ ३ १ २
येन श्रवांस्याशत ॥ २ ॥ [१७]

भावार्थः—(येन) जिस (नवग्वा) उत्तम वाक्तत्व वाले सोम से (दध्यङ्) वाणी [ऋ० ६ । ४ । २ । ३] (अपोर्णुते) फैलती है, (येन) जिस से (विप्रासः) विद्वान् लोग (आपिरे) सुख को वा धन को प्राप्त होते हैं और (येन) जिस सोम से (देवानाम्) विद्वानों के (सुम्ने) आनन्द में (चारुणः) सुन्दर (अमृतस्य) अमृत के (श्रवांसि) यशों को (आशत) पाते हैं ॥ ऋ० ९ । १०८ । ४ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—अग्निर्ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । उष्णिक् छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ २र ३ २ ३ १ २
(९४०) सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं विधावति ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५७२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(९४१) धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम् ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(वाजिनम्) बलदायक और बलयुक्त, (वने क्रीडन्तम्) वसतीवरी नामक जल में क्रीडा करते हुवे, (अत्यविम्) ऊर्णामय दशापवित्र को उल्लङ्घित करने वाले [सोम को ऋत्विज् लोग] (धीभिः) अङ्गुलियों से (मृजन्ति) स्वच्छ [अमनियां] करते हैं। किञ्च—(त्रिपृष्ठम्) तीन [१ द्रोणकलश, २ आधवनीय, ३ पूतभृत्] पात्रों को छूने वाले सोम को (मतयः) मन्त्रवाणियें (अभि समऽस्वरन्) सब ओर से प्रशंसित करती हैं॥ ऋ० ९ । १०६ । ११ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

(९४२) असर्जि कलशां अभि मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।

३ १ २र ३ १ २

पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ ३ ॥ [१८]

भाषार्थः—(सप्तिः न) घोड़े के समान (वाजयुः) बलिष्ठ और (मीढ्वान्) सेचनसमर्थ (पुनानः) पवमान सोम (कलशान् अभि) द्रोणकलशों में (असर्जि) छोड़ा जाता है, तब (वाचम्) वाणी को (जनयन्) उत्पन्न करता हुवा (असिष्यदत्) टपकता है ॥ ऋ० ९ । १०६ । १२ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थतृचस्य—प्रतर्दनो दैवोदासिर्ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १

(९४३) सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १र २र

जनिता पृथिव्याः । जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य

३ १ २ ३ ३ १ २र
जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५२७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(५४४) ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
महिषो मृगाणाम् । श्येनोगृध्राणां स्वधि-

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥२॥

भावार्थः—(सोमः) ओषधिराज सोम (देवानाम्) विद्वान् ऋत्विजों में (ब्रह्मा) ब्रह्मा सा मुख्य वा राजा है, तथा (कवीनाम्) कवियों का (पदवीः) ठीक २ पद जुड़वाने वाला है, और (विप्राणाम्) बुद्धिमानों का (ऋषिः) दर्शक वा बुद्धिवर्धक है, तथा (मृगाणाम्) वन्यपशुओं का (महिषः) बढ़ाने वाला है, अथच (गृध्राणाम्) गिद्धों और गृध्रोपलक्षित अन्य पक्षियों का (श्येनः) गतिसंपादक है। इस प्रकार के प्रभाव वाला सोम (रेभन्) शब्द करता हुआ (पवित्रम्) ऊर्णामय दशापवित्र को (अत्येति) लांघता है ॥

निरुक्त के परिशिष्टकार इस ऋचा को इस प्रकार व्याख्यात करते हैं:—

(भावार्थ—) "यह सोम दिव्य सूर्यकिरणों का ब्रह्मा है, यही कवि=कविवत् आचरण करते हुवे सूर्यकिरणों का पदयोजक है, यही व्यापक सूर्य किरणों का ऋषि=व्यापक है, यही ढूंढने वाले सूर्य किरणों का बढ़ाने वाला है, यही मानो सूर्य है, यही ठहराने वाले सूर्यकिरणों का सूर्य है, यही संविभाग करने वाले सूर्यकिरणों का कर्म में प्रेरक है। यही सोम किरणों में पवित्रता फैलाने वाला है। यह सोम की स्तुति=प्रशंसा है"। यह भौतिक दैवत पक्ष का अर्थ है ॥

अब अध्यात्मपक्ष का अर्थ कहते हैं कि यह आत्मा सोम है, जो दिव्य-कर्मा, इन्द्रियों का ब्रह्मा है, वह कवि इन्द्रियों का पदरचनासहायक है, वह व्यापक इन्द्रियों का बोधसहायक है, वह ढूंढने वाले इन्द्रियों का बढ़ाने वाला है, वह बोधक इन्द्रियों का आत्मा है, वह विभाजक इन्द्रियों का कर्म कराने

चाला है, वह इन्द्रियों का पावन, इन्द्रियों को लांघ कर चला जाता है। वह सब का अनुभव करता है। इस प्रकार आत्मिक गति कहते हैं" ॥ नि० प० २। १३ ॥ ऋ० ९। ९६। ६ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३
(९४५) प्राविविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरस्स्तोमा-
१ २ ३ ३ २ ३ २ २र ३ २ ३ १
न्पवमानो मनीषाः। अन्तः पश्यन्वृजनेमा-
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
वराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥३॥ [१९]

भावार्थः—(पवमानः) सोम (मनीषाः) धारणावती बुद्धियों को, (गिरः) भोजन शक्तियों को, (स्तोमान्) वक्तव्य शक्तियों को (वाचः) और वाणियों को (प्राविविपत्) प्रेरता है। दृष्टान्त—(न) जैसे (सिन्धुः) नदी (ऊर्मिम्) लहरी को प्रेरती है, तद्वत्। तथा (अन्तः) भीतर (पश्यन्) दृष्टि की सहायता करता हुवा (अवराणि) दूसरों से न हटाने योग्य (इमा) इन (वृजना) बलों को (आतिष्ठति) प्राप्त करता है (वृषभः) वृष्टिकर्ता सोम (गोषु) ज्ञानेन्द्रियों में (जानन्) बोधशक्ति प्रदान करता हुवा वर्त्तमान है ॥ ऋ० ९। ९६। ७ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

इति सामवेदभाष्ये उत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य
षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

" इति—यज्ञायज्ञीयमग्निष्टोमीयं साम" अथच—" इन्द्रानीसुषथानि। तत्र—सौरभं ब्रह्मसाम वसिष्ठस्य प्रियतममच्छावाकसाम " इति च विवरणकारः ॥

अथ तृचत्रयात्मके सप्तमे खण्डे प्रथम तृचस्य—प्रयोगोऽग्निर्वा ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ १र २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९४६) अग्निं वोवृधन्तमध्वराणां पुरूतमम्।
२ ३ २ ३ १ २
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (२१) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १२ २२ ३ २३ १ २ ३ २३ १ २

(९४७) अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपवे तक्ष्या ।

३ २उ ३ १ २

अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ २ ॥

भावार्थः—पूर्व मन्त्र से "अग्नि" की अनुवृत्ति है (अस्य) इस (यशस्वतः) यशस्वी अग्नि के (क्रत्वा) यजन से (अयम्) यह अग्नि (नः) हमारे लिये (तक्ष्या) फाड़ने योग्य (रूपा) काष्ठादि रूपों को (इव) जैसे (त्वष्टा) बढ़ई (यथा) जैसे (आभुवत्) होवे, वैसा हम यत्न करें ॥

हम को अग्नि द्वारा ऐसा यज्ञ करना चाहिये कि यह अग्नि काष्ठों को बढ़ई के समान दुर्गन्ध का छेदन भेदन करके उपकारक हो ॥ ऋ० ८ । १०२ । ८ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

३ १ २२ ३ २उ ३ २ ३ १ २

(९४८) अयं विश्वा अभि श्रियोग्निर्देवेषु पत्यते ।

२उ ३ १ २

आवाजैरुपनोगमत् ॥ ३ ॥ [२०]

भावार्थः—(अयम्) यह यजन किया हुवा (अग्निः) अग्नि (देवेषु) वायु आदि देवों में (विश्वाः) सब (श्रियः) संपदाओं को (अभि नियत्यते) सब ओर से पहुंचाता है वह अग्नि (वाजैः) खेती की वृद्धि द्वारा अन्नों से (नः) हम को (उपागमत्) प्राप्त हो ॥ ऋ० ८ । १०२ । ९ में भी ॥३॥

अथ द्वितीयतृचस्य—गोतमो राहूगण ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(९४९) इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।

३ १ २ ३क २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शुक्रस्य त्वाऽभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३४४) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(९५०) नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ २ ॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (यत्) जोकि तुम (हरी) दोनों शीघ्रगामी अश्वों को (यच्छसे) प्राप्त होते हो इस से (त्वत्) तुम से बढ़कर (रथीतरः) उत्तम रथी (नकिः) कोई न हो और (त्वा अनु) तुमसा (मज्मना) बल से भी (नकिः) कोई न हो, तथा (स्वश्वः) उत्तम घोड़ों वाला तुम से बढ़कर (नकिः) कोई न (आनशे) मिले ॥

अर्थात् राजा को सर्वोत्तम अश्वादि रत्न अपने पास रखने चाहियें ॥ निघं० २ । ९ अष्टाध्यायी ८ । ३ । १०३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ८४ । ६ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ ३ १ २ ३ ३ १ २
(९५१) इन्द्रायनूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥३॥ [२१]

भावार्थः—हे प्रजाजनो ! (इन्द्राय) राजा के लिये (नूनम्) अवश्य (अर्चत) सत्कार करो (उक्थानि) उस की स्तुतियें (ब्रवीतन) उच्चारण करो (सुताः) अभिषुत (इन्दवः) सोम (अमत्सुः) उसे हृष्ट करें (सहः) बलवान् (ज्येष्ठम्) बड़े राजा को (नमस्यत) नमस्कार करो ॥ ऋ० १ । ८४ । ५ में भी ॥ ३ ॥

भा०—" अब चतुर्थ दिन में षोडशी (याग) होता है । उस षोडशी का बड़ा विचार है । (इन्द्रायेन्द्रम) यहां से आरम्भ करके निदानकृत् ने बड़ा विचार किया है । ३४ अक्षर 'स्तुत' कहाते हैं । तदनुसार 'प्रवह' इत्यादि उपसर्गाक्षर निरूपित किये हैं । इस प्रकार प्रत्येक ऋचा के पहिले ३ तीन पादों में पादान्त के उपसर्गाक्षर होते हैं । यह विवरणकार का मत है । तथा च—

१—ऋचा में—प्र व ह, ह रि ह, भ ति नें—ये ९ । २ में—न ठ्यं न, दि थो न, स्व ३ नें—ये ९ । और ३ में—मि त्रो न, य ति नें, भु नु नें—ये ९ तथा प्रथम

ऋचा के चतुर्थ पाद के आरम्भ में—न धो ३ इस का न—ये ७ सब मिलकर ३४ उपसर्गाक्षर हुवे। इस में—स्व३र्न,मधो ३:—इन दोनों में ३ मात्र के प्लुत को दो अक्षर गिन कर बड़े विचार (क्लिष्ट कल्पना) से ३४ की गिनती पूरी होती है ॥"

अथ तृतीयतृचे प्रथमा—

१ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(९५२) इन्द्र जुषस्व प्रवहायाहि शूर हरिह ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ २र ३ २उ २ १ २
पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥१॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (हरिह) हे दस्युनाशन ! (शूर) हे वीर ! (सुतस्य) अभिषव किये हुवे (मधोः) सोम का (मदाय) हर्ष के लिये (चकानः) तृप्ति चाहते हुवे (चारुः) शोभन आप (जुषस्व) सेवन करें । (पिब) उस का पान करें (आयाहि) प्राप्त हों और (प्रवह) शत्रुओं पर चढ़ाई करें। दृष्टान्तः—(न) जैसे (मतिः) बुद्धि सोमपान से प्राप्त होती और शोभन होती है तद्वत् ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
(९५३) इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न । अस्य
३ २ ३ २ १ २ ३ १ २ १ १ २
सुतस्य स्वा३ऽ३र्णोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥ २ ॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (दिवः) स्वर्ग के (न) तुल्य (सुतस्य) अभिषव किये हुवे (अस्य) इस (मधोः) सोम के (सुवाचः) सुन्दर वाणी-युक्त (मदाः) हर्ष (त्वा) तुम को (उपास्थुः) उपस्थित हों और तुम उस से (स्वर्न) देवतुल्य अपने (जठरम्) उदर को (नव्यं न) अपूर्वता (पृणस्व) भरो । अर्थात् अनोखी तृप्ति करो ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ २
(९५४) इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न ।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
बिभेद वलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ॥ ३ ॥ [२२]

इति तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धप्रपाठकः ॥

इति पञ्चमाऽध्याये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

भावार्थः-(मित्रः न) मित्र के समान सर्वहितकारी, (यतिः न) संन्यासी सा निष्पक्ष, (भृगुः न) सूर्यकिरण सा तेजस्वी (तुराषाट्) शीघ्र शत्रुओं का तिरस्कर्त्ता (इन्द्रः) राजा (सोमस्य) सोम के (मदे) हर्ष में (वृत्रम्) मार्गावरोधी डाकु को (जघान) मारता और (वलम्) शत्रुसेना को (बिभेद) छिन्न भिन्न करता तथा (शत्रून्) शत्रुओं को (ससाहे) तिरस्कृत करता है ॥ ३ ॥

यह कण्ववंशाऽवतंस श्रीयुत पं० हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र
परीक्षितगढ़ (ज़िला—मेरठ) निवासी
तुलसीराम स्वामिकृत
उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में पांचवां अध्याय समाप्त हुवा ॥ ५ ॥
" चतुर्थ दिन समाप्त हुवा "
यह विवरणकार का मत है ॥

ओ३म्

अथ षष्ठोऽध्यायः

अथ तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धप्रपाठकः

"इदानीं पञ्चममहरुच्यते" इति विवरणकारः

तत्र प्रथमखण्डे प्रथमतृचस्य—त्रय ऋषिगणः । पवमानः सोमो देवता । जगती छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ १ २   ३ १ २   ३ १ २ ३   १ २ ३
(५५५) गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो
१ २ ३ १ २   २   ३ १ २
भुवनेष्वर्पितः । त्वꣳ सुवीरो असि सोम
३ २उ   ३ २ ३ १ २ ३ १र   २र
विश्वविन्तं त्वा नर उप गिरेम आसते ॥ १ ॥

भावार्थः—(इन्दो) परमैश्वर्यवन् ! (सोम) शान्तामृतस्वरूप ! परमात्मन् ! (त्वम्) आप (वसुवित्) धनवान् और धनदाता, (हिरण्यवित्) तेजस्वी और तेजोदाता, (रेतोधाः) बल वीर्य के धाता, (भुवनेषु) लोक लोकान्तरों में (अर्पितः) ओतप्रोत व्यापक, (सुवीरः) अत्यन्त बली और (विश्ववित्) सर्वज्ञ (असि) हैं (तम्) उस (त्वा) आप को (इमे) ये (नरः) मनुष्य (गिरा) वाणी द्वारा स्तुति से (उपाऽऽसते) उपासना करते हैं (पवस्व) हमें पवित्र कीजिये ॥ ऋ० ९ । ८६ । ३९ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २   ३ २ ३   १ २   २
(५५६) त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ
१र २र   १ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ १
ता वि धावसि । स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयꣳ
२ ३ १ २   ३ १ २
स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ २ ॥

भावार्थः—(सोम) हे शान्तामृतस्वरूप ! (पवमान) पवित्रकारक ! (वृषभ) सब कामनाओं पूरक ! (त्वम्) आप (विश्वतः) सब ओर से (नृचक्षाः) मनुष्यों के साक्षी (असि) हैं (ताः) उन प्रजाओं को (विधावसि) सर्वग होने से सर्वत्र प्राप्त हैं (सः) वह आप (नः) हमारे लिये (वसुमत) धन धान्ययुक्त (हिरण्यवत्) तेजोयुक्त ऐश्वर्य की (पवस्व) वर्षा कीजिये जिस से (वयम्) हम (भुवनेषु) संसार में (जीवसे) जीवन के लिये (स्याम) समर्थ हों ॥ ऋ० ९ । ८६ । ३८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २ ३१र २र ३ १ २ ३ १ २
(९५७) ईशान इमाभुवनानि ईयसे युजान इन्दो
३ १ २ ३ २र १ २ ३ १ २ ३ २उ
हरितः सुपर्ण्यः । तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥३॥ [१]

भावार्थः—(इन्दो) परमेश्वर ! (सोम) शान्तामृतस्वरूप ! आप (ईशानः) वश में करते हुवे (इमा) इन (भुवनानि) भुवनों को (ईयसे) सम्यक् प्राप्त हैं (हरितः) हरितादि विविध रङ्ग वाली (सुपर्ण्यः) सुन्दर पतन वाली सूर्य चन्द्रादि किरणों को (युजानः) युक्त करते हुवे हैं । (ते) आप [स्वामी] की (ताः) स्वभूत [मिलकियत] वे किरणें (मधुमत्) मधुर रस युक्त (घृतम्) घृतवत् पुष्टिकारक (पयः) जल को (क्षरन्तु) वर्षावें और (कृष्टयः) मनुष्य (तव) आप के (व्रते) नियम में (तिष्ठन्तु) ठहरें ॥ ऋ० ९ । ८६ । ३६ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयसूक्तस्य—काश्यपऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । गायत्रीछन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ १ २
(९५८) पवमानस्य विश्वविन्प्र ते सर्गा असृक्षत ।
१ २ ३ २ ३ १ २
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ १ ॥

भावार्थः -(विश्ववित्) हे सर्वज्ञेश्वर ! (पवमानस्य) पवित्र करते हुवे (ते) आप की (सर्गाः) वैदिक ऋचा रूपिणी धारायें (प्राऽसृक्षत) ऐसे छूटती हैं (न) जैसे (सूर्यस्येव रश्मयः) सूर्य की किरणें ॥

जैसे सूर्य किरणें उदय होकर मनुष्यादि प्राणियों की आंखों में सहायता देती हैं, वैसे ही परमात्मा से वेद प्रकट होकर मनुष्यों की बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हैं ॥ ऋ० ९ । ६४ । ७ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

(९५९) केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाऽभ्यर्षसि ।

३ १ २

समुद्रःसोम पिन्वसे ॥ २ ॥

भावार्थः–(सोम) हे शान्ताऽमृतस्वरूप ! परमात्मन् ! (समुद्रः) आप समुद्रवत् गम्भीर हैं, और (दिवस्परि) इस अनन्त आकाश में (विश्वा) सब (रूपा) रूपों को (अभ्यर्षसि) पवित्र करते हैं और (केतुम्) प्रज्ञान (कृण्वन्) करते हुवे (पिन्वसे) पोषण करते हैं ॥ ऋ० ९ । ६४ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

(९६०) जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।

१ २ ३ १र २र

क्रन्दन्देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥ [२]

भावार्थः–(पवमान) हे पवित्रस्वरूप ! परमात्मन् ! (जज्ञानः सूर्यः देवः न) उदित सूर्य देव की नाईं (विधर्मणि) अन्तःकरण में (क्रन्दन्) वैदिक शब्दों को उत्पन्न करते हुवे आप (वाचम्) वाणी को (इष्यसि) प्रेरित करते हैं ॥

जैसे प्रातःकाल होते ही उदित सूर्य प्रकाश फैलाता है, इसी प्रकार परमात्मा सृष्ट्यारम्भ होते ही ऋषियों के पवित्र अन्तःकरण में वेदोपदेश करके उन की वाणी को प्रेरित करता है ॥ ऋ० ९ । ६४ । ९ के पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

प्रसोमास इति सप्तर्चस्य तृतीयसूक्तस्य–असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । गायत्री छन्दः । तत्र प्रथमा–

१र २र ३ १२ ३ १ २
(९६१) प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः ।
३ २ ३ १ २
श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥ १ ॥

भावार्थः—(पवमानासः) पवित्र (इन्दवः) प्रकाशमान (सोमासः) सोम (प्राऽधन्विषुः) आकाश को जाते तथा (श्रीणानाः) सूर्य किरणों से पकते हुवे (अप्सु) मेघस्थित जलों में (वृञ्जते) चले जाते हैं ॥

ऋ० ९ । २४ । १ का पाठान्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(९६२) अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः ।
३ १र २र
पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥

भावार्थः—(गावः) किरणों में परिणत (इन्दवः) आर्द्र सोम (अभि अधन्विषुः) सब ओर फैलते हैं और (पुनानाः) पवित्र करते हुवे (इन्द्रम्) सूर्य वा मेघराज को (आशत) व्याप जाते हैं । (न) जैसे (प्रवता) नीचान के देश से (यतीः) जाते हुवे (आपः) जल ॥ ऋ० ९ । २४ । २ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १र २र ३ १ २
(९६३) प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः ।
१ २ ३ १र २र
नृभिर्यतो विनीयसे ॥ ३ ॥

भावार्थः—(पवमान) शोध्यमान ! (सोम) सोम ! (नृभिः) कर्मकाण्ड के नायकों से (यतः) नियत किया हुआ जब (विनीयसे) अग्नि में होमा जाता है तब (मादनः) तृप्तिकारक हुआ (इन्द्राय) मेघराज वा सूर्य के लिये (प्रधन्वसि) उछलता चला जाता है ॥ ऋ० ९ । २४ । ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

२ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(९६४) इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(इन्दो) सोम ! (यत्) जब (अद्रिभिः) मेघों से (सुतः) आपे में अभिषुत किया हुआ (पवित्रम्) पवित्रतापूर्वक (परि) सब ओर (दीयसे) अर्पित होता है तब (इन्द्रस्य) वृष्टिकर्त्ता के (धाम्ने) धारणार्थ (अरम्) पर्याप्त होता है ॥ ऋ० ९ । २४ । ४ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९६५) त्वꣳ सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(यः) जो (सस्निः) शुद्ध (अनुमाद्यः) प्रशंसनीय (चर्षणीधृतिः) मनुष्यों से धारण किया हुआ (नृमादनः) नरों का तृप्तिकारक होता है (सोम) सोम ! (त्वम्) सो तू (पवस्व) पवित्रता कर ॥

ऋ० ९ । २४ । ५ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९६६) पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः ।
१ २ ३ १र २र
शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥

भावार्थः—(वृत्रहन्तमः) मेघों का अतिशय वर्षाने वाला (उक्थेभिः) वेदमन्त्रों से (अनुमाद्यः) प्रशंसनीय (शुचिः) स्वयं शुद्ध तथा (पावकः) अन्यों का शोधक (अद्भुतः) आश्चर्यकारक बलयुक्त सोम (पवस्व) पवित्रता करे ॥

ऋ० ९ । २४ । ६ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी—

१ २ ३१ २ ३ १२ ३१र २
(९६७) शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् ।
३ १२ ३ २
देवावीरघशंसहा ॥ ७ ॥ [३]

भावार्थः—(सः) वह (शुचिः) स्वयं शुद्ध तथा (पावकः) अन्यों का शोधक (सोमः) सोम (मधुमान्) मधुरता युक्त (सुतः) अभिषुत किया हुआ (देवावीः) वायु आदि देवों की तृप्ति का कर्त्ता (अघशंसहा) दुष्ट-रोगादि शत्रुविनाशक (उच्यते) कहता है ॥ ऋ० ९ । २४ । ७ का पाठ संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

अथ द्वितीयखण्डे सप्तर्चस्य—ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(९६८) प्र कविर्देववीतयेऽव्यावारेभिरव्यत ।
३ १ १र ३ १र २र
साह्वान्विश्वा अभिस्पृधः ॥ १ ॥

भावार्थः—(देववीतये) देवों के पानार्थ (कविः) बुद्धिमत्त्वयुक्त सोम (अव्या) ऊनी (वारेभिः) दशापवित्रों से (प्राऽव्यत) प्राप्त होता और (विश्वाः) सब (स्पृधः) शत्रुसेनाओं को (अभि) सामना करके (साह्वान्) दबाने वाला है ॥ ऋ० ९ । २० । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१र २र ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(९६९) स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति ।
१ २ ३ १ २
पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(सः हि स्म) वही (पवमानः) सोम (जरितृभ्यः) स्तोता आदि ऋत्विजों और यजमानों के लिये (गोमन्तम्) गौ आदि पशुयुक्त (सहस्रिणम्) बहुत सा (वाजम्) धन धान्य (आ इन्वति) देता है ॥ ऋ० ९ । २० । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२३ १२ ३ १२ ३२३ १२ ३२

(९७०) परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती ।

१२ ३ १२

स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥

भावार्थः—(सोम) सोम ! तू हम से (मती) बुद्धि और (चेतसा) चित्त लगा कर (मृज्यसे) शोधा जाता है (सः) वह तू (नः) हमारे लिये (श्रवः) अन्न (विदः) प्राप्त कराता और (पवसे) पवित्रता करता है ॥

जो लोग जी से सोमयाग शुद्धिपूर्वक करते हैं, उन की शुद्धि होती और अन्नादि का लाभ होता है। शुद्धि बड़ी वस्तु है जिस के बिना मनुष्यों के प्राण भी बचने कठिन होते हैं ॥ ऋ० ९। २०। ३ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

३क २र ३ १ २र २र ३ १ २ ३ २ ३ २

(९७१) अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवꣳ रयिम् ।

१२ ३ २ ३ १ २

इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ ४ ॥

भावार्थः—सोम ! (मघवद्भ्यः) यज्ञकर्त्ता (स्तोतृभ्यः) स्तोता आदि ऋत्विजों के लिये (बृहत्) बड़ा (यशः) यश और (ध्रुवम्) स्थिर (रयिम्) धन (अभ्यर्ष) प्राप्त करा और (इषम्) अन्न (आभर) दे ॥ ऋ० ९। २०। ४ में भी ॥४॥

अथ पञ्चमी—

१ २र ३ १र २र २ १ २

(९७२) त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमाविवेशिथ ।

३ १ २

पुनानो वह्नेअद्भुत ॥ ५ ॥

भावार्थः—(वह्ने) यज्ञ के पहुंचाने वाले ! (अद्भुत) आश्चर्यरूप ! (सोम) सोम ! (त्वम्) तू (राजेव) राजा के समान (सुव्रतः) सुन्दर कर्म वाला (पुनानः) शुद्धिकारक (गिरः) वाणियों को (आविवेशिथ) प्रवेश करता अर्थात् प्रशंसा के अनुकूल सम्पन्न हो जाता है ॥ ऋ० ९। २०। ५ में भी ॥५॥

अथ षष्ठी—

१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९७३) स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
१ २ ३ १ २
सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥

भावार्थः—(सः) वह सोम (वह्निः) यज्ञ का नेता है (गभस्त्योः) बाहु=हाथों में (मृज्यमानः) शोधाजाता हुवा (अप्सु) वसतीवरीनामक जलों में (दुष्टरः) दुस्तर (चमूषु) चमसों में (सीदति) रक्खा जाता है ॥ ऋ० ९ । २० । ६ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी—

३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
(९७४) क्रीडुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
१ २ ३ २ ३ १ २
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥ [४]

भावार्थः—(सोम) सोम ! (मखः) यज्ञ के (न) समान (मंहयुः) प्रशंसनीय (क्रीडुः) क्रीड़ा करने कराने वाला (स्तोत्रे) स्तोता आदि यज्ञानुष्ठानियों के लिये (सुवीर्यम्) सुन्दरबल (दधत्) धारण करता हुवा (पवित्रम्) दशापवित्र पर (गच्छसि) जाता है ॥ ऋ० ९ । २० । ७ में भी ॥ इन सातों ऋचाओं का परमेश्वर विषयक अर्थ भी विचार लेना चाहिये ॥७॥

अथ चतुर्थस्य द्वितीयसूक्तस्य—अवत्सार ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९७५) यवं यवं नो अन्धसा पुष्टं पुष्टं परिस्रव ।
१ २ ३ १ २
विश्वा च सोम सौभगा ॥ १ ॥

भावार्थः—(सोम) सोम ! (नः) हमारे लिये (पुष्टं पुष्टं यवं यवम्) पुष्कल रस (अन्धसा) अन्न के सहित (च) और (विश्वा) सब (सौभगा) सौभाग्य (परिस्रव) वर्षाव ॥ अष्टाध्यायी ८ । १ । १० का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ५५ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२
(९७६) इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥

भावार्थः—(इन्दो) सोम ! (अन्धसः) देवतों के अन्न (तव) तेरी (यथा) जैसी (स्तवः) प्रशंसा है और (यथा) जैसा (ते) तेरा (जातम्) जन्म है वैसा ही (प्रिये) प्यारे (बर्हिषि) यज्ञ में (नि सदः) स्थित हो ॥ अर्थात् वेदों में जिस प्रकार के सोम की प्रशंसा की गई है वैसा करके यज्ञ में वर्त्तना चाहिये ॥ ऋ० ९ । ५५ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
(९७७) उत नो गोविदश्वावित्पवस्व सोमान्धसा ।
३ १२ ३ १२
मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥

भावार्थः—(सोम) सोम ! (उत) और (नः) हमारे लिये (गोवित्, अश्ववित्) इन्द्रियप्रद और प्राणप्रद (मक्षूतमेभिः अहभिः) शीघ्रतम दिनों से (अन्धसा) अन्नादि के साथ (पवस्व) वर्षे ॥ ऋ० ९ । ५५ । ३ में भी ॥३॥

अथ चतुर्थी—

२ ३ २ ३ १२ २२३ २ १ २ ३ १ २
(९७८) यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।
१ २
स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥ [५]

भावार्थः—(यः) जो (सहस्रजित्) बहुतों का जीतने वाला (शत्रुम्) शत्रु को (अभीत्य) घेर कर (हन्ति) मारता और (जिनाति) जीतता है किन्तु (न जीयते) हारता नहीं (सः) वह सोम (पवस्व) पवित्रता करो ॥ ऋ० ९ । ५५ । ४ में भी ॥ ४ ॥

अथ तृचस्य तृतीयसूक्तस्य—जमदग्निर्ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(९७९) यास्ते धारा मधुश्च्युतोऽसृग्रमिन्द ऊतये ।
१ २ ३ २ ३ १ २
ताभिः पवित्रमासदः ॥ १ ॥

भावार्थः—(इन्दो) सोम ! (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (ते) तेरी (याः) जो (मधुश्च्युतः) मधुर रस टपकाने वाली (धाराः) धारायें (असृग्रम्) छोड़ी जाती हैं (ताभिः) उन धाराओं से (पवित्रम्) दशापवित्र पर (आसदः) स्थित हो ॥ ऋ० ९ । ६२ । ७ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(९८०) सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥

भावार्थः—(सः) वह सोम (अव्यया) ऊर्णामय (वाराणि) दशापवित्रों को (तिरः) छोड़ कर (ऋतस्य) यज्ञ की (योनिम्) वेदी में (आसीदन्) स्थित हुवा (इन्द्राय) इन्द्र=वृष्टिकारक सूर्य वा विद्युत के लिये (पीतये) पानार्थ (अर्ष) जावे ॥

ऋ० ९ । ६२ । ८ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९८१) त्वꣳ सोम परिस्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः ।
३ २ ३ १र २र
वरिवोविद्घृतं पयः ॥ ३ ॥ [६]

भावार्थः—(सोम) हे सोम ! (त्वम्) तू (स्वादिष्ठः) स्वादिष्ठ (वरिवोविद्) धनधान्यादि का प्रापक (अङ्गिरोभ्यः) निघं० ५ । ५ और निरु० अ० ११ में कहे मध्यस्थान देवगणान्तर्गत सूर्यकिरणों से छुवे हुवे वायु विशेषों से (घृतम्) दीप्त (पयः) रस को (परिस्रव) वर्षाव ॥ ऋ० ९ । ६२ । ९ का पाठ

भेद संस्कृतभाष्य में देखिये॥ विवरणकार कहते हैं कि बहिष्पवमान कहा गया और वह २७ वां सौमिक भी। ५ वां दिन॥ अब आज्य कहते हैं—जिन में प्रथम आग्नेय आज्य कहा जाता है—॥ ३॥

अथ तृतीयखण्डे प्रथमतृचस्य—अरुणो वैतहव्य ऋषिः। अग्निर्देवता। जगतीछन्दः॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १र २
(९८२) तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र
३ १ २ २ १ २ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३
उषसामिवेतयः। यदोषधीरभि सृष्टो वनानि
१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि॥ १॥

भावार्थः—(अग्नेः) प्रकाशादि गुणयुक्त (तव) तेरी (श्रियः) किरण रूप विभूतियें (चिकित्रे) जानी जाती हैं। दृष्टान्त—(इव) जैसे (वर्ष्यस्य) वर्षा के मेघ की (विद्युतः) बिजुलियें और (इव) जैसे (उषसाम्) प्रभात वेलाओं के (एतयः) चलने वाले प्रकाश। कब? (यत्) जब कि (ओषधीः) चावल जौ आदि (च) और (वनानि) जङ्गलों के (अभि) प्रति (सृष्टः) छुट कर (स्वयम्) आप ही (आसनि) लपट रूप मुख में (अन्नम्, तृणादिक अन्न को (परिचिनुषे) चारों ओर से चुनता है तब॥ ऋ० १०। ९१। ५ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ १॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
(९८३) वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेवि-
३ १ २ १ २ ३ २ २ ३
षद्वितिष्ठसे। आ ते यतन्ते रथ्योऽ३ऽयथा
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पृथक् शर्धांस्यग्ने अजरस्य धक्षतः॥ २॥

भावार्थः—(अग्ने) अग्ने! (यत्) जब कि (वातोपजूतः) वायु से प्रचलित हो (वशान्) प्यारे वनस्पति आदि की (अनु) ओर (तृषु)

शीघ्रता से (इषितः) प्रेरित हुवा (अन्ना) भक्षणीय वनस्पत्यादि में (वेविषत्) व्याप्त हुवा (वितिष्ठसे) इधर उधर फैलता है, तब (अजरस्य) जरारहित (धक्षतः) फूंकते हुवे के (ते) तेरे (शर्धांसि) तेज वा लपटें (यथा रथ्यः) रथी सी (पृथक्) अनोखी (आ यतन्ते) प्रतीत होती हैं ॥

ऋग्वेद १० । ९१ । ७ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(९८४) मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निᳪं होतारं

३ १ २ ३ २ १र २र ३ १ २ ३ २उ
परिभूतरं मतिम् । त्वामर्भस्य हविषः समान-

३ १ २ ३ २
मित्त्वां महो वृणते नान्यन्त्वत् ॥ ३ ॥ [७]

भावार्थः—(मेधाकारम्) तेजस होने से बुद्धि के उत्पादक, (मतिम्) मन के प्रेरक, (विदथस्य) यज्ञ के (प्रसाधनम्) उत्तम साधन (होतारम्) देवों को बुलाने वाले, (अर्भस्य) थोड़े और (महः) बहुत (हविषः) हव्य के (समानम्) समान (इत्) ही (परिभूतरम्) फूंकने वाले (त्वाम्) तुझ (अग्निम्) अग्नि को हम याज्ञिक वरण करते हैं, क्योंकि इस निमित्त (त्वां वृणते) लोग तुझे ही वरते हैं (त्वत्) तुझ से (अन्यम्) अन्य को (न) नहीं ॥ ऋ० १० । ९१ । ८ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ मैत्रावरुणमाज्यम्

अथ द्वितीय तृचस्य—उरुचक्रिरात्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(९८५) पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण ।

२ ३ १ २ ३ २
मित्र वᳪंसि वाᳪं सुमतिम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(मित्र) प्राण ! (वरुण) अपान ! (वाम्) तुम्हारी दी हुई (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (वंसि) मैं सेवन करूं (नूनं चित् हि) अवश्य ही अवश्य (वाम्) तुम्हारी की हुई (अवः) रक्षा (पुरूरुणा) बहुत ही बहुत (अस्ति) है ॥

अर्थात् प्राण और अपान की प्रसन्नता (अच्छेपन) में अवश्य उत्तम बुद्धि और रक्षा प्राप्त होती है ॥ ऋ० ५ । ७० । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
(९८६) ता वाᳪं᳭ सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च ।
३ १ २
वयं वां मित्रा स्याम ॥ २ ॥

भावार्थः—(ता) उन (अद्रुह्वाणा) द्रोहरहित अनुकूल (वाम्) तुम दोनों प्राणाऽपान के प्रस्तुत (इषम्) अन्न (च) और (धाम) स्थिति को (वयम्) हम (अश्याम) प्राप्त हों और (वाम्) तुम्हारे (मित्रा) मित्र (स्याम) हों ॥ ऋ० ५ । ७० । २ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(९८७) पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथाᳪं᳭सुत्रात्रा ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
साह्याम दस्यून्तनूभिः ॥ ३ ॥ [८]

भावार्थः—प्राण और अपान (नः) हम (मित्रा) अनुकूलवर्त्तियों को (पायुभिः) रक्षाओं से (पातम्) रक्षित करें (उत) और (सुत्रात्रा) उत्तम पालनों से (त्रायेथाम्) पालें । हम (तनूभिः) अपने बलिष्ठ शरीरों से (दस्यून्) दुष्टों को (साह्याम) दबावें ॥ ऋ० ५ । ७० । ३ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ "ऐन्द्रमाज्यम्" इति विवरणकारः ॥

अथ तृतीय तृचस्य—कुरुसुतिः काण्वऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
(९८८) उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः ।
१ २ ३ २ ३ २
सोममिन्द्र चमूसुतम् ॥ १ ॥

भावार्थः—विव०—कहते हैं कि आगे ऐन्द्र आज्य के मन्त्र हैं । (इन्द्र) हे राजन् ! वा वृष्टिकारक देव ! (चमूसुतम्) सेना वा चमसों में अभिषुत (सोमम्) सोम को (पीत्वा) पीकर (ओजसा सह) बल वीर्य के साथ (उत्तिष्ठन्) उठता हुवा (शिप्रे) ठोडियों को (अवेपयः) फड़का ॥

भौतिक इन्द्र के पक्ष में ठोड़ी आलङ्कारिक जानिये ॥ ऋ० ८ । ७६ । १० का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १र २र
(९८९) अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमान मदेताम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र यद्दस्युहा भवः ॥ २ ॥

भावार्थः—(स्पर्धमान) शत्रुओं पर स्पर्धा करते हुवे ! (इन्द्र !) वा राजन् ! (यत्) जब कि आप (दस्युहा) शत्रुनाशक (भवः) हों तब (त्वाम् अनु) आप के साथ (उभे रोदसी) पृथिवीआकाशवासी (मदेताम्) प्रसन्न हों ॥ ऋग्वेद ८ । ७६ । ११ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(९९०) वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम् ।
२ ३ १ २ ३क २र
इन्द्रात्परि तन्वं ममे ॥ ३ ॥ [९]

भावार्थः—(अहम्) मैं स्तुति करने वाला (तन्वं वाचम्) थोड़ी वाणी को (इन्द्रात्) इन्द्र वा राजा से (अष्टापदीम्) ४ दिशा ४ विदिशा=८ स्थानों में फैली हुई वा ४ वेद वा ४ उपवेदों में प्रत्युत (नवस्रक्तिम्) ऊपर की दिशा में गिन कर ९ स्थानों वा द्वारों वाली वा त्रिवृत्स्तोम वाली (ऋतावृधम्) यज्ञ की बढ़ाने वाली को (परिममे) पूरी करता हूं ॥ ऋ० ८ । ७६ । १२ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथैन्द्राग्नमाज्यम्—

अथ चतुर्थतृचस्य—भरद्वाजोबार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । गायत्री छन्दः । तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ ३ २ १र २र

(९९१) इन्द्राग्नी युवामिमेऽअभिस्तोमा अनूषत ।

१ २ ३ २

पिबतꣳ शंभुवा सुतम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(इन्द्राग्नी) सूर्य ! और अग्ने ! (युवाम्) तुम्हारी (इमे) ये (स्तोमाः) त्रिवृत् पञ्चदशादि यज्ञ स्तोत्र (अभ्यनूषत) प्रशंसा करते हैं (शंभुवा) सुख के दाता वा कर्ता इन्द्र और अग्नि (सुतम्) सोम को (पिबतम्) पीवें=शोषें ॥ ऋ० ६ । ६० । ७ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(९९२) या वां सन्ति पुरुस्पृहा नियुतो दाशुषे नरा ।

१ २ ३ २ ३ १ २

इन्द्राग्नी ताभिरागतम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(नरा) जगत् के नायक ! (पुरुस्पृहा) बहुतों से चाहे हुवे ! (इन्द्राग्नी) सूर्य ! और अग्नि ! (याः) जो (वाम्) तुम दोनों की (नियुतः) किरणें (सन्ति) हैं (ताभिः) उन से (दाशुषे) यजमान के लिये (आगतम्) प्राप्त होओ ॥

यदि सूर्य और अग्नि न हों तो समस्त लोक जड़वत् गिर जावे, हिलना चलना बन्द हो जावे, इस लिये इन को नायक कहा गया है। इन की किरणें जगत् के रोगादिजनित भय दूर करने से अमृत का काम देती हैं, इस से सब को इन की चाहना होती है। ये कितनों को तो भले प्रकार मिलनी भी दुर्लभ हैं। सो यज्ञ करने वालों को सुलभ हों, यह इस मन्त्र में प्रार्थना है ॥ ऋ० ६ । ६० । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३१र २र ३ २

(९९३) ताभिरागच्छतं नरोपेदꣳ सवनꣳ सुतम् ।

१ २ ३ १ २

इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ३ ॥ [१०]

भावार्थः—(नरा) जगत् के नेता ! (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि ! (इदम्) इस (सुतम्) अभिषुतसोम (सवनम्) यज्ञ में (सोमपीतये)

सोमपानार्थ (ताभिः) उन किरणों से (उपाऽऽगच्छतम्) प्राप्त हों ॥
ऋ० ६ । ६० । ९ में भी ॥ ३ ॥
उक्तं प्रातः सवनम्, इदानीं माध्यन्दिनं सवनमभिधीयते । इति विवरणकारः ॥

अथ चतुर्थ खण्डे प्रथमतृचस्य—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(९९४) अर्षा सोम द्युमत्तमोभिद्रोणानि रोरुवत् ।
२ ३ २ ३ २ ३ २
सीदन्श्येनो वनेष्वा ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५०३) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(९९५) अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
१ २ ३ १ २
सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ २ ॥

भावार्थः—(अप्साः) जल में मिले हुवे (सोमाः) सोम—(इन्द्राय) इन्द्र, (वरुणाय) वरुण, (मरुद्भ्यः) मरुत् और (विष्णवे) विष्णु (वायवे) इन २ नामक वायुविशेषों के लिये (अर्षन्तु) प्राप्त हों ॥

इन्द्र, वरुण, मरुत, विष्णुनामक वायुविशेषों के व्याख्यान निघण्टु और निरुक्त में बाहुल्य से वर्णित हैं, वहां देखिये ॥ ऋ० ९ । ६५ । २० का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ५ १ २
(९९६) इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यꣳ सोम विश्वतः ।
१ २ ३ १ २
आपवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥ [११]

भावार्थः—(सोम) सोम ! (नः) हमारे (तोकाय) सन्तान के लिये (इषम्) अन्नादि (दधत्) धारण कराव और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये

(विश्वतः) सब ओर से (सहस्रिणम्) बहुत (आपवस्व) शुद्धि कर ॥
ऋ० ९ । ६५ । २१ में भी ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथस्य द्वितीयसूक्तस्य—सप्तर्षय ऋषयः । पवमानः सोमोदेवता । बृहती छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २
(९९७) सोम उष्वाणः सोतृभिरधिष्णुभिरवीनाम् । अश्वयेव
३ १ २ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥१॥

इस की व्याख्या (५१५) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९९८) अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमोदुग्धाभिरक्षाः ।
३ २उ ३ १ २ २ १र २र
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥२॥ [१२]

भावार्थः—(गोमान्) इन्द्रियशक्तियों का उद्बोधन करने वाला (मन्दी) तृप्तिकारक (सोमः) सोम (मदाय) हर्ष के लिये (तोशते) अभिषुत किया जाता है, वह (दुग्धाभिः गोभिः) दुही गौवों के समान थकी इन्द्रियों के साथ (समुद्रम्) मन में (अक्षाः) जाता है (न) जैसे (अनूपे) नीचान में (संवरणानि) जल (अग्मन्) जाते हैं (अक्षाः) तद्वत् जाता है ॥

शतपथ ७ । ५ । २ । ५२ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । १०७ । ९ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—असितः काश्यपोदेवलोवा ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ २र ३ १र २र ३ १ २
(९९९) यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु ।
१ २ ३ १र २र
तन्नः पुनान आभर ॥ १ ॥

भावार्थः—(सोम) सोम ! (यत्) जो (चित्रम्) विविध (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (दिव्यम्) आकाश का और (पार्थिवम्) पृथिवी का (वसु)

घन है, (तत्) वह (नः) हमारे लिये (पुनानः) पवित्रता करता हुआ (आभर) प्राप्त करा ॥ ऋ० ९ । १९ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१०००) वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधिबर्हिषि ।

१ ३ २उ ३ १ २

हरिः सन् योनिमासदः ॥ २ ॥

भावार्थः—(वृषा) वृष्टिकारक, (आयूंषि) जीवनों को (पुनानः) शुद्ध करता हुआ (अधिबर्हिषि) यज्ञ में (हरिः) हुत होने से हरितरङ्ग (सन्) हुआ (स्तनयन्) गर्जता हुआ सोम (योनिम्) गगनमण्डल में (आसदः) स्थित होता है ॥ ऋ० ९ । १९ । ३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥२॥

अथ तृतीया—

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

(१००१) युवंहि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती ।

३ १ २ ३ १ २

ईशाना पिप्यतं धियः ॥ ३ ॥ [१३]

भावार्थः—(सोम) सोम ! तू (च) और (इन्द्रः) सूर्य (हि) ही (स्वःपती) सुख के स्वामी और (गोपती) इन्द्रियों के पोषक (स्थः) हो (ईशाना) शक्तिमान् (युवम्) तुम दोनों (धियः) कर्मों वा बुद्धियों को (पिप्यतम्) समृद्ध करो ॥ ऋ० ९ । १९ । २ में भी ॥ ३ ॥

उक्तोमाध्यंदिनः पवमानः इति विवरणकृत् ॥

सत्यव्रत सामश्रमी जी लिखते हैं कि " इस से आगे विवरणकार ने शक्वरी रख कर उन्हीं की व्याख्या की है । जैसा कि " अब पृष्ठों का वर्णन है, उस में पांचवें दिन शक्वरियां पृष्ठ हैं सो कही जाती हैं—छन्द, देवता, ब्राह्मण परिभाषानुसारी जानो । ' विदा मघवन् ' सर्वज्ञ इन्द्र ! तू इत्यादि; पर विवरणकार की सम्मति में महानाम्न्यार्चिक उत्तरार्चिक के ही अन्तर्गत है, अन्य ग्रन्थ छन्दआर्चिक का परिशिष्ट नहीं । परन्तु यह बड़ा आश्चर्य है कि यह मूल पुस्तक देखने के विपरीत है " ॥

अथ पञ्चमखण्डे प्रथमतृचस्य—गोतमोराहूगण ऋषिः । इन्द्रोदेवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१००२) इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
२उ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे
१र २र ३ १ २
स वाजेषु प्र नो विषत् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४११) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २३ २उ ३ १ ३ २
(१००३) असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादिः ।
१ २ ३ १ २ ३ २र २र
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय
३ १र २र ३ १ २
शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥

भावार्थः—(वीर) इन्द्र ! राजन् ! आप (सेन्यः) सेना के योग्य (असि) हैं। आप (हि) ही (भूरि) बहुत से (परादिः) शत्रुओं के पकड़ने वाले (असि) हैं। (दभ्रस्य) थोड़ों को (चित्) भी (वृधः) बढ़ाने वाले (असि) हैं। (ते) आप के लिये (सुन्वते) सोमाभिषव करने वाले (यजमानाय) यजमान को (भूरि) बहुत (वसु) धन (शिक्षसि) देते हैं ॥ निघं० ३ । २, ३ । २० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ८१ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

६ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१००४) यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २र
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कंहनः कं वसौ

३ १ २ ३ १ २
दधोऽस्मां इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥ [१४]

इस की व्याख्या (४१४) में हो चुकी है ॥ ३ ॥

अथ रायोवाजीयमच्छावाकसामेति विवरणकारः ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत् ॥ तत्र प्रथमा—

३ २ ३ १ २३१ २ १ २ ३क २र
(१००५) स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।
१ २र ३ १२३ २ ३ १ २ ३ २ ३
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णामदन्ति शोभथा
२ ३ १ २ ३ १ २
वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४०९) में हो गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २३ १ २ ३ १ २
(१००६) ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं
२ ३ १ २ ३ १ २
वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(प्रियाः) संसार का हित करने वाली, (ताः) वे, (पृशनायुवः) सब को छूना चाहने वाली, (पृश्नयः) अनेक रङ्गतों वाली, (वस्वीः) जगन्निवासहेतुभूता, (अस्य) इस (इन्द्रस्य) सूर्य की (धेनवः) किरणें (स्वराज्यम्) स्वप्रकाश सूर्य के (अनु) साथ २ (वज्रं सायकं हिन्वन्ति) वज्र बाण सा छोड़तीं अर्थात् वज्रवत् प्रहारयुक्त बाण के समान फैलतीं और (सोमम्) सोमादि ओषधियों को (श्रीणन्ति) पकाती हैं ॥ ऋ० १ । ८४ । ११ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २३ १२३ १२ ३२३ १२
(१००७) ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
३२ १ ३१ २ ३१२ ३
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये
२ ३१२ ३१२
वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥ [१५]

भावार्थः—(वस्वीः) वसाने वाली (अस्य) इस सूर्य की (ताः) वे किरणें (प्रचेतसः) बुद्धितत्त्व को जगाने वाली (स्वराज्यम्) सूर्य के (अनु) साथ २ (नमसा) उत्पादित अन्न से (सहः) लोक के बल को (सपर्यन्ति) बढ़ाने से सत्कृत करती हैं और (अस्य) इस सूर्य के (पुरूणि) बहुत से (व्रतानि) अन्नोत्पादनादि कर्मों को (पूर्वचित्तये) पूर्व जगाने के लिये (सश्चिरे) सेवित करती हैं ॥ ऋ० १ । ८४ । १२ में भी ॥ ३ ॥

उक्तं माध्यंदिनं सवनमिदानीं तृतीयं सवनमुच्यते इति विवरणकारः ॥

अथ षष्ठे खण्डे प्रथमतृचस्य—जमदग्निर्ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ २
(१००८) असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
३ २उ ३ १ २
श्येनो न योनिमासदत् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४७३) में हो गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
(१००९) शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ २ ॥

भावार्थः—(गावः) सूर्यकिरणें (शुभ्रम्) उज्ज्वल (अन्धः) अन्नरूप (देववातम्) देवों के भोजन (अप्सु धौतम्) वसतीवरीनामक जलों में धोये

हुवे (नृभिः सुतम्) ऋत्विजों द्वारा अभिषुत किये हुवे सोम को (पयोभिः) जलों सहित (स्वदन्ति) चूसती हैं ॥ ऋ० ९ । ६२ । ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

१ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(१०१०) आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय ।
२ ३ १ २ ३ १ २
मधोरसꣳ सधमादे ॥ ३ ॥ [१६]

भावार्थः–ऋत्विज् लोग (सधमादे) यज्ञ में (ईम्) इस (मधोः) सोम के (रसम्) रस को (अमृताय) अमृतत्व के लिये (आत् अशूशुभन्) शोभित करते हैं (न) जैसे (हेतारम्) शीघ्रगामी (अश्वम्) अश्व को सजाते हैं तद्वत् ॥ ऋ० ९ । ६२ । ६ के पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथस्य द्वितीयसूक्तस्य–ऊर्ध्वसद्माकृतयशाश्च क्रमेणर्षी । पवमानः सोमोदेवता । ककुप् सतोबृहती च क्रमेणच्छन्दसी । तत्र प्रथमा–

३ २ ३ २ ३ २ ३उ १ २ ३ १ २ ३ २
(१०११) अभिद्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् ।
१र २र ३ १ २
वि कोशं मध्यमं युव ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५७९) हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

१ २ ३ २र ३ २ ३ २उ
(१०१२) आवच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
वह्निर्न विश्पतिः । वृष्टिं दिवः पवस्व
३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
रीतिमपोजिन्वन् गविष्टये धियः ॥२॥ [१७]

भावार्थः–(सुदक्ष) शोभनबलवन् ! सोम ! (चम्वोः) अभिषव के फलकों में (सुतः) अभिषुत किया हुवा (विश्पतिः) राजा (न) सा (विशाम्) प्रजाओं का (वह्निः) ले चलने वाला होकर (आवच्यस्व) प्राप्त हो और

(गविष्टये) आत्मार्थी गी आदि धनार्थी यजमान के लिये (धियः) कर्मों को (हिन्वन्) प्रेरित करता हुवा (अपः) जलों की (रीतिम्) वर्षा को (पवस्व) कर ॥ ऋ० ९।१०८।१० का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥२॥

अथ तृतीयतृचस्य—त्रितऋषिः। पवमानः सोमोदेवता। उष्णिक्छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

२ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१०१३) प्राणाशिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५१७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १र २र ३ २
(१०१४) उप त्रितस्य पाष्योऽ३ऽरभक्त यद्गुहा पदम्।
३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(त्रितस्य) विद्या शिक्षा धर्मविषयों को विस्तृत करने वाले विद्वान् ऋत्विज् के यहां [निरुक्त ४।६] (गुहा) हविर्धान में वर्त्तमान (पाष्योः) पाषाण के समान कठिन दो २ अधिषवण फलकों में (यत् पदम्) जिस सोम पद को (उप अभक्त) अध्वर्यु सामीप्य से सेवित करता है (अध) फिर उस (प्रियम्) प्यारे सोम को (सप्त) सात (धामभिः) धारक गायत्र्यादि छन्दों से प्रशंसित करते हैं ॥ ऋ० ९।१०२।२ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
(१०१५) त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयिम्।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥३॥ [१८]

भावार्थः—(त्रितस्य) विद्वान् की यज्ञ में अनुष्ठित (धारया) सोमरस की धारा से (पृष्ठेषु) पृष्ठसंज्ञक सामों में (त्रीणि) तीन सवन होते हैं।

(अस्य) इस सोम की (योजना) योजनाओं को जो (सुक्रतुः) शोभन कर्म वाला विद्वान् (वि मिमीते) मानपूर्वक अनुष्ठित करता है वह (रयिम्) धन धान्य को (ऐरयत्) प्राप्त करेगा ॥ ऋग्वेद ९ । १०२ । ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थतृचस्य–रेभसूनू काश्यपौ ऋषी । पवमानः सोमोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा–

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(१०१६) पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्योमधुमत्तरः ॥१॥

भावार्थः–(सोम) सोम ! (पवित्रे) दशापवित्र पर (धारया) धारा से (सुतः) अभिषुत किया हुआ (मधुमत्तरः) अतिमाधुर्ययुक्त, (वाजसातये) अन्नोत्पत्तिलाभ के लिये (इन्द्राय) इन्द्र, (विष्णवे) विष्णु इत्यादि नामक (देवेभ्यः) वायुविशेषों के लिये (पवस्व) पवित्रता करवा करता है॥ ऋ० ९ । १०० । ६ के पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०१७) त्वाꣳरिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि ॥२॥

भावार्थः–(पवमान) सोम ! (न) जैसे (जातम्) जातमात्र (वत्सम्) बछड़े को (मातरः) उस की माता गौवें (रिहन्ति) चाटती हैं [ऐसे ही प्रेम से] (अद्रुहः) द्रोहरहित पुरुष के (विधर्मणि) विविध हव्यों के धारक यज्ञ में (धीतयः) ऋत्विज् की अङ्गुलियें (हरिम्) हरे (त्वाम्) तुझ सोम को (पवित्रे) दशापवित्र पर स्पर्श करती हैं ॥ ऋ० ९ । १०० । ७ के पाठान्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

१र २र ३ १र २र
(१०१८) त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चातिजभ्रिषे ।

१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २
प्रतिद्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥३॥ [१९]

भाषार्थः—(महिव्रत) बड़े काम वाले ! (पवमान) सोम ! (त्वम्) तू (द्याम् च) द्युलोक और (पृथिवीं च) पृथिवी लोक का (अति) अत्यन्त (जभ्रिषे) धारण पोषण करता है और (महित्वना) बड़प्पन से (द्रापिम्) कवच को (अति—अमुञ्चथाः) ढकसा लेता है ॥ ऋ० ९ । १०० । ९ में भी ॥३॥

अथ पञ्चमतृचस्य—मन्युर्वासिष्ठऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
(१०१९) इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः
२ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३
सहइन्वन्मदाय । हन्ति रक्षो बाधते
१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१॥

इस की व्याख्या (५४०) में की गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३
(१०२०) अध धारया मध्वा पृचानस्तिरोरोम पवते
१ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अद्रिदुग्धः । इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणोदेवो
३ १ २ ३ १र २र
देवस्य मत्सरोमदाय ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अध) फिर (अद्रिदुग्धः) पत्थरों से अभिषुत (इन्दुः) सोम (मध्वा) मधुर (धारया) धारा से (पृचानः) चिपकता हुआ (रोम) दशापवित्र को (तिरः) तिरछा करके (पवते) द्रोणकलश में जाता और (इन्द्रस्य) वृष्टिकारक वायु का (सख्यम्) हित (जुषाणः) सेवन करता हुवा (देवः) प्रकाशमान (मत्सरः) हृष्टिकारक सोम (देवस्य) उसी वृष्टि कारक देव वायु के (मदाय) वृद्ध्यर्थ (पवते) होम द्वारा जाता है ॥ ऋ० ९ । ९७ । ११ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३
(१०२१) अभि व्रतानि पवते पुनानोदेवोदेवान्त्स्वेन
१ २ ३र ३ १ २ ३ १र २र ३
रसेन पृञ्चन्। इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो
२ ३ १ २ २ २ ३ १ २
दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥ ३ ॥ [२०]

भावार्थः–(धर्माणि) धारक पोषक (व्रतानि) कर्मों को (ऋतुथा) ऋतु के अनुसार (वसानः) धरता हुआ (इन्दुः) सोम (पुनानः) शुद्धि करता हुवा (अभिपवते) सब ओर जाता और (देवः) प्रकाशमान सोम (स्वेन) अपने (रसेन) रस से (देवान्) वायु आदि देवों को (पृञ्चन्) चिपकाता हुआ है। (दश) १० (क्षिपः) अङ्गुलियें (सानो) ऊंचे (अव्ये) ऊन के दशापवित्र पर (अव्यत) उस को पहुंचाती हैं ॥ ऋ० ९। ९७। १२ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ सप्तमे खण्डे प्रथमतृचस्य–वसुश्रुतआत्रेयऋषिः। अग्निर्देवता।
पङ्क्तिश्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा–

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३
(१०२२) आ ते अग्नइधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्। यद्ध स्या ते
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥१॥

इस की व्याख्या (४१९) में होचुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

१ २ २ ३ ३ २ ३ १ २
(१०२३) आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिष-
१ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३
स्पते। सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट्
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तुभ्यं हूयत इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ २ ॥

भावार्थः–(अग्ने) अग्ने ! (शुक्रस) वीर्यवान् वा शुक्र (ते) तेरे (ऋचा) याज्यानुवाक्यादि मन्त्र के साथ (तुभ्यम्) तेरे लिये (हविः) पुरोडाशादि हव्य (आ हूयते) होमा जाता है सो (ज्योतिषस्पते) ज्योति के स्वामिन् ! (हव्यवाट्) हव्य पहुंचने वाले ! (विश्पते) प्रजापालक ! (सुश्चन्द्र) भले प्रकार आह्लादन करने वाले ! (दस्म) दाहक ! अग्ने !(स्तोतृभ्यः) ऋत्विगादि के लिये (इषम्) अन्न (आभर) प्राप्त करा ॥ ऋ० ५ । ६ । ५ का पाठान्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

१र ३ १ २ ३ १ २
(१०२४) ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत
१ २ ३ २ ३ १ २
इषꣳ स्तोतृभ्यआभर ॥ ३ ॥ [२१]

भावार्थः–(सुश्चन्द्र) शोभनाह्लादक ! अग्ने ! (उभे) दोनों (दर्वी) हव्य भरे जुहू आदि पात्रों को (आसनि) मुख में (आश्रीणीषे) पकाता है (उतो) और (नः) हम को (उक्थेषु) यज्ञों में (उत्पुपूर्याः) वलों से भर (शवसस्पते) वलपते ! (स्तोतृभ्यः इषमाभर) ऋत्विगादि के लिये अन्न प्राप्त करा ॥ ऋग्वेद ५ । ६ । ९ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य–नृमेधऋषिः । इन्द्रोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा–

१ २ ३ १ २ २ १ २ ३ २ ३ २
(१०२५) इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३८८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

१र २र ३ १ २ ३ १र २र
(१०२६) त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वꣳ सूर्यमरोचयः ।

३ १२ ३ १२ ३१ २
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ २ ॥

भावार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वम्) तू (अभिभूः) सब को दबा सकने वाला (असि) है (त्वम्) तू ही (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयः) प्रकाश देता है । तू (विश्वकर्मा) जगत्स्रष्टा, (विश्वदेवः) जगत् का देव (महान्) सर्वव्यापी (असि) है ॥ ऋग्वेद ८ । ९८ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २३ १ २ ३ २ १ २ ३२ ३ २
(१०२७) विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वा३ऽ३रगच्छो रोचनं दिवः ।
३ १ २ ३ १ २
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ३ ॥ [२२]

भावार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! तू (ज्योतिषा) अपने ज्योतिःस्वरूप से (विभ्राजन्) जगत् को प्रकाश पहुंचाता हुवा (दिवः) द्युलोक के (रोचनम्) प्रकाशक (स्वः) अपने आनन्दस्वरूप को (अगच्छः) प्राप्त है (देवाः) विद्वान् लोग (ते) तेरी (सख्याय) मित्रता के लिये (येमिरे) यत्न करते हैं ॥ ऋग्वेद ८ । ९८ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—गोतमोराहूगण ऋषिः । इन्द्रोदेवता ।
अनुष्टुप्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०२८) असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवागहि ।
१ २ ३ २उ ३ २३ २ ३१ २
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियꣳ रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥१॥

इस की व्याख्या (३४७) में हो गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०२९) आतिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥२॥

भाषार्थः—(वृत्रहन्) हे शत्रुविनाशक ! (ते) आप के लिये (ब्रह्मणा) चढ़ाई के समयोचित ईश्वरप्रार्थनाविषयक मन्त्र से (हरी) दो घोड़े (युक्ता) जोड़े हैं। उस घोड़े जुड़े (रथम्) रथ में (आतिष्ठ) बैठिये। (ग्रावा) सोमाभिषव करने का पत्थर (ते) आप के (मनः) हृदय को (वग्नुना) शब्द से [निघं० १ । ११] (अर्वाचीनम्) नवीन (सुकृणोतु) अच्छे प्रकार करे ॥ ऋग्वेद १ । ८४ । ३ तथा यजुः ८ । ३३ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १र २र ३ १ २

(१०३०) इन्द्रमिद्धरी वहतोप्रतिधृष्टशवसम् ।

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २

ऋषीणाᳬं सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥३॥ [२३]

भाषार्थः—(अप्रतिधृष्टशवसम्) किसी से न दबने वाले बलयुक्त (इन्द्रम्) राजा को (इत्) ही (हरी) उक्त अश्व (वहतः) ले चलते हैं। (ऋषीणाम्) द्रष्टाओं की स्तुतियों (च) और (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (यज्ञम्) यज्ञ को भी इन्द्र ही (उप) प्राप्त होता है। ऋ० १ । ८४ । २ यजुः ८ । ३४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

इति षष्ठाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥

इति तृतीयः प्रपाठकः

यह

कश्यपवंशावतंस श्रीमान् पं० हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र

परीक्षितगढ़ (ज़िला—मेरठ) निवासी

तुलसीराम स्वामिकृत

उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में छठा अध्याय समाप्त हुवा ॥

॥ ६ ॥

ओ३म्

अथ सप्तमोऽध्यायः

अथ चतुर्थः प्रपाठकः

तत्र

प्रथमखण्डे प्रथमतृचस्य सिकतानिवारी ऋषिगणः, सोमो देवता ।
जगती छन्दः । तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१०३१) ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं, पिता देवानां
३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
जनिता विभूवसुः । दधाति रत्नꣳ स्वधयोरपीच्यं,
३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥ १ ॥

भावार्थः—(यज्ञस्य) यज्ञ की (ज्योतिः) ज्योति, (देवानां पिता) वायु आदि देवों का पालक, (जनिता) उन को संस्कारापेक्षया जन्म देने वाला, (विभूवसुः) बहुत धनवान्, (मदिन्तमः) अतिशय हर्षदायक, (मत्सरः) हर्षयुक्त, (इन्द्रियः) इन्द्र से सेवित (रसः) सोमरस (प्रियं मधु) प्यारे माधुर्य को (पवते) टपकाता और (स्वधयोः) द्युलोक और पृथवी में (अपीच्यम्) गूढ़ (रत्नम्) सारवस्तु को (दधाति) याज्ञिकों को धारण कराता है॥ सोम को उत्पादक इस लिये कहा है कि वह होम में हुत होकर मनु के लेखानुसार वृष्टि, अन्न और प्रजा को उत्पन्न करता है । मनु का श्लोक देखो, अ० ३ । ७६ । १० में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २
(१०३२) अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति, पतिर्दिवः

३ १ २   ३ २   १ २ ३ २ ३   १ २
शतधारो विचक्षणः। हरिर्मित्रस्य सदनेषु
३ १   २ ३   १   २ ३   १ २
सीदति, मर्मृजानोविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥ २ ॥

भावार्थः—(वाजी) वेग वा बल वाला, (विचक्षणः) दृष्टि को प्रसन्न करने वाला, (हरिः) हरा, (वृषा) वृष्टि करने का हेतु, (सिन्धुभिः अविभिः) टपकाने के साधन दशापवित्रों से (मर्मृजानः) शोधा जाता हुवा (अभिक्रन्दन्) शब्द करता हुवा (कलशम्) द्रोणकलश में (अर्षति) जाता और (शतधारः) फिर होम से अनेक धारों वाला होकर (मित्रस्य) सूर्य के (सदनेषु) द्युलोकों में (सीदति) उपस्थित होता है। तब (दिवः) द्युलोक का (पतिः) पालक होता है ॥ ऋ० ९ । ८६ । ११ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३   १   २ ३   १ २   ३   १ २ ३ १
(१०३३) अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्ष, स्यग्रे वाचो
२ ३ १र   २र   २ ३   १ २
अग्रियो गोषु गच्छसि। अग्रे वाजस्य भजसे
३ १र २र   ३ २   ३ १ २
महद्धनꣳ स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे॥३॥ [१]

भावार्थः—सोम तू (सिन्धूनाम्) बादल जलों के (अग्रे) आगे (पवमानः) शोधा हुवा " (अर्षसि) जाता है अर्थात् वृष्टि से जल उत्पन्न करने आहुति द्वारा अन्तरिक्ष में जाता है ॥" यही अर्थ सायणाचार्य ने किया है । तथा (वाचः) वाणी का भी (अग्रियः) मुखिया होता हुवा और (गोषु) किरणों में उन के (अग्रे) आगे जाता है । तथा (वाजस्य) बल के उपयोगी (महत् धनम्) उत्तम धन का (भजसे) सेवन कराता है तथा (स्वायुधः) भले खिलवहों वाला (सोतृभिः) ऋत्विजों द्वारा (सूयसे) अभिषुत किया जाता है ॥

तात्पर्य यह है कि सोम होम से वर्षा और पान से बल सुस्वर वाणी और धन का उपयोगी है ॥ ऋ० ९ । ८६ । १२ के पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥३॥

अथ द्वितीय तृचस्य—कश्यपऋषिः । सोमोदेवता। गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
(१०३४) असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
३ १ २ ३ १र २र
शुक्रासो वीरयाशवः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४८२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०३५) शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः
१ २ ३ १ २ ३ २
पवन्ते वारे अव्यये ॥ २ ॥

भावार्थः—(ऋतायुभिः) यज्ञ चाहने वाले ऋत्विजों से (शुम्भमानाः) शोभित किये जाने वाले और (गभस्त्योः) अङ्गुलियों में (मृज्यमानाः) शोधे जाते हुवे सोम (अव्यये) ऊनी (वारे) बालों से बने दशापवित्र पर (पवन्ते) स्वच्छ किये जाते हैं ॥ ऋ० ९ । ६४ । ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१०३६) ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा ।
१ २ ३ १र २र
पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ३ ॥ [२]

भावार्थः—(ते सोमाः) वे सोम (दाशुषे) इस सूक्त की प्रथम ऋचा के अनुकूल यज्ञानुष्ठानी के लिये (विश्वा) सब (दिव्यानि, पार्थिवा, आन्तरिक्ष्या) तीनों लोकों के (वसु) गवाश्वादि धन (पवन्ताम्) सर्वतः वर्षावें ॥ ऋग्वेद ९ । ६४ । ६ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयदशर्चसूक्तस्य—मेधातिथिर्ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(१०३७) पवस्व देववीरति पवित्रꣳ सोम रꣳह्या ।

१२ ३ १र २र
इन्द्रमिन्दो वृषाविश ॥ १ ॥

भावार्थः—(इन्दो) गीले! (सोम) सोम! (देववीः) देवों का चाहा (वृषा) वृष्टिकारक तू (रंह्या) वेग से (पवित्रम्) पवित्रता के लिये (अति पवस्व) वर्ष और (इन्द्रम्) वृष्टिकारक वायु में (आविश) प्रवेश कर ॥

अर्थात् गीला सोम अग्नि में होम कर वृष्टि चाहने वाले यजमान को वृष्टिकारक वायु में प्रविष्ट कराना चाहिये ॥ ऋ० ९।२।१ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
(१०३८) आवच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः ।
१र २र ३ २
आ योनिं धर्णसिः सदः ॥ २ ॥

भावार्थः—(इन्दो) सोम ! (वृषा) वृष्टिकारक इसी से (द्युम्नवत्तमः) अत्यन्त धन धान्यवान् और इसी से (धर्णसिः) विश्व का धारक तू (महि) बहुत (प्सरः) जल और (अन्धः) अन्न को (आवच्यस्व) हमें प्राप्त करा और तू (योनिम्) अपने स्थान आकाश में (आसदः) विराज ॥

भावार्थ—यह है कि यज्ञ में प्रयुक्त आहुति को प्राप्त हुवा सोम आकाशस्थ होकर धन धान्यादि की समृद्धिकारक हो जाता है ऋ० ९।२।२ में भी॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०३९) अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः ।
३ १ २ ३ १ २
अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥ ३ ॥

भावार्थः—जिस (सुतस्य) अभिषुत, (वेधसः) वृष्ट्यादि के विधाता, (सोमस्य) सोम की (धारा) धार (प्रियं मधु) प्यारे मधुर रस को (अधुक्षत) दुहती है । वह (सुक्रतुः) सुकर्मा सोम (अपः) मेघस्थ जलों को (वसिष्ट) आच्छादित करे ॥ ऋ० ९।२।३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ १ २
(१०४०) महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।

१र २र ३ १ २
यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥

भावार्थः—सोम ! तू (यत्) जब (गोभिः) किरणों के साथ (वासयिष्यसे) आच्छादन करेगा तब (महान्तम्) गुणों में बड़े (त्वा) तुझ को (अनु) लक्ष्य करके (सिन्धवः) बहने वाली (महीः) बड़ी (आपः) वर्षायें (अर्षन्ति) आवेंगी ॥

अर्थात् सोमयाग से पर्याप्त वर्षा होती है ॥ ऋ० ९ । २ । ४ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ २
(१०४१) समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
१ २ ३१२ ३ २
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥

भावार्थः—(समुद्रः) रसभरा (विष्टम्भः) आधार और इसी से (दिवः धरुणः द्युलोक का धारक (अस्मयुः) हमारा हितकामुक (सोमः) सोम (अप्सु) वसतीवरीनामक जलों में (मामृजे) दशापवित्र पर अभिषिक्त किया जाता है ॥ ऋ० ९ । २ । ५ में भी ॥५॥

अथ षष्ठी—

१ २ ३ २ ३१२ ३२ ३१र २र ३ २
(१०४२) अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।
१ २र
सꣳ सूर्येण दिद्युते ॥ ६ ॥

इस की व्याख्या (४९७) में हो चुकी है ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी—

२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
(१०४३) गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
२ ३ १२ ३ १ २
याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(इन्दो) सोम ! (ते) तेरे किये (ओजसा) बल के साथ वे (अपस्युवः) कर्म=पुरुषार्थ चाहने वाली (गिरः) वाणियें (ममृज्यन्ते) शोधी जाती हैं (याभिः) जिन वाणियों सहित (मदाय) हर्ष के लिये (शुम्भसे) शुद्ध किया जाता है ॥ तात्पर्य यह है कि सोमपान से ओज बल, हृष्टि, पुष्टि और वाणी सुधरती है एतदर्थ इस का अभिषव करना चाहिये ऋ० ९। २। ७ में भी ॥ ७ ॥

अथाष्टमी—

२ ३ १२३ १ २ ३१२
(१०४४) तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे ।
२३ १ २ ३२
तव प्रशस्तये महे ॥ ८ ॥

भावार्थः—हम यजमान लोग (लोककृत्नुम्) दृष्टि के सहायक (तम्) उस पूर्वोक्त वाणी सुधारने वाले बलपराक्रमादिवर्धक (त्वा) तुझ सोम को (उ) निश्चय (तव) तुझ सोम की (महे प्रशस्तये) बड़ी प्रशंसा के लिये तथा (घृष्वये) शत्रुओं को रगड़ डालने में समर्थ (मदाय) हृष्टि पुष्टि के लिये (ईमहे) चाहते हैं ॥ अर्थात् मनुष्यों को दृष्टि वाणी बल शत्रुनाश इत्यादि प्रयोजनों के लिये सोम रस की इच्छा करनी चाहिये ॥ ऋ ९। २। ८ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ८ ॥

अथ नवमी—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
(१०४५) गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत ।
३ २ ३ १ २ ३ २
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ ९ ॥

भावार्थः—(इन्दो) सोम ! (गोषाः) गौ वा इन्द्रियों का दाता (अश्वसाः) घोड़े वा प्राणों का दाता (वाजसाः) अन्न वा बल का दाता (नृषाः) वीर पुत्रादि का दाता (उत) और (यज्ञस्य) यज्ञ का (पूर्व्यः) सनातन (आत्मा) आत्मा [रूह] (असि) है ॥ ऋ० ९। २। ९ में भी ॥ ९ ॥

अथ दशमी—

३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
(१०४६) अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्वधारया ।

३ १ २ ३ १ २
पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥ १० ॥ [३]

भावार्थः—(इन्दो) सोम ! (इन्द्रियम्) इन्द्र से सेवित वा वीर्यवर्धक रस को (मधोः) मधुराऽमृत की (धारया) धार से (वृष्टिमान् पर्जन्य इव) वर्षा वाले बादल सा (अस्मभ्यम्) हम यजमानों के लिये (पवस्व) वर्षा ॥ ऋ० ९ । २ । १० में भी ॥ १० ॥

इति सप्तमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ तृतीये खण्डे प्रथमस्य दशर्चसूक्तस्य—हिरण्यस्तूप ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता १ । ३ । ४ । १० गायत्री २ । ५ । ८ । ९ निचृद्गायत्री ६ । ७ विराड् गायत्री च छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१०४७) सना च सोम जेषि च पवमान महिश्रवः ।
१ २ ३ १ २
अथानो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥

भावार्थः—(महिश्रवः) हे महाकीर्त्ते ! (पवमान) पवित्र ! (सोम) वा परमेश्वर ! (सन च) धनादि दान का अनुग्रह करो (जेषि च) और विजय करो (अथ) और (नः) हम को (श्रेयसः) श्रेष्ठ (कृधि) करो ॥ सोम के पक्ष में—दानादि के अनुग्रहादि की संगति, वैद्यक के वातपित्तादि के अनुग्रहकथन के समान जानिये ॥ यह पूरा सूक्त ऋग्वेद ९ । ४ । १—१० में दशों ऋचाओं का आया है केवल ८ वीं में "वाजिन्=रयिम्" इतना पाठभेद है ॥१॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २
(१०४८) सना ज्योतिः सना स्वाऽ३ऽर्विश्वा च सोम सौभगा ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥

भावार्थः—(सोम) वा परमेश्वर ! (ज्योतिः) प्रकाश (सन) देओ (स्वः) सुख (सन) देओ (च) और (विश्वा) सब (सौभगा) सौभाग्य देओ । (अथ०) इत्यादि पूर्वमन्त्र के तुल्यार्थ जानिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(१०४९) सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि ।
१ २ ३
अथानो० ॥ ३ ॥

भावार्थः—(सोम) वा परमेश्वर ! (दक्षम्) बल (उत) और (क्रतुम्) कर्म=पुरुषार्थ (सन) दीजिये तथा (मृधः) शत्रुओं का (अपजहि) नाश कीजिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०५०) पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे ।
१ २ ३
अथानो० ॥ ४ ॥

भावार्थः—(पवीतारः) हे सोम के अभिषुत करने वालो ! वा परमेश्वर के उपासको ! तुम (इन्द्राय) वायु विशेष, वा परमेश्वर के लिये (पातवे) शोषणार्थ वा स्वीकारार्थ (सोमम्) सोम वा कोमल हृदय को (पुनीतन) शुद्ध करो ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१०५१) त्वं सूर्ये न आभज तव क्रत्वा तवोतिभिः ।
१ २ ३
अथानो० ॥ ५ ॥

भावार्थः—सोम ! वा परमेश्वर ! (त्वम्) तू (तव) तेरी (क्रत्वा) स्वाभाविकी क्रिया से तथा (तव) तेरी की हुई (ऊतिभिः) रक्षाओं से (नः) हम को (सूर्ये) कर्मण्यलोक में (आभज) पहुंचा दे ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०५२) तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम् ।
१ २ ३
अथानो० ॥ ६ ॥

भावार्थः—सोम ! वा परमेश्वर ! (तव क्रत्वा) तेरी स्वाभाविकी क्रिया से तथा (तव ऊतिभिः) तेरी की हुई रक्षाओं से हम (ज्योक्) चिरकाल तक (सूर्यम्) कर्मव्यलोक को (पश्येम) देखें ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी—

३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१०५३) अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसꣳ रयिम् ।
१ २ ३
अथानो॰ ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे (स्वायुध) भले धर्मानुकूल युद्ध के साधनभूत ! (सोम) सोम ! वा परमेश्वर ! (द्विबर्हसम्) दोनों=द्युलोक और पृथिवीलोक स्थानों में चढ़ा बढ़ा (रयिम्) धनैश्वर्य (अभ्यर्ष) प्राप्त करा ॥ ७ ॥

अथाऽष्टमी—

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१०५४) अभ्य३ऽर्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः ।
१ २ ३
अथानो॰ ॥ ८ ॥

भावार्थः—(वाजिन्) बलदायक सोम ! (अनपच्युतः) अन्यों से न दबने वाला और (सासहिः) अन्यों को स्वयं दबाने में समर्थ तू (समत्सु) संग्रामों में (अभ्यर्ष) सर्वतः प्रभाव जमा ॥

अथवा—(वाजिन्) अनन्तबल ! परमेश्वर ! (अनपच्युतः) अटल अवि-नाशी (सासहिः) दुष्टदमन ! (समत्सु) कामादि शत्रुओं के साथ संग्रामों में हमारी (अभ्यर्ष) सहायता को प्राप्त हूजिये ॥ ८ ॥

अथ नवमी—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०५५) त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि ।
१ २ ३
अथानो॰ ॥ ९ ॥

भावार्थः—(पवमान) पावनस्वरूप ! सोम वा परमेश्वर ! (विधर्मणि)

कर्मयज्ञ वा योगयज्ञ में (त्वाम्) तुझ को (यज्ञैः) आहुतियों वा स्तुतियों से (अवीवृधन्) यजमान बढ़ाते वा उपासक स्तुत करते हैं ॥ ९ ॥

अथ दशमी—

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१०५६) रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमाभर ।
१ २ ३ १ २
अथानो वस्यसस्कृधि ॥ १० ॥ [४]

भाषार्थः—(इन्दो) सोम ! वा परमेश्वर ! (चित्रम्) अनेक प्रकार के (अश्विनम्) प्राण को हित और (विश्वायुम्) पूर्णायुरूप (रयिम्) धन (आभर) प्राप्त कराओ ॥ १० ॥

तरत्स मन्दीति चतुर्ऋचस्य द्वितीयसूक्तस्य उचथ्य ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१०५७) तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
२ ३ २ ३ १ २
तरत्समन्दी धावति ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५००) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०५८) उत्सा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः ॥
२ ३ २ ३ १ २
तरत्स मन्दी धावति ॥ २ ॥

भाषार्थः—(वसूनाम्) धनों को (उत्सा) देने वाली (देवी) प्रकाशमाना [सोमधारा] (मर्तस्य) मनुष्य की (अवसः) रक्षा करना (वेद) जानती है (सः) वह (मन्दी) हृष्टिपुष्टिकारक सोम (तरत्) त्वरा करता हुवा (धावति) गमन करता है ॥ ऋ० ९ । ९८ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१०५९) ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरासहस्राणि दद्महे ।

२ ३ २ ३ १ २
तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥

भावार्थः—(श्वस्त्रयोः) चलने वाली (पुरुषन्त्योः) पुरुषार्थवती दो सोमधाराओं के (सहस्राणि) असंख्य समूहों को (आदद्महे) हम ऋत्विग् लोग ग्रहण करते हैं। तरत्० पूर्ववत् ऋ० ९। ९८। ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

१२ २२ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०६०) आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे ।

२ ३ २ २ १ २
तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ [५]

भावार्थः—(ययोः) जिन दो सोम की उक्त धाराओं के (त्रिंशतं सहस्राणि च) ३०००० संख्योपलक्षित (तना) विस्तृत सुखों को (आ—दद्महे) हम ग्रहण करते हैं "वह त्वरा करता सोम गमन करता है" ॥ यह पूर्ववत् ॥ ऋ० ९। ९८। ४ में भी ॥ ४ ॥

एते सोमा इति तृचस्य तृतीयसूक्तस्य—जमदग्निर्ऋषिः। सोमोदेवता। गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३१२ २२ ३ २२ ३२ ३ २
(१०६१) एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे ।

३ १ २ ३ १२
मदिन्तमस्य धारया ॥ १ ॥

भावार्थः—(मदिन्तमस्य) अत्यन्त हृष्टिकारक सोम की (धारया) धारा से (एते) ये (सोमाः) सोमरस (गृणानाः) प्रशंसित किये जाते हुवे (महे) बड़े (शवसे) बल के लिये (असृक्षत) अग्नि में छोड़े जाते हैं ॥ ऋ० ९। ६२। २२ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ ३ २ १ २
(१०६२) अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि ।

३ १ २ ३ १ २
सनद्वाजः परिस्रव ॥ २ ॥

भावार्थः—(सनद्वाजः) अन्नोत्पादन से अन्नदाता (पुनानः) शुद्धिकारक सोम (नृम्णा) धन के समान अतिप्रिय (गव्यानि) सूर्यकिरणगत भावों में (अभिअर्षसि) व्यापता और (परिस्रव) वर्षता है ॥ ऋ० ९।६२।२३ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

३२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०६३) उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः ।

३ २ १ २
गृणानो जमदग्निना ॥ ३ ॥

भावार्थः—(उत) तथा च (जमदग्निना) आहिताग्नि पुरुष से (गृणानः) प्रशस्यमान सोम (नः) हम याज्ञिकों के लिये (गोमतीः, परिष्टुभः, विश्वाः, इषः) इन्द्रियों को बलदायक, सर्वतः प्रशंसनीय, सब, अन्नों को (अर्ष) वृष्टि द्वारा प्राप्त कराता है ॥ ऋ० ९। ६२। २४ में भी ॥ ३ ॥

इमं स्तोममिति तृतीयखण्डे प्रथमतृचस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः । तत्र प्रथमा—

३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०६४) इमꣳ स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव संमहेमा

३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १२
मनीषया । भद्राहि नः प्रमतिरस्य सꣳस-

२र ३ १र २र ३१र २र
द्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (६६) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
(१०६५) भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते, चितयन्तः

१ २ ३ २ ३ १ २ ३१
पर्वणा पर्वणा वयम् । जीवातवे प्रतराꣳ

२ ३ १ २र ३ १र २र ३१र २र
साधयाधियो,ग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २ ॥

भावार्थः—(अग्ने) यज्ञ के अग्रणी ! (वयम्) हम याज्ञिक लोग (ते) तेरे लिये (इध्मम्) सुलगाने की २१ द्रव्यों की समिधाओं के समूह को (भराम) बनावें तथा (हवींषि) चरुपुरोडाशादिनात्मक अन्नों को (कृणवाम) बनावें और (पर्वणा पर्वणा) प्रति पर्वदिन=अमावस पूर्णमासी को किये दर्श पूर्णमासों से (चितयन्तः) सावधान हुवे हम (तव) तेरी (सख्ये) अनुकूलता में (मा) न (रिषाम) दुःख पावें॥ ऋ० १। ९४। ४ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १
(१०६६) शकेम त्वा समिधᳲ साधया धियस्त्वे देवा हवि-
२ ३ १ २ १ २ ३ १र २र ३ २ १र
रदन्त्याहुतम्। त्वमादित्याँ आवह तान्ह्यु३ऽश्म-
२र ३ १र २र ३ १र ४र
स्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥ [७]

भावार्थः—(अग्ने) अग्ने! (त्वाम्) तुझ को (समिधम्) प्रदीप्त करने को (शकेम) हम समर्थ हों। तू (धियः) हमारे दर्शपूर्णमासादि नित्य नैमित्तिक कर्मों को (साधय) सिद्ध कर। क्योंकि अग्नि से ही ये सब कर्म सधते हैं। (त्वे) अग्नि में (आहुतम्) होम किये (हविः) हव्य को (देवाः) वायु आदि देवता (अदन्ति) खाते हैं और (त्वम्) अग्नि (आदित्यान्) देवों को (आवह) हमारे यज्ञ में बुला। क्योंकि अग्नि देवदूत है। (तान्) उन देवों को (हि) निश्चय (उश्मसि) हम चाहते हैं। आगे उक्त प्रकार जानिये ॥ ऋ० १। ९४। ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीय.तृतीयस्य—वसिष्ठ ऋषिः। आदित्योदेवता। गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०६७) प्रति वाᳲ सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्।
३ १ २ ३ १ २
अर्यमणᳲ रिशादसम् ॥ १ ॥

भावार्थः—मैं यजमान (मित्रम्) प्राण और (वरुणम्) अपान इन (वाम्) दोनों को (प्रति) प्रत्येक को जो (रिशादसम्) शत्रुओं को दबा

सकने वाले और (अर्यमणम्) न्याय के समर्थक हैं इन को (सूरे) सूर्य (उदिते) उदय होते ही प्रतिदिन प्रातःकाल (गृणीषे) स्तुत करता हूं ॥

प्राण और अपान के संयम से मनुष्य शत्रुओं से नहीं दबता, उन्हें दबा सकता है, अन्याय को रोक कर न्यायधर्म का प्रचार कर सक्ता है। इस लिये उस को नित्य उठते ही प्रातःकाल शौचादि आवश्यक कार्य से निवृत होकर प्राणाऽपान के संयम का चिन्तवन करना चाहिये। जैसा कि ऋगवेद ७। ४१। १ में भी लिखा है कि "प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे। प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना०" इत्यादि ॥ ऋ० ७। ६६। ७ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ २ ३ १ ३१२३२ ३ १२
(१०६८) राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे।
३१ १ २र ३१ २
इयं विप्रा मेधसातये ॥ २ ॥

भावार्थः—(विप्राः) हे बुद्धिमानो ! (इयं मतिः) यह विचारणा (हिरण्यया राया) सुवर्णादि धन सहित (अवृकाय शवसे) अहिंसा बल और (मेधसातये) यज्ञलाभार्थ " होवे " ॥ ऋ० ७। ६६। ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१०६९) ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह।
३ ३क २र
इषꣳ स्वश्च धीमहि ॥ ३ ॥ [८]

भावार्थः—(देव) प्रकाशमान ! (मित्र) प्राण ! हम (ते) तेरे (स्याम) होवें (वरुण) अपान ! (ते) हम तेरे होवें। तेरे संयम होने पर हम (सूरिभिः) बुद्धिमानों (सह) सहित (इषम्) अन्न (च) और (स्वः) सुख का (धीमहि) धारण करें ॥ ऋ० ७। ६६। ९ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीय तृचस्य—त्रिशोक ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २उ ३ २३ २३ २३ १२ ३१ २र
(१०७०) भिन्धि विश्वा अप द्विषः परिबाधो जही मृधः।

१ २ ३ १र २र
वसु स्पार्हं तदाभर ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१३४) में होचुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३१र २र३ २ ३ १ २
(१०७१) यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
१ २ ३ १र २र
वसु स्पार्हं तदाभर ॥ २ ॥

भावार्थः—(यस्य ते) जिस आप के (दत्तस्य) दिये हुवे (भूरेः) बहुत धन को (विश्वम्) जगत् (विदेति) जानता है (तत्) वह (स्पार्हम्) अभिलषणीय (वसु) धन (आभर) हमें दीजिये॥ हे परमेश्वर ! यह अध्याहृत है॥ ऋ० ८ । ४५ । ४२ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
(१०७२) यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।
१ २ ३ १र २र
वसु स्पार्हं तदाभर ॥ ३ ॥ [९]

इस की व्याख्या (२०७) में हो चुकी है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थतृचस्य—श्यावाश्व ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २३ १ २
(१०७३) यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु ।
१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों (हि) निश्चय (यज्ञस्य) ज्योतिष्टोमादि यज्ञ के (ऋत्विजा) ऋतु ऋतु में यजनीय (स्थः) हो । अतः (वाजेषु) प्राप्तव्य बलों और (कर्मसु) यज्ञ क्रियाओं में (सस्नी) न्हाये हुवे=चतुर (तस्य) उस हमारे किये यज्ञ को (बोधतम्) जानो ॥

यहां श्लेषालङ्कार से सूर्य और अग्नि के दृष्टान्त से सूर्यतुल्य प्रकाश गुरु और अग्नितुल्य प्रकाश्य शिष्य भी समझने योग्य हैं॥ ऋ० ८।३८।१ में भी॥१॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

(१०७४) तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता।

१ २ ३ १ २

इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥ २॥

भावार्थः—(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और हे अग्ने! तुम (तोशासा) शत्रुहिंसक, (रथयावाना) रमणीयगमन वाले (वृत्रहणा) वृत्र के घातक और (अपराजिता) किसी अन्य से न हारने वाले होते हुवे (तस्य बोधतम्) उस यज्ञ को जानो ऋ० ८। ३८। २ में भी॥ २॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

(१०७५) इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः।

१ २ ३ १ २

इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥३॥ [१०]

भावार्थः—(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र! और अग्ने! (वाम्) तुम्हारे लिये (अद्रिभिः) अभिषवग्रावाओं से (मदिरम्) हृष्टिपुष्टिकारक (मधु) मधुर सोमरस को (नरः) ऋत्विज् लोग (अधुक्षन्) पूर्ण करते हैं (तस्य बोधतम्) उसे जानो॥ ऋ० ८। ३८। ३ में भी॥ ३॥

उक्तं प्रातःसवनन्तु, इदानीं माध्यंदिनं सवनमुच्यते इति विवरणकारः॥

अथ चतुर्थखण्डे प्रथमतृचस्य—कश्यप ऋषिः। सोमोदेवता। गायत्री छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(१०७६) इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

अर्कस्य योनिमासदम्॥ १॥

इस की व्याख्या (४७२) में हो चुकी है॥ १॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

(१०७७) तन्त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ।

१ २ ३ १ २

सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २ ॥

भावार्थः—(तम्) उस (त्वा) तुझ (धर्णसिम्) धारक सोम को (वचोविदः) वेदज्ञ (विप्राः) मेधावी लोग (परिष्कृण्वन्ति) प्रशंसित करते हैं और उन से सुन कर (आयवः) अन्य मनुष्य (त्वा) तुझ को (संमृजन्ति) शोधते हैं ॥ ऋ० ९ । ६४ । २३ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

(१०७८) रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे ।

१ २ ३ १ २

पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥ [११]

भावार्थः—(कवे) बुद्धिवर्धक ! सोम ! (पवमानस्य) शुद्धिकारक (ते) तेरे (रसम्) रस को (मित्रः, वरुणः, अर्यमा, मरुतः) मित्र, वरुण, अर्यमा और मरुत् देव (पिबन्तु) पीवें ॥ ऋ० ९ । ६४ । २४ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयप्रगाथस्य—वसिष्ठ ऋषिः । सोमोदेवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १र २र

(१०७९) मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३क २र

रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाऽभ्यर्षसि ॥१॥

इस की व्याख्या (५१७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१०८०) पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने ।

३ १ २ ३२२ २२ ३ १ २
देवानाᳫं सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि॥
॥ २ ॥ [१२]

भावार्थः—(वृषा) वृष्टि करने में समर्थ (पुनानः) अभिषुत किया जाता हुआ (पवमानः) सोम (उ) तर्क में (अव्यये) भेड़ के (वारे) ऊन से बने दशापवित्र और (वने) काष्ठमय द्रोणकलश में (अचिक्रदत्) शब्द करता है। अब प्रत्यक्षवाद है कि—(पवमान सोम) पवित्रतासम्पादक सोम! तू (गोभिः) सूर्यकिरणों से (अञ्जानः) मिलाया जाता हुवा (देवानां निष्कृतम्) वायु आदि देवों के संस्कृत स्थान आकाश को (अर्षसि) जाता है॥ ऋ० ९। १०७। २१ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये॥ २॥

अथ तृतीयतृचस्य—अमहीयुर्ऋषिः। सोमोदेवता। गायत्री छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

२ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१०८१) एतमुत्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम्।
१ २ ३ १ २
समादित्येभिरख्यत ॥ १ ॥

भावार्थः—(त्यम्) पूर्वोक्त (सिन्धुमातरम्) समुद्र के पुत्र (एतम्) इस सोम को (दश क्षिपः) १० अङ्गुलियें (मृजन्ति) शोधती हैं और यह (आदित्येभिः) सूर्य किरणों से (सम्-अख्यत) मिल जाता है॥ ऋ० ९।६१।७ में भी॥१॥

अथ द्वितीया—

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
(१०८२) समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ।
१ २र ३ १ २
सᳫं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥

भावार्थः—(पवित्रे) दशापवित्र पर (सुतः) अभिषुत सोम (इन्द्रेण वायुना) इन्द्रनामक वायुविशेष से (आ) चारों ओर (सम्—एति) मिल जाता है (उत) और (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों से (सम्) मिल जाता है॥ ऋ० ९। ६१। ८ में भी॥ २॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१०८३) स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्।

१ २ ३ १ २र

चारुर्मित्रे वरुणे च ॥ ३ ॥ [१३]

भावार्थः—(सः) वह (मधुमान्) मधुर (चारुः) रुचिर सोम (भगाय) भग, (पूष्णे) पूषा, (मित्रे) मित्र और (वरुणे) वरुण नामक (वायवे) वायुविशेष के लिये (च) और (नः) हमारे लिये (पवस्व) वर्षे ॥ ऋ० ९ । ६१ । ९ में भी ॥ ३ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

" इदानींपृष्ठानि–रेवतीषु वारवन्तीयं पृष्ठं भवति " इति विवरणकारः ॥ अथ पञ्चमे खण्डे रेवतीर्न इति प्रथमतृचस्य=शुनःशेप ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३र २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१०८४) रेवतीर्नः सधमादइन्द्रे सन्तु तुविवाजाः।

३ २ ३ २ ३ १ २

क्षमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१५३) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

(१०८५) आ घ त्वावान्त्मना युक्तः स्तोतृभ्योधृष्णवीयानः।

३ २उ ३ ३र २र

ऋणोरक्षन्न चक्र्योः ॥ २ ॥

भावार्थः-(धृष्णो) हे धर्षणक्षम ! परमात्मन् ! (त्वावान्) आप सा [न त्वावां अन्यः इत्यादि श्रुत्यन्तर के उपरोध से आप सा अन्य कोई नहीं। अतः आप ही] (ईयानः) प्रार्थना किये हुवे (त्मना) चेतन स्वरूप से (युक्तः) युक्त(स्तोतृभ्यः) हम उपासकों के लिये (घ) अवश्य (आ ऋणोः) सर्वतः सब कुछ देवें (न) जैसे (चक्र्योः) रथ के दोनों पहियों की (अक्षम्) नाभि सब का केन्द्र होकर सब ओरों मत्परों का उपकार करती है। ऐसे ही आप भी

सब प्रार्थियों की प्रार्थनाओं के केन्द्रभूत हैं । सब की सुनते हैं ॥ ऋ० १ । ३० । १४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१र २र ३ १र २र ३ २
(१०८६) आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
३ २उ ३ १र २र
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥ [१४]

भावार्थः—(यत्) जो (दुवः) धन है सो (शतक्रतो) हे अनन्तकर्मा जगत्कर्त्ता ! (शचीभिः) बुद्धियों सहित (जरितॄणाम्) स्तोताओं के लिये (आ—ऋणोः) प्राप्त कराइये और उन की (कामम्) इच्छा (आ) पूर्ण कीजिये ॥ ऋ० १ । ३० । १५ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०८७) सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
२ ३ २ ३ २
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१६०) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०८८) उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥

भावार्थः—प्रकरण से इन्द्र (नः) हमारे (सवना) प्रातःसवनादि तीनों सवनों को (आगहि) प्राप्त होता और (सोमपाः) सोम पीने वाला इन्द्र (सोमस्य) सोमरस का (पिब) पान करता है और (रेवतः) उस धनवान् इन्द्र का (मदः) हर्ष (गोदाः) वृष्टि से गौ आदि का दाता है ॥ ऋ० १ । ४ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१०८९) अधा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्।
२ ३ १ २ ३ १ २
मा नो अति ख्य आगहि ॥ ३ ॥ [१५]

भावार्थः—(अध) फिर हे इन्द्र ! (ते) तेरे (अन्तमानाम्) समीपतरवर्ती (सुमतीनाम्) उत्तम बुद्धि वाले पुरुषों के मध्य में स्थित होकर (विद्याम) तेरे माहात्म्य को हम जानें। और तू (नः) हम को (मा) मत (अति—ख्यः) प्रत्याख्यान कर किन्तु (आगहि) प्राप्त हो ॥

इस की अलङ्कारोक्ति विचारणीय है ॥ ऋ० १। ४। ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीय सूक्तस्य—मान्धाता ऋषिः। इन्द्रोदेवता। महापङ्क्तिश्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१०९०) उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २
महान्तं त्वा महीनाꣳ सम्राजं चर्षणीनाम् ॥
३ १र २र ३ १र २र
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१॥

इस की व्याख्या (३७९) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१०९१) दीर्घꣳ ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
पूर्वेण मघवन्पदा वयामजो यथा यमः ॥
३ १र २र ३ १र २र
देवीजनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥२॥

भावार्थः—(मन्तुमः) हे ज्ञानिन् ! (मघवन्) इन्द्र ! परमेश्वर ! (यथा) जैसे (दीर्घम्) बड़े भारी मदान्ध हाथी के भी थामने वाले (अङ्कुशम्) अङ्कुश

का धारण करते हैं वैसे आप (शक्तिम्) सब जगत् को थांभने वाली शक्ति को (बिभर्षि) धारते हैं और (यथा) जैसे (अजः) बकरा बकरी (पूर्वेण) अगले (पदा) पांव से (वयाम्) अनायास शाखा को खींच कर रखती है, तद्वत् अनायास ही आप उस शक्ति से जगत् को (आयमः) आकर्षणपूर्वक धारित करते हैं ॥ (देवीजनि०) इत्यादि की व्याख्या ३७९ ऋचा में कर आये हैं ॥ ऋ० १० । १३४ । ६ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १र २र ३ २
(१०९२) अव स्म दुर्हणायतो मर्त्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अधस्पदं तमीं कृधि योऽअस्माँ अभिदासति ॥
३ १र २र
देवीजनित्र्यजी० ॥ ३ ॥ [१६]

भावार्थः—हे परमेश्वर ! (दुर्हणायतः) दुःखदायी हरण करने वाले (मर्त्तस्य) शत्रु मनुष्य के (स्थिरम्) स्थिर बल को (अव—तनुहि) गिराइये (स्म) और (तम् ईम्) इस पूर्वोक्त शत्रु को (अधस्पदम्) हमारे पावों के नीचे (कृधि) कीजिये (यः) जो कि (अस्मान्) हम धार्मिकों को (अभिदासति) हिंसा करता है । शेष पूर्व मन्त्र के तुल्य है ॥ ऋ० १० । १३४ । ४ में भी ॥ ३ ॥

अथ षष्ठेखण्डे प्रथमतृचस्य—असितोदेवलोवा ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१०९३) परि स्वानो गिरिष्ठाःपवित्रे सोमो अक्षरत् ।
१ २ ३ १ २
मदेषु सर्वधा असि ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४७५) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२उ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १र २
(१०९४) त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्रजातमन्धसः ।

१२ ३ १ २
मदेषु सर्वधा असि ॥ २ ॥

भावार्थः-सोम ! (त्वम्) तू (विप्रः) अनेक प्रकार से प्रसन्न करने वाला वा ब्राह्मण के सदृश सब का हितकारी तथा (कविः) बुद्धितत्त्व वाला होने से धारणावती बुद्धि का दाता (मदेषु) तेरे सेवन से हुवे हर्षों के होने पर (सर्वधाः) सब का धारक पालक पोषक (असि) है। जो (त्वम्) तू (अन्धसः) अन्न से (जातम्) उत्पन्न (मधु) मधुर रस को (प्र) देता है॥

जो मनुष्य सोम के गुण जान कर उपयोग में लाते हैं वे उस से विविध रस अन्न मेधा और धृति को प्राप्त करते हैं॥ ऋ० ९। १८। २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०९५) त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत ।
१ २ ३ १ २
मदेषु सर्वधा असि ॥ ३ ॥ [१७]

भावार्थः—सोम ! (विश्वे) सब (सजोषसः) समान प्रीति वाले (देवासः) देवता (त्वे) तुझ में (पीतिम्) पान को (आशत) प्राप्त होते हैं॥ ऋ० ९। १८। ३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथात्मकद्वितीयसूक्तस्य—कण्व ऋषयः। सोमोदेवता गायत्री यवमध्या वा ककुप् वा छन्दः॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१०९६) स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् ।
२ ३ १ २ ३ २
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५८२) में हो चुकी है॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१०९७) यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः।
१ २र ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥२॥ [१८]

भावार्थः–सोम ! (यस्य) जिस (ते) तेरे रस को (इन्द्रः) इन्द्रनामक वायुविशेष देव (पिबात्) पीवे (यस्य) जिस के रस को (मरुतः) मरुत् नामक ४९ वायु भेद पीवें, (वा) अथवा (यस्य) जिस के रस को (अर्यमणा) अर्यमा नामक वायु विशेष देव के सहित (भगः) भग नामक सूर्य किरण विशेष पीवे, (येन) जिस सोमरस से (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण वायुओं को (आ–करामहे) हम अभिमुख करते हैं (इन्द्रम्) जिस से इन्द्र देव को (आ) अभिमुख करते हैं वह सोम (महे) बड़ी (अवसे) रक्षा के लिये " हो " ॥ ऋ० ९ । १०८ । १४ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयतृचस्य–पर्वतनारदावृषी । सोमोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा–

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१०९८) तं वः सखायोमदाय पुनानमभिगायत ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्त्तिभिः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५६९) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०९९) सं वत्सइव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।
३ १र २र ३ २ ३ १ २
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥

भावार्थः–(हिन्वानः) अभिषुत किया जाता हुआ (इन्दुः) सोम (सम्-अज्यते) भले प्रकार सिक्त होता है । (इव) जैसे (वत्सः) बछड़ा (मातृभिः) माता गौओं से भले प्रकार सिक्त होता है । (देवावीः) देवों का रक्षक (मदः) हर्ष कारक सोम (मतिभिः) बुद्धिमानों से (परिष्कृतः) परिशोधित होता है ॥ ऋ० ९ । १०५ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(११००) अयं दक्षाय साधनोयंᳬ शर्धाय वीतये ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥ ३ ॥ [१९]

भावार्थः—(अयम्) यह सोम (दक्षाय) बल के लिये (साधनः) साधन है और (अयम्) यह (शर्धाय) बलयुक्त (वीतये) भोजन के लिये है (अयम्) यह (देवेभ्यः) वायु आदि देवों के लिये (सुतः) अभिषुत सोम (मधुमत्तरः) अतिमाधुर्ययुक्त है ॥ ऋ० ९ । १०५ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थतृचस्य मनुर्ऋषिः । सोमोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(११०१) सोमाः पवन्तइन्दवा ऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३र २र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥१॥

इस की व्याख्या (५५८) में होचुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(११०२) ते पूतासोविपश्चितः सोमासोदध्याशिरः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
सूरासोन दर्शतासो जिगत्नवोध्रुवाघृते ॥ २ ॥

भावार्थः—(पूताः) पवित्र से शोधित (विपश्चितः) बुद्धिसत्वयुक्त (दध्याशिरः) दधिमिश्रित (घृते, जिगत्नवः) वसतीवरी नामक जल में गमनशील (ध्रुवाः) वहां स्थिरता से वर्त्तमान (ते) वे (सोमासः) सोम (सूरासः) सूर्य (न) से (दर्शतासः) पात्रों में सब से देखने योग्य होते हैं ॥ ऋ० ९ । १०१ । १२ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
(११०३) सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः ॥३॥ [२०]

भावार्थः—(गोः) पृथिवी के (त्वचि अधि) पृष्ठ पर (चितानाः) पहचाने जाते हुवे (अद्रिभिः) पत्थरों से (वि) अनेक प्रकार (सुष्वा-

प्यासः) सुन्दर अभिषुत किये जाते हुवे सोम (अस्मभ्यम्) हम सोमसेवियों के लिये (अभितः) सर्वतः (इषम्) अन्नादि धनधान्य (समस्वरन्) देते हैं ॥ ऋ० ९ । १०१ । ११ में भी ॥ ३ ॥

अथ पञ्चमतृचस्य—कुत्सऋषिः । सोमोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ १ २ १र २र ३ १ २ ३
(११०४) अया पवा पवस्वैना वसूनि माꣳ श्चत्वइन्दो
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १
सरसि प्रधन्व । ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं,
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पुरुमेधाश्चित्तकवेनरं धात ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५४१) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(११०५) उत न एना पवया पवस्वा, धिश्रुते श्रवाय्यस्य
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २व ३ १
तीर्थे। षष्टिꣳ सहस्रा नैगुतो वसूनि, वृक्षं न पक्वं
२ ३ १ २
धूनवद्रणाय ॥ २ ॥

भावार्थः—सोम (एना) इस (पवया) पवित्र धारा से (श्रवाय्यस्य) श्रवणीय अपने (श्रुते) विख्यात (तीर्थे) स्थान में [यही सायणकृत तीर्थ शब्दार्थ है] (नः) हम सोम सेवियों को (अधि) अधिकता से (पवस्व) पवित्र करता है (उत) और (नैगुनः) नीचे-खड़ा पुरुष (न) जैसे (पक्वम्) पके फलों वाले (वृक्षम्) वृक्ष को (धूनवत्) हिलाता अर्थात् फल प्राप्त करता है वैसे ही सोम भी (षष्टिं सहस्रा वसूनि) ६० सहस्र धन मानो हिला कर (रणाय) शत्रुविजयार्थ गिराता है ॥ ऋ० ९ । ९७ । ५३ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(११०६) महीमे अस्य वृषनाम शूषे, माꣳश्चत्वे वा पृशने

२ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
श्वा वधत्रे । अस्त्रापयन्निगुतः स्नेहयञ्चा, पामित्राँ
२ ३ १ २ २ ३
अपाचितो अचेतः ॥ ३ ॥ [२१]

भावार्थः—(अस्य) इस सोम के (एने) ये दो (शुपनाम) वृद्धि और गम्भतारूप दो कर्म (मही) बड़े (वा) और (मांश्वत्वे) अश्वतुल्य बलयुक्त (वा) और (पृथने) दिव्य (शूषे) सुखदायक (वधत्रे) शत्रु से बचाने वाले हैं । यह सोम (निगुतः) शरणागत नम्रशत्रुओं को (स्नेहयत्) प्यार करता और (अप) विरोधियों को (अस्वापयत्) सुलाता मार गिराता तथा (अपाचितः) अग्निचयनोपलक्षित यज्ञ मात्र के विरोधी नास्तिकों को (अचेतः) चेताता है अर्थात् धार्मिक बनाता है ॥ ऋ० ९ । ९७ । ५४ में भी ॥३॥

अथ सप्तमे खण्डे प्रथमतृचस्य बन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । द्विपदा त्रिष्टुप्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
(११०७) अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥१॥

इस की व्याख्या (४४८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(११०८) वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥२॥

भावार्थः—(वसुः) सर्व के वास कराने वाले (अग्निः) प्रकाशक (वसुश्रवाः) धनी यशस्वी और (द्युमत्तमः) अतिप्रकाशमान ! आप (अच्छ) भले प्रकार सामने (नक्षि) प्राप्त हूजिये और (रयिम्) विद्यादि धन (दाः) दीजिये ॥ ऋ० ५ । २४ । २ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(११०९) तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥३॥ [२२]

भावार्थः—(शोचिष्ठ) हे ज्योतिस्स्वरूप ! (दीदिव) प्रकाशमान ! (तम्) उस पूर्वोक्त (त्वा) तुझ से (सुम्नाय) सुख की (सखिभ्यः) मित्रों के

लिये (नूनम्) निश्चय (ईमहे) हम याचना करते हैं ॥ ऋ० । ५ । २४ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—आप्त्य ऋषिः । विश्वे देवा देवता । द्विपदा त्रिष्टुप्छन्दः । तत्र प्रथमा—

३ २उ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१११०) इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४५२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(११११) यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु॥२॥

भावार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वर (नः) हमारे (यज्ञं च) ज्योतिष्टोमादि और ब्रह्मयज्ञादि यज्ञ (च) और (तन्वम्) देह (च) और (प्रजाम्) सन्तान को (आदित्यैः) सूर्यादि देवों के (सह) साथ (सीषधातु) साधे अर्थात् जिस परमात्मा ने सूर्यादि देवों को यज्ञादि की उत्पत्ति और सार्थकता के लिये रचा है वह उन से हमारे यज्ञादि सिद्ध करे ॥ ऋ० १० । १५७ । २ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१११२) आदित्यै रिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत्३[२३]

भावार्थः—पूर्वमन्त्र में जो यह कहा गया कि परमेश्वर सूर्यकिरणादि द्वारा हमारे यज्ञों और शरीर तथा सन्तानादि को साधे । उस में यह आशङ्का करले कि सूर्यादि द्वारा यज्ञ तो अवश्य सिद्ध होता है परन्तु सन्तानादि पर सूर्यादि का प्रभाव किस प्रकार है ? कहते हैं कि (इन्द्रः) परमेश्वर सर्व शक्तिमान् (आदित्यैः) सूर्यकिरणों और (मरुद्भिः) विविधवायुओं से (सगणः) गण सहित (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (भेषजा) औषधें (करत्) करे ॥ यह तो प्रसिद्ध ही है कि सूर्य की किरणों और वायुओं से ही अनेक औषध उत्पन्न होते हैं जिन से हमारे देह सन्तान आदि उत्पन्न और रक्षित होते हैं । और अब तो सूर्यकिरणादि से ही साक्षात् अनेक रोगों के दूर करने की रीति पर चिकित्सा होने लगी है, तब कहना ही क्या शेष है ॥३॥

अथ तृतीयतृचः—

१ २र

(१११३-१११४-१११५) प्रवोर्चाप ॥ १ । २ । ३ [२४]

भावार्थः—इस ३ ऋचा के सूक्त की व्याख्या पूर्व कर आये हैं। ऐसा विदित होता है कि इस तृच में ३ ऋचाओं के ३ प्रतीक ही हैं जिन में से "प्रव" यह ४४६ पर और "अर्च" यह ४४५ पर तथा "उप" यह ४४४ पर व्याख्यात किया गया है। ये ऋचा वहां छन्द आर्चिक अध्याय ४ खण्ड १० में आचुकी हैं। यहां उन को दुबारा पढ़ने का प्रयोजन "वह्वंग्रपुत्र" नामक गान की उत्पत्ति करना है। जैसा कि "ऊहगान" प्रपाठक ३ का अन्तिम गान है। जो गीतियुक्त बङ्गाल ऐशियाटिक सुसाइटी के छापे पुस्तक के १०० वें पृष्ठ पर छपा है और ऐसा ही श्री सत्यव्रत सामश्रमी जी लिखते हैं और विवरणकार को भी यही सम्मत है॥ परन्तु सायणाचार्य इस से विलक्षण यह लिखते हैं कि "यह एक ऋचा का "प्रवोर्चाप" सूक्त है, यह कोई ४ अक्षर की ऋचा सी है, जैसी कि ऋग्वेदियों की "भद्रं नो अपि वातयमनः" यह एक ही पाद है और ऋचा मानी जाती है" ॥ १ । २ । ३ ॥

इति सप्तमाऽध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

इति चतुर्थस्यार्ध प्रपाठकः ॥

इति श्रीमत्कण्ववंशाऽवतंस श्रीमान् पण्डित हज़ारीलाल स्वामि के पुत्र परीक्षितगढ़ (ज़िला—मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामि कृत उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में सातवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

ओ३म्

अथाष्टमोऽध्यायः

तत्र

प्रकाव्यमिति प्रथमेखण्डे प्रथमस्य द्वादशर्चसूक्तस्य प्रथमायाः वृषगणोवासिष्ठ ऋषिः। सोमोदेवता। त्रिष्टुप्छन्दः इति छन्द आर्चिके। इह तु जीवानन्द-विद्यासागरेण कलिकातायां मुद्रापिते (१८९२ ई०) पुस्तके सूक्तमात्रस्य अग्नि देवतात्वं। गायत्री छन्दः इति भेदोदृश्यते॥

तत्र प्रथमा—

१ २र३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१११६) प्रकाव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
विवक्ति। महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा
२ ३ २ ३र २र ३ १ २
वराहो अभ्येति रेभन्॥ १॥

इस की व्याख्या (५२४) में हो चुकी है॥ १॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २
(१११७) प्रहꣳसासस्तृपलावग्नुमच्छा, ऽमादस्तं वृषगणा
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र
अयासुः। आङ्गोषिणं पवमानꣳ सखायो, दुर्मर्षं वाणं
२र ३ २
प्रवदन्ति साकम्॥ २॥

भाषार्थः—(हंसासः) सूर्य किरणें [यही विवरणकारकृत अर्थ है] (वृष-गणाः) वृष्टिकारक गण हैं वे (अमात्) बल से (तृपलाः) क्षिप्र प्रहार करने वाली (वग्नुम्) अभिषव के शब्द की ओर लक्ष्य करके (अस्तम्) यज्ञगृह को (प्र—अयासुः) उत्कृष्टता से प्राप्त होती हैं। फिर (सखायः) मित्रभूत

ऋत्विज् लोग (अङ्गोषिणम्) सब को प्राप्त करने योग्य (दुर्मर्षम्) दुःसह (वाणम्) वाण के तुल्य (पवमानम्) सोम को (साकम्) साथ मिलकर (प्रवदन्ति) गाते हैं ॥

सोमयाग करने वाले सामगान करते हैं और उन दो उन यज्ञयुक्त घरों पर हितकारी वृष्टिकारी सूर्य किरणें पड़ती हैं ॥ ऋ० ९ । ९७ । ८ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ १ २ ३ २उ ३ १ २
(१११८) स योजत उरुगायस्य जूतिं, वृथा क्रीडन्तं

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३
मिमते न गावः । परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥ ३ ॥

भावार्थः—(सः) वह सोम (उरुगायस्य) बहुगीयमान अपनी (जूतिम्) गति को (योजते) प्रेरित करता है (वृथा) विना परिश्रम सहज में ही (क्रीडन्तम्) आकाश में मंडलाते हुवे सोम को (गावः) किरणें (न) नहीं (मिमते) माप सक्तीं । किन्तु—(तिग्मशृङ्गः) तीक्ष्ण तेजस्वी सोम (परीणसम्) बहुत [निघं० ३ । १ । ७] तेज (कृणुते) करता है और (दिवा) दिन में (हरिः) हरा (ददृशे) दीखता तथा (नक्तम्) रात्रि में (ऋज्रः) स्पष्ट प्रकाशमान प्रतीत होता है ॥ ऋ० ९ । ९७ । ९ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१११९) प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः ।

१ २ ३ १ २
सोमासो राये अक्रमुः ॥ ४ ॥

भावार्थः—(स्वानासः) अभिषव के समय " उपरव " नामक गढ़ों में शब्द करते हुवे (सोमासः) सोम (रथाइव) रथ से रमणीय और (अर्वन्तः)

घोड़ों (न) से वेगवान् होते हुवे (अवस्यवः) यजमान के अन्न को चाहते हुवे (राये) यजमानार्थ धन के लिये (प्राऽक्रमुः) यत्न करते हैं ॥

यूप के गड़े "उपरव" कहाते हैं। जैसा कि कात्यायन सूत्र ८। ४। २५ (संस्कृत भाष्य में देखिये) में कहा है कि—जैसे यूप का गढ़ा खोदा जाता है वैसे ही यहां भी उपरव नाम के ४ गड़े अभ्रिस्वीकार से लेकर परिलेखन पूर्वक बनावे। यह उस सूत्र का श्रीसत्यव्रतसामश्रमी जी कृत अर्थ है ॥

ऋग्वेद ९। १०। १ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

३ २ ३ १ २ ३ १र २र
(११२०) हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः ।
१ २ ३ १ २
भरासः कारिणामिव ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(रथा इव) रथ के तुल्य रमणीय (हिन्वानासः) यज्ञ देश के प्रति जाते हुवे सोम (गभस्त्योः) ऋत्विजों की बाहुओं में (दधन्विरे) धरे जाते हैं (इव) जैसे (भरासः) भार=बोझे (कारिणाम्) मज़दूरों की बाहुवों पर धरे जाते हैं। तद्वत् ॥ ऋग्वेद ९। १०। २ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(११२१) राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(न) जैसे (राजानः) राजा लोग (प्रशस्तिभिः) प्रशंसाओं से और (न) जैसे (यज्ञः) यज्ञ (सप्तधातृभिः) ७ होत्राओं से (अञ्जते) संस्कृत किया जाता है, तद्वत् (सोमासः) सोम (गोभिः) सूर्यकिरणों से संस्कृत किये जाते हैं ॥ ऋग्वेद ९। १०। ३ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(११२२) परि स्वानासइन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।

१ २ ३ १ २
मधो अर्षन्ति धारया ॥ ७ ॥

भावार्थः—(बर्हणा) महती (गिरा) मन्त्ररूपिणी वाणी के साथ (स्वानासः) अभिषुत किये जाते हुवे (इन्दवः) सोम (मदाय) तृप्ति के लिये (मधोः) मधुर रस की (धारया) धारा से (परि अर्षन्ति) सब ओर फैलते हैं ॥ ऋग्वेद ९ । १० । ४ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टमी—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(११२३) आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम् ।

२ ३ २ ३ १ २
सूरा अण्वं वितन्वते ॥ ८ ॥

भावार्थः—(विवस्वतः) सूर्य के (पानासः) पानभूत और (उषसः) उषा की (भगम्) शोभा को (जिन्वन्तः) बढ़ाते हुवे (सूराः) सूर्यतुल्य प्रकाशमान सोम (अणवम्) सूक्ष्म (आ—वितन्वते) कुछ वितान=चन्दोवा सा बना देते हैं ॥ ऋग्वेद ९ । १० । ५ में भी ॥ ८ ॥

अथ नवमी—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(११२४) अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २
वृष्णो हरस आयवः ॥ ९ ॥

भावार्थः—(मतीनाम्) बुद्धियों के (कारवः) उत्पादक (प्रत्नाः) अनुभवी वृद्ध (आयवः) ऋत्विज् लोग (हरसे) दीप्ति वा तेज के लिये (वृष्णः) वीर्यवान् सोम के (द्वारा) दरवाज़े=द्वारों को (अप—ऋण्वन्ति) खोल देते हैं ॥ ऋग्वेद ९ । १० । ६ में भी ॥ ९ ॥

अथ दशमी—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(११२५) समीचीनास आशत होतारः सप्त जानयः ।

३१र २र ३ १ २
पदमेकस्य पिप्रतः ॥ १० ॥

भावार्थः—(समीचीनासः) सत्पुरुष (जामयः) जन (सप्त होतारः) १—होता, २—मैत्रावरुण, ३—ब्राह्मणाच्छंसी, ४—पोता, ५—नेष्टा, ६—अच्छावाक और ७—अग्नीध्र ये सातों (एकस्य) आपस के एक के (पदम्) स्थान को दूसरे (पिप्रतः) पूरा करते हुवे (आशत) व्यापते हैं ॥ ऋग्वेद ९ । १० । ७ का पाठ और अर्थ का भेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १० ॥

अथैकादशी—

२ ३ १ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ २
(११२६) नाभा नाभिं न आददे चक्षुषा सूर्यं दृशे ।
३ १र २ ३ १ २
कवेरपत्यमादुहे ॥ ११ ॥

भावार्थः— (नाभिम्) यज्ञ की नाभिरूपी सोम को (नः) हम अपनी (नाभा) नाभि में (आददे) ग्रहण करते अर्थात् पीते हैं । किस लिये ? उत्तर— (चक्षुषा) आंख से (सूर्यम्) सूर्य को (दृशे) देखने के लिये । और (कवेः) क्रान्तदर्शी सोम के (अपत्यम्) सन्तानरूपी अंशु को (आदुहे) हम पूरते हैं ॥ ऋ० ९ । १० । ८ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ११ ॥

अथ द्वादशी—

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(११२७) अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् ।
१ २ ३ १ २
सूरः पश्यति चक्षसा ॥ १२ ॥ [१]

भावार्थः—(सूरः) सूर्यवत्प्रकाशमान विद्वान् पुरुष (चक्षसा) विद्यारूपी नेत्र से (प्रियम्) प्यारे (दिवः पदम्) सुख के स्थान तथा (अध्वर्युभिः) यज्ञकर्त्ताओं से (गुहा) आकाश में (हितम्) स्थापित सोम के प्रभाव को (अभि) सब ओर (पश्यति) देखता है ॥ ऋ० ९ । १० । ९ में भी ॥ १२ ॥

अथ द्वितीयखण्डे असृग्रमिति द्वादशर्चस्य प्रथम सूक्तस्याऽसितः काश्यपो देवलोवा ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

(११२८) असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः ।

३ १ २ ३ १ २

विदाना अस्य योजना ॥ १ ॥

भावार्थः—(अस्य) इस सोम के (योजना) प्रयुक्त करने को (विदानाः) जानने वाले (सुश्रियः) सुन्दर शोभा वाले ऋत्विज् सोम (ऋतस्य) सत्य के (धर्मन्) धर्मानुकूल (पथा) मार्ग=यज्ञ में (इन्दवः) सोमों को (असृग्रम्) छोड़ते हैं ॥ ऋ० ९ । ७ । १ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र

(११२९) प्र धारामधो अग्रियो महीरपो विगाहते ।

३ २ ३ २ ३ १ २

हविर्हविष्षु वन्द्यः ॥ २ ॥

भावार्थः—(हविष्षु) अन्य हवियों में (वन्द्यः) प्रशंसनीय (अग्रियः) मुख्य (हविः) हवि=सोम (महीः, मधोः धाराः, अपः) बड़ी भारी, मधुर रस की धारों वाले, जलों को (प्र—विगाहते) विलोय डालता है ॥ ऋ० ९ । ७ । २ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ २ ३ २ २ ३ १र २र ३ १ २

(११३०) प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २

सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥ ३ ॥

भावार्थः—(अग्रियः) हवियों में मुख्य सोम (वाचः) वाणियों को (युजाः) युक्त ठीक (प्र) करता है अर्थात (वृषा उ) वृष्टिकारक (सत्यः) स्थिरफल वाला (अध्वरः) यज्ञस्वरूप सोम (सद्म) यज्ञस्थान (अभि) में (वने) वसतीवरी नाम के जल में (अचिक्रदत्) शब्द करता है ॥ सायणाचार्य ने जो पदपाठ के अनुसार "वृषा, उ" इस प्रकार पदद्वय न करके

"वृष" पद की व्याख्या की है सो पदकार के विरुद्ध है, यही श्री सत्यव्रतसामश्रमी जी का कथन है ॥ ऋ० ९ । ७ । ३ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये॥३॥

अथ चतुर्थी—

२३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १र
(११३१) परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति ।
१र ३ १ २
स्ववाजी सिषासति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(कविः) वाणी का सुधारने वाला सोम (नृम्णा) धनों वा यज्ञों को (पुनानः) शोधता हुवा (काव्या) कवि के कर्म काव्य=वैदिक स्तोत्रों को (यत्) जब कि (परि—अर्षति) प्राप्त होता अर्थात् अपने को वेदमन्त्रों में उक्तप्रशंसाओं के तुल्य दर्शाता है तब (स्वः) सुख को (वाजी) बलवान् बलदायक सोम (सिषासति) मानों बांटना चाहता है ॥ ऋ० ९ । ७ । ४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २
(११३२) पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(यत्) जब कि (ईम्) इस सोम को (वेधसः) कर्मकर्त्ता ऋत्विज् लोग (ऋण्वन्ति) अभिषुत करते हैं तब (पवमानः) यह सोम (स्पृधः) स्पर्धमान दुष्टों को (अभि—सीदति) नष्ट करने चलता है । दृष्टान्त—(विशः) स्पर्धमान प्रजाओं को (राजेव) जैसे राजा, तद्वत् ॥ ऋ० ९ । ७ । ५ में भी ॥५॥

अथ षष्ठी—

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
(११३३) अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति ।
३ १ २ ३ २
रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(हरिः) सोम (प्रियः) प्यारा (वनेषु) वसतीवरीनामक

में शब्द करता हुवा (मर्तो) प्रशंसा से (वनुष्यते) सेवित होता है ॥
ऋ० ९ । ७ । ६ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी—

२ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १२ २२
(११३४) स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति ।
२ ३ १ २ ३ १ २
रणायो अस्य धर्मणा ॥ ७ ॥

भावार्थः—(यः) जो यजमान (अस्य) इस सोम के (धर्मणा) अभिषवादि धर्म से (रण) रमण करता है (सः) वह (इन्द्रम्) इन्द्र नामक (वायुम्) वायु को (अश्विना) और द्यावा पृथिवी को (मदेन) हर्ष के साथ (गच्छति) प्राप्त होता है ॥ ऋ० ९ । ७ । ७ में धर्मणा के स्थान में धर्मभिः पाठ है और सायणाचार्य ने भ्रम से वही यहां भी व्याख्यात कर दिया है ॥७॥

अथाऽष्टमी—

२ ३ २२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(११३५) आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्तऊर्मयः ।
३ १ २ ३ १ २
विदाना अस्य शक्मभिः ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो पुरुष (अस्य) इस (मधोः) मधुर रसयुक्त सोम की (ऊर्मयः) लहरों को (विदानाः) जानते हुवे (मित्रे वरुणे भगे) मित्र वरुण भग नामक सूर्यकिरणभेदरूपी देवों में (पवन्ते) शुद्धि करते हैं, वे (शक्मभिः) पुरुषार्थों से युक्त होते हैं ॥ ऋ० ९ । ७ । ८ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये, यहां सामवेद में भी सायणाचार्य ने उन ऋग्वेद के ही पाठों की व्याख्या भ्रान्ति में करदी है ॥ ८ ॥

अथ नवमी—

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(११३६) अस्मभ्यं रोदसि रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।
२ ३ १ २ ३ १ २
श्रवो वसूनि संजितम् ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(रोदसी) द्यावापृथिवी दोनों (मध्वः) मधुर (वाजस्य) सोमरूपी अन्न के (सातये) दानार्थ (अस्मभ्यम्) हमें (श्रवः) यश (रयिम्) धन और (वसूनि) पशुआदि धन (संजितम्) देवें ॥ ऋ० ९ । ७ । ९ में भी ॥९॥

अथ दशमी—

२ ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २

(११३७) आ ते दक्षं मयो भुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।

२ ३ १ २३ १ २

पान्तमापुरुस्पृहम् ॥ १० ॥

इस की व्याख्या (४९८) में होचुकी है ॥ १ ॥

अथैकादशी—

२ ३ १२ २२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

(११३८) आ मन्द्रमावरेण्यमाविप्रमा मनीषिणम् ।

२ ३१ २ ३ १ २

पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(मन्द्रम्) हृष्टिकारक सोम का (आ) [पूर्व मन्त्र से "वृणीमहे" क्रिया की अनुवृत्ति है] हम सर्वतः वरण करते हैं (वरेण्यम्) वरणीय वा भजनीय सोम का (आ) हम वरण करते हैं (विप्रम्) धारणावती बुद्धितत्ववाले सोम का (आ) हम करते हैं (मनीषिणम्) साधारण बुद्धितत्त्वयुक्त सोम का (आ) हम वरण करते हैं (पान्तम्) रक्षा करते हुवे तथा (पुरुस्पृहम्) बहुतों से चाहे हुवे सोम का (आ) हम वरण करते हैं ॥ ऋ० ९ । ६५ । २९ में भी ॥ ११ ॥

अथ द्वादशी—

२ ३ १२ २२ ३२ ३ १ २ ३ २

(११३९) आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा ।

२ ३ १ २३ १ २

पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥ [२]

भाषार्थः—(सुक्रतो) हे यज्ञ सुधारने वाले ! हम (रयिम्) सोमरूपी धन का (आ) सर्वतः वरण करते हैं (सुचेतुनम्) बुद्धि सुधारने वाले सोम

जलों में छुवा मिला हुवा (अव्याः) भेड़ के (वारे) वाल के बनी दशापवित्रपर (परि सीदति) रहता है और (रेभः) अभिषव के समय उपरवों का (आ) वरण करते हैं (तनूषु) हम अपने देहों के निमित्त (आ) सोम का वरण करते हैं (प्रान्तमा पु० पूर्व अर्थ किया गया ॥ ८।६५।३० में भी ॥१२॥

इति अष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

उक्तं बहिष्पवमानम् इति विवरणकारः

अथ

तृतीये खण्डे प्रथमतृचस्य—भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्वैश्वानरो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ २उ
(११४०) मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या, वैश्वानरमृत
१ २३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आजातमग्निम् । कविꣳ सम्राजमतिथिं जनाना,
३ २ ३ १ २ ३ २
मासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (६७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
(११४१) त्वां विश्वे अमृत जायमानꣳ, शिशुं न देवा
३ १र २र २ ३ १ ३ ३ १ २ ३
अभिसंनवन्ते । तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्,
१र २ ३ २ ३ १र २र
वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अमृत) मरणरहित ! अग्ने ! (विश्वे) सब (देवाः) वायु आदि देवता वा ऋत्विज् लोग (जायमानम्) उत्पद्यमान (त्वाम्) तुझ को (अभि—सं—नवन्ते) प्रशंसित करते वा तेरी ओर झुक कर आते हैं । दृष्टान्त-(न) जैसे (शिशुम्) उत्पद्यमान बच्चे को पिता आदि प्रशंसित

करते वा उस की ओर झुक कर आते हैं तद्वत्। (वैश्वानर) हे अग्ने! (तव) तेरे (क्रतुभिः) कर्मों वा यज्ञों से यजमान लोग (अमृतत्वम्) देवत्व को (आयन) प्राप्त होजाते हैं॥ ऋ० ६। ७। ४ में भी॥ २॥

अथ तृतीया—

१ २ ३२ ३ १२ ३ २ ३१ २ ३

(११४२) नाभिं यज्ञानाᳬं सदनᳬं रयीणां, महामाहा-

२ ३ १र २र ३ २ क२र ३ १ २

वमभि संनवन्त। वैश्वानरᳬं रथ्यमध्वराणां,

३ १ २ ३ १ २ ३ २

यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः॥ ३॥ [३]

भावार्थः—(यज्ञानां नाभिम्) अग्निष्टोमादि यज्ञों के केन्द्रभूत (रयीणां सदनम्) धनों के स्थान (महाम्) बड़े (आहावम्) आहुतिस्थान यद्वा वर्षा के जल की धाराओं के चौबच्चे रूप अग्नि को ऋत्विज् लोग (अभि-सं-नवन्त) सब ओर से भले प्रकार स्तुत करते हैं तथा (अध्वराणां रथ्यम्) यज्ञों के रथी [जैसे रथ को यथेष्ट लेजाता है तद्वत् यज्ञों के ले जाने वाले] (यज्ञस) यज्ञ के (केतुम्) ध्वजा रूप (वैश्वानरम्) अग्नि को (देवाः) ऋत्विज्लोग (जनयन्त) मन्थन से उत्पन्न करते हैं॥ ऋ० ६। ७। २ में भी॥ ३॥

अथ द्वितीयतृचस्य—यजत ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते।

गायत्री छन्दः॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

(११४३) प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा।

१ २ ३ २ ३ २

महि क्षत्रावृतं बृहत्॥ १॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! तुम (वः) तुम्हारी [अपनी] (विपा) विस्तृत (गिरा) वैदिकी वाणी से (महिक्षत्रौ) महाबली (वरुणाय) वरुण और (मित्राय) मित्र को (ऋतम्) यथार्थ (बृहत्) बहुत (प्र—गायत) प्रशंसित करो॥ ऋ० ५। ६८। १ में भी॥ १॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ २ २ १ २ ३ २ ३ १र २र
(११४४) सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।
३ २ ३ १ २ ३ २
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥

भावार्थः—वे मित्र वरुण कैसे हैं? सो कहते हैं कि (या) जो (मित्रश्च वरुणश्च) मित्र और वरुण (उभा) दोनों (देवा) देव (देवेषु) अन्यदेवों में (प्रशस्ता) श्रेष्ठ (घृतयोनी) जल के उत्पन्न करने वाले और (सम्राजा) भले प्रकार प्रकाशमान हैं उन को प्रशंसित करो यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है ऋ० ५ । ६८ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(११४५) ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
३ २ ३ २ ३ १ २
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥ [४]

भावार्थः—(ता) वे दोनों मित्र और वरुण (नः) हमारे लिये (पार्थिवस्य) पृथिवीसंबन्धी और (दिव्यस्य) आकाशसंबन्धी (महः) बड़े (रायः) धन के देने को (शक्तम्) समर्थ हों (वाम्) उन मित्र वरुण का (क्षत्रम्) बल (महि) बड़ा है ॥ ऋ० ५ । ६८ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
(११४६) इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥

भावार्थः—(चित्रभानो) विचित्रप्रकाशयुक्त (इन्द्र) वायुविशेष ! (आयाहि) प्राप्त हो क्योंकि (इमे) ये (त्वायवः) तुझे चाहने वाले से (तना) सदा (अण्वीभिः) अङ्गुलियों से (पूतासः) शोधे हुवे (सुताः) अभिषुत सोम हैं ॥

भाव यह है कि मनुष्यों को अङ्गुलियों से शोधकर अभिषुत सोम यज्ञ द्वारा इन्द्रनामक विचित्रप्रकाशयुक्त वायु में पहुंचाने चाहियें ॥ ऋ० १ । ३ । ४ तथा यजुः २० । ८७ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २
(११४७) इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।

२३ १ २ ३ १ २
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(इन्द्र) वायो ! (विप्रजूतः) मेधावी लोगों ऋत्विजों से प्रेरित (धिया) कर्म=यजन से (इषितः) प्राप्त हुवा (सुतावतः) अभिषुत सोमयुक्त (वाघतः) ऋत्विजों को [निघं० ३ । १८ । ३] जो (ब्रह्माणि) वेदमन्त्रों को उच्चार रहे हैं उन के (उप—याहि) समीप प्राप्त हो ऋ० १ । ३ । ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ ३
(११४८) इन्द्रायाहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।

३ १ २ ३ १ २
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥ [५]

भाषार्थः—हरि शब्द इन्द्र के अश्वों का वाचक है जैसा कि निघं० १ । १५ । १—२ ऊपर लिखा है तदनुसार (हरिवः) अश्व=किरणों वाले ! इन्द्र ! वायो ! (ब्रह्माणि) मन्त्रों को उच्चारते हुवे हमें (तूतुजानः) शीघ्रता करता हुवा (उप—याहि) समीप प्राप्त हो और (न) हमारे लिये (सुते) सोम अभिषुत करने पर (चनः) अन्न को (दधिष्व) धारित कर ॥

भावार्थ पूर्ववत् लगा लेना ॥ ऋ० १ । ३ । ६ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थतृचस्य—भरद्वाज ऋषिः इन्द्राग्नी देवते । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(११४९) तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजद् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्य ! तू (तम्) उस अग्नि की (ईळिष्व) प्रशंसा कर (यः) जो (अर्चिषा) लपट से (विश्वा) सब (वना) जङ्गलों को (परिष्वजत्) लपेटता और उन को फूंक कर (कृष्णा) काले (कृणोति) कर देता है ॥ ऋ० ६ । ६० । १० में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(११५०) य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २
द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ २ ॥

भावार्थः—(यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (इन्द्रस्य) इन्द्र के (सुम्नम्) रुचिर हव्य को (इद्धे) समिद्ध अग्नि में (आविवासति) होम करके परिचर्या करता है, उस (द्युम्नाय) प्रकाशमान मनुष्य के लिये (सुतराः, अपः) अत्युत्तम जल इन्द्र वर्षाता है ॥ ऋ० ६ । ६० । ११ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(११५१) ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः ।

१ २ ३ २ ३ १ २
एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥ ३ ॥

भावार्थः—(ता) वे दोनों (अग्निम्) अग्नि (च) और (इन्द्रम्) इन्द्र (नः) हमारे लिये (वाजवती, इषः) बलवान् अन्न और (आशून्) शीघ्रगामी (अर्वतः) घोड़े (आ-पिपृतम्) देते हैं ॥ ऋ० ६।६०।१२ में भी ॥३॥

इति अष्टमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ चतुर्विंशस्तौमिकं प्रातः सवनमुक्तमिदानीं माध्यंदिनं सवनमिति विवरणकारः ॥

अथ चतुर्थे खण्डे प्रथमतृचस्य—सिकतानिवारी ऋषिगणः । इन्द्रो देवता । जगती छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १र
(११५२) प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न

२र ३ १ २ १२ ३ २ ३ १ २ ३
प्रसिनाति सं गिरम् । मर्य इव युवतिभिः समर्षति
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५५७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
(११५३) प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवो पनस्युवः
३ १ २ २ ३ १ २ ३ क २र ३
संवरणेष्वक्रमुः । हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत
२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ॥ २ ॥

भावार्थः–(मन्द्रयुवः) हे हर्ष चाहने वालो ! (पनस्युवः) स्तुति चाहने वालो ! (विपन्युवः) स्तुति करने वालो ! (स्तुभः) स्तोताओ ! तुम (क्रीडन्तम्) क्रीड़ा करते हुवे (हरिम्) हरितवर्ण सोम की (अभ्यनूषत) प्रशंसा करो (इत्) जैसे (पयसा) दुग्ध से (धेनवः) गौवें (अभ्य–ऽशिश्रयुः) सर्वतः आश्रय करती हैं, तद्वत् । ऐसा करने पर (वः) तुम्हारे (धियः) कर्म (संवरणेषु) यज्ञ गृहों में (प्रा–ऽक्रमुः) प्रचलित होवें ॥ ऋ० ९ । ८६ । १७ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(११५४) आ न सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान
३ १ २ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १र २र ३ १
ऊर्म्मिणा । या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्म-
२ ३ १ २
धुमत्सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

भावार्थः–(इन्दो) गीले ! (पवमान) शोध्यमान ! (सोम) सोम ! तू (नः) हमारे लिये (संयतम्) संग्रह किये हुवे (पिप्युषीम्) बाहुल्य-

युक्त (ईषम्) अन्न को (ऊर्मिणा) लहरी से (आ—पवस्व) वर्षाव, (या) जो (असश्चुषीं) निर्विघ्न अन्न (द्युमत्) अन्नयुक्त (वाजवत्) बलयुक्त (मधुमत्) माधुर्ययुक्त (सुवीर्यम्) शोभनवीर्य को (दोहते) भरता है ॥ ऋग्वेद ९। ८६। १८ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥ उक्तो माध्यंदिनः पवमानः इति विव०

अथ प्रगाथस्य द्वितीयसूक्तस्य—पुरुहन्मात्रऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहतीछन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(११५५) नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदा वृधम् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्त्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥१॥

इस की व्याख्या (२४३) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

(११५६) आषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः २[८]

भावार्थः—(अषाढम्) असह्य (उग्रम्) अत्यन्त बलयुक्त (पृतनासु, सासहितम्) शत्रु सेनाओं में दबाव डाल सकने वाले इन्द्र वा राजा की प्रशंसा करता हूं (यस्मिन्) जिस के (जायमाने) उत्पन्न होने पर (महीः) बड़ी (उरुज्रयः) बहु वेग वाली (धेनवः) सूर्यकिरणें (समनोनवुः) भले प्रकार स्तुति करती हैं और (द्यावः) द्युलोकस्थ तथा (क्षामीः) पृथिवीस्थ लोग (अनोनवुः) स्तुति करते हैं ऋ० ८। ७०। ४ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ पञ्चमखण्डे प्रथमतृचस्य—नारदऋषिः । सोमोदेवता । उष्णिक्छन्दः ।

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २

(११५७) सखाय आनिषीदत पुनानाय प्रगायत ।

२ ३ २ ३ १र २र ३ २
शिशुं न यज्ञैः परिभूषत श्रिये ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५६८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(११५८) समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् ।
३ २ १ २ ३ १र २र
देवाव्यां ऽ३ मदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥

भावार्थः—हे ऋत्विजो ! तुम (गयसाधनम्) प्राण, गृह, धन वा सन्तान के साधन, (देवाव्यम्) देवों के रक्षक (मदम्) हृष्टिपुष्टिकारक (द्विशवसम्) दोनों लोकों के बल (है) इस सोम को (मातृभिः) माता के समान वसतीवरी नामक जलों से (अभि—सं—सृजत) सर्वतः मिलाओ (न) जैसे (वत्सम्) बछड़े को माताओं गौवों से मिलाते हैं, तद्वत् ऋ० ९। १०४। २ में भी ॥

यद्यपि बङ्गाल एशियाटिकसुसाइटी के सायणभाष्ययुक्त पुस्तक में " अभि 'म्रि' द्विशवसम् " यह "म्रि" इतना अधिक पाठ छपरहा है और अनुमान् उसी की देखा देखी विचारे ज्वालाप्रसाद ने भी लिख दिया और व्याख्या भी कर मारी है, तथा वैदिकयन्त्रालय अजमेर ने भी वैसा ही छाप दिया है, तथापि हम इस पाठ का आदर नहीं करते, क्योंकि उसी सायणभाष्य में इस "म्रि" युक्त पाठ की व्याख्या नहीं है, न गान के पुस्तक में है, न ऋक्संहिता में, न जीवानन्द के पुस्तक में, और न पं० गुरुदत्त एम० ए० के संस्कारयुक्त लाहौर के पुस्तक में यह पाठ है । हमारी समझ में तो यह पाठ लेखकों की भ्रान्ति से ही बन गया है ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(११५९) पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यथा मित्राय वरुणाय शंतमम् ॥३॥ [९]

भावार्थः—हे ऋत्विजो ! (शर्धाय) बल और (वीतये) भोजन के लिये (दक्षसाधनं यथा) जैसे बल का साधन हो वैसे और (मित्राय) प्राण तथा

(वरुणाय) अपान के लिये (यथा) जैसे (शंतमम्) सुखदायक हो वैसे (पुनाता) सोम का शोधन करो ॥ अष्टाध्यायी ७ । १ । ४५ का प्रमाण और ऋग्वेद ९ । १०४ । ३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य–ऐश्वरयः आग्नयधीपण्य ऋषिः * । सोमोदेवता । द्विपदा गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा–

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
(११६०) प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं विवारमव्यम् ॥१॥

भावार्थः–(वाजी) बलवान् वा वेगवान् (सहस्रधारः) बहुत सी धारों वाला सोम (अव्यम्) भेड़ की (वारम्) ऊर्णामय दशापवित्र को (तिरः) अन्तर्हित करके (वि–प्र–अक्षाः) विविध प्रकार से वर्षता है ॥ ऋग्वेद ९ । १०९ । १६ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
(११६१) स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः २

भावार्थः–(वाजी) बलिष्ठ, (सहस्ररेताः) बहुत वीर्य वाला, (अद्भिः) जलों से (मृजानः) शोधा जाता हुआ, (गोभिः) किरणों से (श्रीणानः) आश्रियमाण (सः) वह सोम (अक्षाः) सिंचता है ॥ ऋ० ९ । १०९ । १७ में भी ॥२॥

अथ तृतीया–

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ २
(११६२) प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमाणो अद्रिभिः सुतः ॥ ३ ॥ [१०]

भावार्थः–(नृभिः) ऋत्विजों से (येमाणः) नियमपूर्वक होम किया जाता हुआ (अद्रिभिः) मेघों से (सुतः) खिंचा हुवा (सोमः) सोम (इन्द्रस्य) इन्द्र के (कुक्षा) उदर में (प्र–याहि) प्रकर्ष से जाता है ॥ ऋग्वेद ९ । १०९ । १८ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य–वारुणिभृगुर्जमदग्निर्वा ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा–

१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(११६३) ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।

* यथादृष्टम् (तुलसीराम स्वामी) ॥

२ ३ १ २३ १ २
ये वाऽदः शर्यणावति ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र क ३ २र
(११६४) य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।
२ ३ १२ ३१२
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(११६५) ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामासु वीर्यम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
स्वाना देवास इन्दवः ॥ ३ ॥ [११]

भावार्थः—समस्त सूक्त का एकत्र ही अन्वय है कि—(ये) जो (सोमासः) सोम (परावति) दूर देश में (ये) और जो (अर्वावति) समीप देश में (ये वा) और जो (अदः) इस (शर्यणावति) भूमि में (ये) और जो (आर्जीकेषु) ऋजु=सरल=सम (कृत्वसु) किये हुवे स्थानों में (ये) और जो (पस्त्यानां मध्ये) गृहों के मध्य में (ये वा) और जो (पञ्चसु जनेषु) ४ ऋत्विज् और ५ वां यजमान इन पांचों में (सुन्विरे) अभिषुत किये जाते हैं (ते) वे (स्वानाः) अभिपूयमाण (देवासः) दिव्य (इन्दवः) सोम (नः) हमारे लिये (दिवः—परि) आकाश के सकाश से (सुवीर्यम्) जिस से सुन्दर वीर्य होवे (वृष्टिम्) वर्षा को (आ—पवन्ताम्) सर्वतः वर्षावें ॥

निघण्टु ३ । २६, २ । १६, ३ । ४ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

ऋग्वेद ९ । ६५ । २२—२३—२४ में भी ॥ १ । २ । ३ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठे खण्डे प्रथमतृचस्य-वत्सऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
(११६६) आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।
२ ३ १ २ ३ २
अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २उ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ २
(११६७) पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः ।
३ १ २
समत्सु त्वा हवामहे ॥ २ ॥

भावार्थः— हे स्वप्रकाशस्वरूप ! अग्ने ! परमात्मन् ! आप (पुरुत्रा) सर्वत्र (हि) ही (सदृङ्) समदर्शी (असि) हैं और (विश्वाः) सब (दिशः) पूर्वादि दिशाओं को (अनु) लक्ष्यकरके (प्रभुः) ईश्वर हैं । इस प्रकार के (त्वा) आप को (समत्सु) संग्रामों और तत्तुल्य कठिन समयों में (हवामहे) हम पुकारते हैं ॥ ऋ० ८ । ११ । ८ का पाठ और अर्थ का भेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥२॥

अथ तृतीया—

३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
(११६८) समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे ।
१ २ ३ १ २
वाजेषु चित्रराधसम् ॥ ३ ॥ [१२]

भावार्थः—(समत्सु) कामादि शत्रुओं के साथ युद्धों में (वाजयन्तः) बल चाहते हुवे हम (वाजेषु) उन संग्रामों में (चित्रराधसम्) विचित्र धनी (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप परमात्मा को (अवसे) रक्षार्थ (हवामहे) पुकरते हैं ॥ ऋ० ८ । ११ । ९ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य— नृमेधऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १२३ १ २ ३ १ २
(११६९) त्वं न इन्द्राभर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
आ वीरं पृतनासहम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४०५) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१२ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(११७०) त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।

१ २ ३ १ २
अथा ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥

भावार्थः–(वसो) सब के अन्तर्यामित्व से सब में बसने वाले ! (शतक्रतो) बहुत कर्मों=सृष्टि उत्पत्ति स्थितियों के कर्त्ता ! (त्वम्) आप (हि) ही (नः) हमारे (पिता) पिता और (त्वम्) आप ही (माता) माता (बभूविथ) सृष्ट्यारम्भ में हुये थे (अथ) इस लिये (ते) आप के ही (सुम्नम्) सुख आनन्द को (ईमहे) हम मांगते हैं ॥ ऋ० ८ । ९८ । १० में भी ॥२॥

अथ तृतीया–

१ २ ३ २ ३ १ २
(११७१) त्वाᳬ शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुपब्रुवे सहस्कृत ।
१ २ ३ १ २
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ [१३]

भावार्थः–(शुष्मिन्) बलवन् ! (पुरुहूत) बहुतों से पुकारे हुवे ! (सहस्कृत) अतएव बलप्रद ! परमेश्वर ! (वाजयन्तम्) बल देते हुवे (त्वाम्) आप को (उपब्रुवे) मैं स्तुत करता हूं (सः) वह आप (नः) हमारे लिये (सुवीर्यम्) सुन्दर वीर्य को (रास्व) दीजिये ॥ निघण्टु २ । ९ में शुष्म, सहस्, वाज ये बल के नाम हैं ॥ ऋ० ८ । ९८ । ११ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य–भौमोऽत्रिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा–

१ २ ३ २उ ३ १ २
(११७२) यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
राधस्तन्नो विदद्वस उभया हस्त्याभर ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३४५) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

१२ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २र
(११७३) यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदाभर ।

३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥ २ ॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) जिस को आप (वरेण्यम्) उत्तम (मन्य) समझें (तत्) उस (द्युक्तम्) अन्न को (आभर) हमें प्राप्त करावें (ते) आप के (तस्य) उस (अकूपारस्य) अनिन्दित परिपाक वाले (दावनः) अन्नदान के (विद्याम) हम योग्य होवें ॥ ऋग्वेद ५ । ३९ । १ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १ ३ २ १ १ २ ३ २ ३ २
(११७४) यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३॥ [१४]

भावार्थः—(अद्रिवः) हे वज्रवन् ! इन्द्र ! परमेश्वर ! (दित्सु) दिशाओं में (श्रुतम्) विख्यात (यत्) जो (बृहत्) बड़ा (प्रराध्यम्) आराधनीय (ते) आप का (मनः) ज्ञान (अस्ति) है (तेन) उस ज्ञान से (सातये) दान वा संभजन के लिये (दृढा) पुष्ट (चित्) भी (वाजम्) अन्न को (आ दर्षि) सब ओर से ढहाते [भरमार से देते] हो ॥ ऋ० ५ । ३९ । ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥

इति श्रीमत्कण्ववंशाऽवतंस श्रीमान् पण्डित हज़ारीलाल स्वामि के पुत्र परीक्षितगढ़ [ज़िला—मेरठ] निवासी तुलसीराम स्वामि कृत उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में आठवां अध्याय समाप्त हुआ

॥ ८ ॥

ओ३म्

अथ नवमाऽध्यायः

तत्र

प्रथमे खण्डे प्रथमसूक्तस्य—प्रतर्दन ऋषिः । सोमोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
(११७५) शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति, शुम्भन्ति
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २
विप्रं मरुतो गणेन कवीर्गीर्भि काव्येन
३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
कविः सन्, सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(मरुतः) सूर्यकिरणें वा ऋत्विज्लोग (गणेन) अपने समूह से (शिशुम्) नवीन (जज्ञानम्) उत्पन्न हुवे (हर्यतम्) मनोहर (विप्रम्) बुद्धितत्वयुक्त सोम को (मृजन्ति) शोधते और (शुम्भन्ति। सुशोभित करते हैं । (कविः) क्रान्तबुद्धितत्वयुक्त (कविः) शब्द करने के स्वभाववाला सोम (रेभन्) शब्द करता हुवा (काव्येन) वेदपाठ से और उस में भी (गीर्भिः) सोम की प्रशंसायुक्त ऋचाओं की वाणियों के साथ (पवित्रम्) दशापवित्र को (अत्येति) उल्लङ्घन कर जाता है ॥ ऋ० ९ । ९६ । १७ का पाठान्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(११७६) ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रनीथः
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र
पदवीष्कवीनाम् । तृतीयं धाम महिषः
२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
सिषासन् सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥२॥

भावार्थः—(यः) जो (ऋषिमनाः) ऋषियों का मन है जिस में, अतएव (ऋषिकृत्) ऋषि बनाने वाला (स्वर्षाः) सुन्दर गति वाला (सहस्रनीथः) बहुत प्रशंसा वाला [नीथा=स्तुतिः इति सायणः] (कवीनां पदवीः) कवियों बुद्धिमानों का उन्नतिकर्त्ता (महिषः) प्रशंसनीय (स्तुप्) प्रशस्य-मान (तृतीयं धाम) द्युलोकको (सिषासन्) विभक्त करना चाहने वाला सा (सोमः) सोम है वह (विराजम्) इन्द्र वायु को (अनुराजति) प्रकाशित करता है ॥ ऋ० ९ । ९६ । १८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र
(११७७) चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स
२र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
आयुधानि बिभ्रत् । अपामूर्मिं सचमानः
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥३॥ [१]

भावार्थः—(चमूषत्) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में स्थित (श्येनः) शिकरा [बाज़] (शकुनः) पक्षी सा बलवान् (विभृत्वा) आकाशविहारी (गोविन्दुः) सूर्यकिरणों में गया (द्रप्सः) जल में मिला (आयुधानि, बिभ्रत्) बिजुली रूपी शस्त्रों को, धारण करता हुआ (अपाम्, ऊर्मिं, समुद्रं, सचमानः) जलों की, लहरीयुक्त, अन्तरिक्ष को, सेवन करता हुआ, (महिषः) महान् सोम (तुरीयं धाम) द्युलोक पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोक इन तीनों में चतुर्थ से अद्भुत स्थान को (विवक्ति) सेवित करता है ॥ ऋ० ९ । ९६ । १९ में भी ॥ सायणाचार्य ने " द्रप्सः " और " आयुधानि " पदों की व्याख्या नहीं की दीखती, या जो दो पुस्तक हमने देखे, वे खण्डित हों । इसी से उस भाष्य की सङ्गती भी नहीं बैठती । और आश्चर्य है कि ज्वालाप्रसाद ने इन दोनों पदों के विना ही अन्वय पूरा कर दिया ॥ ३ ॥

अथ नवर्चस्य द्वितीयसूक्तस्य—असितदेवलावृषी । सोमोदेवता । गायत्रीछन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २
(११७८) एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् ।

१ २ ३ ३क २र
वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ १ ॥

भाषार्थः-(एते) ये (सोमाः) सोम (अस्य) इस (इन्द्रस्य) इन्द्र के (वीर्यम्) वीर्य वा शक्ति को (वर्धन्तः) बढ़ाते हुवे (प्रियम्) प्यारी (कामम्) कामना को (अभि) सर्वतः (अक्षरन्) वर्षाते हैं ॥ ऋग्वेद ९। ८।१ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया-

३ १ २ ३ २३ १ २ ३ २ ३ १ २
(११७९) पुनानासश्चमूपदो गच्छन्तो वायुमश्विना ।
१ २ ३ १ २
ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥ २ ॥

भाषार्थः-जो (पुनानासः) अभिषुत किये जाते हुवे और फिर (चमूपदः) पृथिवी आकाश के बीच में स्थित हुवे (वायुम्) वायु को और उस में के (अश्विना) प्राण अपान को (गच्छन्तः) प्राप्त होते हुवे सोम हैं (ते) वे (नः) हमारे लिये (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य को (धत्त) धारण करें॥ ऋग्वेद ९। ८। २ में भी ॥ २॥

अथ तृतीया-

१ २ ३ १ २ ३ १र २र
(११८०) इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवानां योनिमासदम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः-(सोम) हे सोम ! तू (पुनानः) अभिषुत किया जाता हुवा (इन्द्रस्य) इन्द्रनामक वायुविशेष वृष्टिकारक की (राधसे) सिद्धि के लिये (हार्दि) हृदय के स्थान को (चोदय) उत्तेजित कर। मैं इसी लिये (देवानां योनिम्) देवों के स्थान=यज्ञस्थल में (आसदम्) आकर बैठता हूं ॥ ऋ० ९। ८। ३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी-

३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(११८१) मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः ।

२ ३ १ २
अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४ ॥

भावार्थः—सोम ! (त्वा) तुझ को (दश) १० (क्षिपः) अङ्गुलियें (मृजन्ति) शोधती हैं (सप्त) ७ (धीतयः) होता लोग (हिन्वन्ति) अग्नि में पहुंचाते हैं (अनु) फिर (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (अमादिषुः) हृष्ट पुष्ट होते हैं ॥ ऋ० ९। ८। ४ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

१ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३क २र
(११८२) देवेभ्यस्त्वा मदाय कꣳ सृजानमति मेष्यः ।
१र २र
संगोभिर्वासयामसि ॥ ५ ॥

भावार्थः—सोम ! हम (देवेभ्यः) देवों के लिये (मदाय) हर्षार्थ, (मेष्यः) दशापवित्र को (अति सृजानम्) उलङ्घन करके छोड़ते हुवे (त्वा) तुझ को, (कम्) जिस से सुख हो, (गोभिः) सूर्य की किरणों से (सं—वासयामसि) सुवासित करते हैं ॥ ऋ० ९। ८। ५ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—

३ १ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र
(११८३) पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषोहरिः ।
२ ३ १ २
परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥

भावार्थः—(कलशेषु) द्रोण कलशों में (आ) सर्वतः (पुनानः) अभिषूयमाण (अरुषः) प्रकाशमान और (हरिः) अग्निसंबन्ध से धूम रूप में परिणत होकर हरा हुआ सोम (गव्यानि) किरणमय (वस्त्राणि) वस्त्रों को (पर्यव्यत) पहर लेता है ॥ ऋ० ९। ८। ६ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी—

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
(११८४) मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अपद्विषः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रो सखायमा विश ॥ ७ ॥

भावार्थः-(इन्दो) सोम ! (नः) हम सोमयाजियों को (मघोनः) धनी (आपवस्व) बनाव और (विश्वा) सब (द्विषः) शत्रुओं को (अप-जहि) मार तथा (सखायम्) अपने मित्र इन्द्र [वायु] को (आविश) प्रवेश कर ॥ ऋ० ९ । ८ । ७ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टमी-

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(११८५) नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतꣳ स्वर्विदम् ।
३ १ २ ३ १र २
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ८ ॥

भावार्थः-(नृचक्षसम्) चक्षु को हितकारी होने से मनुष्यों के दिखाने वाले (इन्द्रपीतम्) जिस का इन्द्र ने पान किया है उस (स्वर्विदम्) सुख-प्रापक (इषम्) अन्न (त्वा) तुझ सोम को (वयम्) हम याज्ञिक (भक्षी-महि) भक्षण करें और (प्रजाम्) सन्तान को पावें ॥ ऋ० ९ । ८ । ८ में भी ॥८॥

अथ नवमी-

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
(११८६) वृष्टिं दिवः परिस्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।
१ २ ३ १ २
सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥ ९ ॥ [२]

भावार्थः-(सोम) ओषधिराज ! तू (पृथिव्या) पृथिवी के (अधि) ऊपर (वृष्टिम्) वर्षा और (द्युम्नम्) अन्न को (परि-स्रव) सर्वतः वर्षाव और (नः) हमारे लिये (पृत्सु) संग्रामों में (सहः) बल को (धाः) धारण करा ॥ ऋ० ९ । ८ । ९ में भी ॥ ९ ॥

इति नवमाऽध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीये खण्डे नवर्चस्य सूक्तस्य-असितदेवलावृषी । सोमोदेवता । गायत्रीछन्दः ॥ तत्र प्रथमा-

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(११८७) सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः ।

३ १र २र ३ २
वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(अत्यऽवि) भेड़ की रोम के दशापवित्र को उल्लङ्घित करने वाला (पुनानः) शोधा जाता हुवा (सहस्रधारः) बहुत धारायुक्त(सोमः) सोम (इन्द्रस्य, वायोः) इन्द्र जो कि वायु है उस के (निष्कृतम्) स्थान को (अर्षति) जाता है ॥ ऋ० ९ । १३ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १र २र
(११८८) पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्रगायत ।
३ २ ३ १ २
सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥

भावार्थः—(अवस्यवः) हे रक्षा को चाहने वालो ! तुम (देववीतये) देवों=वायु आदि के भक्षण यज्ञार्थ (सुष्वाणम्) अभिषुत किये जाते हुवे (विप्रम्) मेधातत्वयुक्त (पवमानम्) सोम को (अभि—प्रगायत) प्रशंसित करो ॥ ऋ० ९ । १३ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
(११८९) पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।
३ २ ३ १ २
गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥

भावार्थः—(देववीतये) यज्ञसिद्ध (वाजसातये) और बल प्राप्ति के लिये (गृणानाः) प्रशस्यमान (सहस्रपाजसः) बहुबलयुक्त (सोमाः) सोम (पवन्ते) पवित्रता करते हैं ॥ ऋ० ९ । १३ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(११९०) उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः ।
३ १ २ ३ १ २
द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—उस प्रशंसा को कहते हैं कि:—(इन्दो) सोम ! (नः) हमारे लिये (वाजसातये) बलदानार्थ (बृहतीः) बहुत बड़े (इषः) अन्नों को (उत) और (द्युमत्) प्रकाशमान (सुवीर्यम्) शोभन वीर्य को (पवस्व) वर्षाओ ॥ ऋ० ९ । १३ । ४ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(११९१) अत्या हियाना हेतृभिरसृग्रं वाजसातये ।
२उ ३ १ २ ३ १ २
विवारमव्यमाशवः ॥ ५ ॥

भावार्थः—(न) जैसे (आशवः) धाण (हेतृभिः) चलाने वालों से (हियानाः) चलाये हुवे (वाजसातये) संग्राम के लिये छोड़े जाते हैं, वैसे ही (अत्याः) निरन्तर गमनयोग्य सोम भी (अव्यम्) भेड़ के (वारम्) वालमय दशापवित्र को (वि—असृग्रम्) विसर्जन किये जाते हैं ॥ पदपाठ में "अत्याः" एक पद होने से जैसा कि सत्यव्रत सामश्रमी जी कहते हैं, सायणाचार्य की "अति—आ" की व्याख्या करना विरुद्ध है ॥ ऋ० ९ । १३ । ६ में भी ॥५॥

अथ षष्ठी—

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
(११९२) ते नः सहस्रिणꣳ रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
स्वाना देवास इन्दवः ॥ ६ ॥

भावार्थः—(स्वानाः) अभिषव किये जाते हुवे (ते) वे (देवासः) दिव्य (इन्दवः) सोम (नः) हमारे लिये (सहस्रिणम्) बहुत (रयिम्) धन तथा (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य को (आ—पवन्ताम्) सर्वतः वर्षावें ॥ ऋ० ९ । १३ । ५ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी—

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
(११९३) वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः ।
३ १र २र
दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ७ ॥

भावार्थः—(इन्दवः) सोम (गभस्त्योः) दोनों बाहुवों में (दधन्विरे) धारण किये जाते और (अभि) सर्वतः (अर्षन्ति) जाते फैलते हैं। (न) जैसे (वाश्राः) शब्द करती हुईं (मातरः) माता गौवें (वत्सम्) बछड़े के प्रति दौड़ती हैं तद्वत् ॥ ऋ० ९। १३। ७ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टमी—

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(११९४) जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत् ।
२ ३ २ ३ १ २
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥

भावार्थः—(इन्द्राय) राजा वा वायुविशेष वा यजमान के लिये (जुष्टः) सेवन किया हुवा (मत्सरः) तृप्तिकारक (पवमानः) सोम (कनिक्रदत्) शब्द करता और (विश्वा) सब (द्विषः) शत्रुओं को (अप—जहि) नाशता है॥ सायण और निरुक्त का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ९। १३। ८ में भी ॥८॥

अथ नवमी—

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(११९५) अप घ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।
१ २ ३ १ २
योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥

भावार्थः—(स्वर्दृशः) सुख दिखाने वाले, (अराव्णः अपघ्नन्तः) अधार्मिकों का नाश करने वाले (पवमानाः) सोम वा सोमपायी लोग (ऋतस्य) यज्ञ के (योनौ) स्थान में (सीदत) ठहरते हैं वा ठहरें ॥ ऋ० ९। १३। ९ में भी ॥ ९ ॥

इति नवमाऽध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

—:०*०:—

अथ तृतीयखण्डे नवर्चमेकं सूक्तं तस्य—असितदेवलावृषी । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(११९६) सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया ।

१ २ ३ १ २
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥

भावार्थः—(ऋतस्य) यज्ञ के (सुताः) अभिषुत (मधुमत्तमाः) अति माधुर्ययुक्त (इन्दवः) गीले (सोमाः) सोम (इन्द्राय) इन्द्र के लिये (धारया) धार से (सृज्यन्ते) छोड़े जाते हैं ॥ ऋ० ९ । १२ । १ का पाठ भेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १२ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
(११९७) अभि विप्रा अनूपत गावो वत्सं न धेनवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रꣳ सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

भावार्थः—(विप्राः) मेधावी ऋत्विज् लोग (सोमस्य) सोम के (पीतये) पानार्थ (इन्द्रम्) इन्द्र को (अभि—अनूपत) आभिमुख्य से स्तुत करते अर्थात् सोम अभिषुत होने पर इन्द्र की स्तुति वाले मन्त्रों को पढ़ते हैं । दृष्टान्त—(न) जैसे (धेनवः) दुधार (गावः) गौवें (वत्सम्) बछड़े को प्रीति से रंभा कर पुकारती हैं ॥ ऋ० ९ । १२ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(११९८) मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् ।
१ २ ३ १२ २र ३ २
सोमो गौरी अधिश्रितः ॥ ३ ॥

भावार्थः—(विपश्चित्) बुद्धिमत्वयुक्त (मदच्युत्) हर्ष का टपकाने वाला (सोमः) सोम (सिन्धोः) मन रूपी समुद्र की (ऊर्मा) लहरीरूप (सादने) स्थान में (गौरी अधि) वाणी में (श्रितः) आश्रित हुवा (क्षेति) निवास करता है ॥ शतपथ ७ । ५ । २ । ५२ और निघण्टु १ । ११ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । १२ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

३ १२ २र ३ २ ३ १ २
(११९९) दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते ।

२ ३ २ ३१२ ३२
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥

भावार्थः—(यः) जो (सोमः) सोम (सुक्रतुः) यज्ञकी शोभा और (कविः) क्रान्तबुद्धितत्त्वयुक्त तथा (विचक्षणः) विशेष कर दृष्टि को प्रसन्न करने वाला है वह (अव्याः) भेड़ के (वारे) वालमय ऊनी दशापवित्र पर (दिवः) आकाश की (नाभा) नाभि=यज्ञ में (महीयते) महिमा पाता है ॥ "यह यज्ञ संसार की नाभि है" ऐसा श्रुति में सुनते हैं ॥ ऋ० ९ । १२ । ४ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

१२ २२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१२००) यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः ।

२उ ३ १ २
तमिन्दुः परिषस्वजे ॥ ५ ॥

भावार्थः—(यः) जो (सोमः) सोम (कलशेषु) द्रोणकलशों में (आः) भरा रहता और (अन्तः पवित्रे) दशापवित्र के मध्य में (आहितः) रक्खा जाता है (तम्) उस सोम को (इन्दुः) आकाशस्थ चन्द्रमा (परिषस्वजे) किरणों द्वारा आलिङ्गन करता है ॥ ऋ० ९ । १२ । ५ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—

२उ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
(१२०१) प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।

२ ३ १ २ ३ १ २
जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥ ६ ॥

भावार्थः—(इन्दुः) चन्द्रमा (समुद्रस्य) आकाश के (विष्टपि अधि) विष्टब्धस्थान [नियतस्थान] में स्थित हुवा (मधुश्चुतम्) मधु टपकाने वाले (कोशम्) कोश=अपने मण्डल को किरण रूप से (वाचम्) वाणी के प्रति (प्र—इष्यति) भेजता है अर्थात् सोम का प्रभाव वाणी की मधुरता पर पड़ता है ॥ ऋग्वेद ९ । १२ । ६ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१२०२) नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुघाम् ।

३ १२ २२ ३ २

हिन्वानो मानुषा युजा ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(नित्यस्तोत्रः) निरन्तर प्रशंसनीय (वनस्पतिः) ओषधियों का राजा सोम (मानुषा युजा) मनुष्यों के जोड़े स्त्री पुरुषों के प्रति (सबर्दुघां धेनाम्) अमृत दुहने वाली वाणीरूप गौ को (हिन्वानः) प्रेरित करता हुवा वर्त्तमान है ॥ ऋ० ९ । १२ । ७ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ७ ॥

अथाऽष्टमी—

१ २ ३ २ ३ २ १

(१२०३) आ पवमान धारय रयिंꣳ सहस्रवर्चसम् ।

३ १ २ ३ १ २

अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(पवमान) हे शुद्ध किये गये ! वा शुद्धि करने वाले ! (इन्दो) सोम ! (अस्मे) हम में (सहस्रवर्चसम्) बहुत प्रकाश वाले (स्वाभुवम्) घर की शोभारूप (रयिम्) धन को (आ—धारय) सब ओर से रख ॥

ऋग्वेद ९ । १२ । ८ में भी ॥ ८ ॥

अथ नवमी—

३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १२ २२ ३ २

(१२०४) अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः ।

१ २ ३ १ २

सोमो हिन्वे परावति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(सः) वह (परावति, धारया, सुतः) उत्तमस्थान यज्ञ में, धार से, अभिषुत किया हुवा (कविः) क्रान्तकर्मा (विप्रः) बुद्धितत्त्वयुक्त (सोमः) सोम (दिवः) द्युलोक के (प्रिया) प्यारे स्थानों को (अभि हिन्वे) सर्वतः जाता है ॥ ऋग्वेद ९ । १२ । ९ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥

इति नवमाऽध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थे खण्डे पञ्चर्चमेकं सूक्तं तस्य-उचथ्यऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१२०५) उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः ।
३ १ २ ३ २
वाणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(सिन्धोः) समुद्र की (ऊर्मेः) लहरी के (स्वनः) शब्द (इव) से (ते) तेरे (शुष्मासः) वेग (उत्–ईरते) ऊपर को उठते हैं, सो तू (वाणस्य) वायुविशेष वृष्टिकारक इन्द्र के धनुष् में प्रयुक्त वाणतुल्य वेग के (पविम्) वज्र को (चोदय) प्रेरित कर अर्थात् वर्षा का प्रेरक हो ॥ ऋग्वेद ९ । ५० । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया

३ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
(१२०६) प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः ।
२उ ३ २ ३ १ ३
यदव्य एषि सानवि ॥ २ ॥

भावार्थः—सोम ! (यद्) जब कि (सानवि) पर्वतशिखर की आकृति वाले उच्च (अव्ये) ऊनी दशापवित्र पर (एषि) तू जाता है तब (मखस्युवः) यज्ञार्थी यजमानादि की (ते) तेरे (प्रसवे) अभिषवविषयक (तिस्रोवाचः) ३ ऋग्यजुः साम वेदों की वाणियें (उदीरते) उच्चारित होती हैं॥

अर्थात् जब सोम अभिषुत होकर दशापवित्र में रक्खा जावे तब यजमानादि याज्ञिकों को सोमाऽभिषवविषयक वेदमन्त्रों का उच्चारण करना होता है ॥ ऋ० ९ । ५० । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३१२ २२ ३ १ २
(१२०७) अव्या वारैः परि प्रियꣳ हरिꣳ हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

१ २ ३ १ २
पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(प्रियम्) देवतों के प्रसन्न करने वाले (हरिम्) हरे (मधुश्चुतम्) मधुर रस को टपकाने वाले (पवमानम्) सोम को (अव्याः) भेड़ के (वारैः) वालों से बने दशापवित्रों और (अद्रिभिः) पथरेटों से (परिहिन्वन्ति) पीस छेत छान कर त्यार करते हैं ॥ ऋ० ९ । ५० । ३ में भी ॥३॥

अथ चतुर्थी—

१ २ ३ २ ३ १ २
(१२०८) आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।
३ २ १ २ ३ १ २
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(मदिन्तम) हे हृप्तिकारकतम ! (कवे) क्रान्तकर्मन् ! सोम ! (अर्कस्य) सूर्य के (योनिम्) स्थान आकाश में (आसदम्) पहुंचने को (पवित्रम्) पवित्र किरण समूह को (धारया) धारा से (आपवस्व) शोध॥ हृप्तिपुष्टिकारक सोम के होम से पवित्र किरणें भी विशेष परिपूत होती हैं ॥ ऋ० ९ । ५० । ४ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१२०९) स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः ।
१ २ ३ १ २
एन्द्रस्य जठरं विश ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(मदिन्तम) अत्यन्त हृप्तिकारक, (अक्तुभिः) गमनशील किरणों से (अञ्जानः) सना हुवा (सोमः) सोम (इन्द्रस्य) सूर्य के (जठरम्) उदर=आकाश में (आविश) घुसता और (पवस्व) शुद्धि करता है ॥ ऋ० ९ । ५० । ५ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

इति नवमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमे खण्डे प्रथमसूक्तस्य तृचस्य—अमहीयुर्ऋषिः । सोमोदेवता गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा–

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २
(१२१०) अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
३ १ २ ३ १र २
अवाहन्नवतीर्नव ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४९५) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१२११) पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥

भावार्थः–सोमरस (सद्यः) शीघ्र (इत्थाधिये) सत्यकर्मा (दिवोदासाय) सोमयाजी और सोमपायी यजमान के लिये (त्यम्) उस (शम्बरम्) सुखशान्ति में विघ्नकारक, [शम्बरं पाठ हो तो वज्रपात करने वाले, वा जल] (तुर्वशम्) समीपस्थ (यदुम्) शत्रु पुरुष को (अध) और (पुरः) उस की पुरियों को "नष्ट करता है" यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है ॥ निघण्टु ३ । १०, २ । १, २ । १६ और २ । ३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ६१ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१२१२) परि नो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥ [६]

भावार्थः–(इन्दो) सोम ! (अश्वविद्) प्राणों के लाभदायक ! तू (नः) हमारे लिये (गोमत) इन्द्रियों से युक्त (हिरण्यवत्) तेज से युक्त (अश्वम्) प्राण को तथा (सहस्रिणीः इषः) बहुत से अन्नों को (परि क्षर) अभिवर्धित कर ॥ ऋ० ९ । ६१ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीय तृचस्य–भमहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ ३
(१२१३) अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमोऽअराव्णः ।
२ ३ १ २ ३ २
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४९२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १र २र १ २ ३ १र २र
(१२१४) महो नो राय आभर पवमान जहीमृधः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २ ॥

भावार्थः-(इन्दो) प्रकाशमान ! (पवमान) पवित्रस्वरूप परमात्मन् ! वा सोम ! (नः) हमारे लिये (महः) महा (रायः) धनों को (आभर) दीजिये और (मृधः) शत्रुओं को (जहि) मारिये तथा (वीरवत्) पुत्रादियुक्त (यशः) यश (रास्व) दीजिये ॥ ऋ० ९ । ६१ । २६ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१२१५) न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमामिनन् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
यत्पुनानो मखस्यसे ॥ ३ ॥ [७]

भावार्थः—हे सोम ! वा परमात्मन् ! (यत्) जब कि (पुनानः) शुद्धस्वरूप तू (मखस्यसे) धन देना चाहता है तब (शतं चन) बहुत भी (ह्रुतः) हरणशील हमारे शत्रु (राधः दित्सन्तं त्वा) धनादि देना चाहते हुवे तुझ को (न आमिनन्) नहीं मार सकते ॥ ऋ० ९ । ६१ । २७ में भी ॥३॥

अथ तृतीय तृचस्य—निध्रुविर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१२१६) अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।

३ १र २र ३२
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४८३) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २३ १ २३ १ २ ३ १र २र
(१२१७) अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि ।
३ १ २ ३ १ २
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ २ ॥

भावार्थः—(पवमानः) सोम=चन्द्रमा (अन्तरिक्षेण) आकाशमार्ग से (यातवे) प्रकाशित होकर जाने के लिये (सूरः) सूर्य के (एतशम्) किरण को (मनौ अधि) मन रूप आपे में (अयुक्त) युक्त करता है । चन्द्रमा का मानस होना तथा सूर्य से प्रकाश पाना संस्कृतभाष्य श्रुतियों में देखिये ॥ ऋ० ९ । ६३ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१२१८) उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥३॥ [८]

भावार्थः—(उत) और (इन्दुः) चन्द्रमा (यातवे) प्रकाशित होकर जाने के लिये (इन्द्रः) सूर्य मुझ में प्रकाशता है (इति) ऐसे (ब्रुवन्) मानो बोलता हुवा (त्याः) उन (सूरः हरितः) सूर्य की किरणों को (रथे) अपने रमणीय मण्डल में (अयुक्त) जोड़ता है ॥ ऋ० ९ । ६३ । ९ का पाठभेद और उपचारोक्ति संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

इति नवमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

अथ षष्ठे खण्डे प्रथम तृचस्य— वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३२३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१२१९) अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा, यजिष्ठं

३ १ २ ३ १ २ १र २ ३ १ २
दूतमध्वरे कृणुध्वम् । यो मर्त्येषु निध्रु-
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विर्ऋतावा, तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ १ ॥

भावार्थः—(सजोषाः) हे समानप्रीतिसेवायुक्त याज्ञिको ! तुम (यः) जो (मर्त्येषु) मनुष्यों में (निध्रुविः) निरन्तर स्थिर, (ऋतावा) सत्य और यज्ञ वाला, (तपुः) तापयुक्त तपाने वाला, (मूर्धा) सदा ऊपर को लपट रखनेवाला, (घृतान्नः) घी खानेवाला (पावकः) शुद्धि करने वाला है, उस (देवम्) प्रकाशमान, (यजिष्ठम्) यजनीयतम (अग्निम्) अग्नि को (अग्निभिः) अङ्गारों से (वः) तुम अपने (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञ में (दूतम्) दूत (कृणुध्वम्) बनाओ, जिस से उस२ देवता के उद्देशका हव्य पहुंचावे ॥ ऋ० ७ । ३ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
(१२२०) प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्, यदा महः संवरणाद्
१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र
व्यस्थात् । आदस्य वातो अनुवाति शोचि,
१२र ३ १ २ ३ १ २
रध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥

भावार्थः—पूर्व मन्त्र में अग्नि को सब देवों का दूत कहा था, उस में यह बताने को कि एकदेश यज्ञवेदि में ही स्थित अग्नि, दूर देशस्थ देवोंको भी हव्य भाग पहुंचा सकता है, यह मन्त्र कहता है कि (यदा) जब (यवसे) घास को (अविष्यन्) खाने को तयार (प्रोथत्) हींसते हुवे (अश्वः) घोड़े के (न) समान, (महः) भारी (संवरणात्) रुकावट [काष्ठ के ढेर] से (व्यस्थात्) निकलता हुआ स्थित होता है (आत् स्म) तब ही (अस्य) इस अग्नि की (शोचिः) लपट के (अनु) साथ (वातः) वायु (वाति) चल पड़ता है (अध) और (ते) उस अग्नि की (व्रजनम्) मार्ग (कृष्णम्) काली (अस्ति) है ॥

भाव यह है कि अग्नि की लपट के साथ वायु चल पड़ने से अग्नि को वायु की सहायता प्राप्त हो जाती है जिस से वह दूरस्थ देवभाग भी पहुंचा सकता है॥ ऋ० ७।३।२ में भी॥२॥

अथ तृतीया—

१ २र ३ १२ ३ २उ ३ १२ ३ १ २
(१२२१) उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा

३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
इधानाः। अच्छा द्यामरुषो धूम एषि

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
सन्दूतो अग्न ईयसे हि देवान्॥३॥ [९]

भावार्थः—अग्नि की सहायता को साथ ही वायु चल पड़ता है, यह तो पूर्व मन्त्र में कहा परन्तु अब यह बताते हैं कि वायु की सहायता पाकर भी अग्नि दूत, दूरस्थ देवों को किस प्रकार भाग पहुंचाता है—(अग्ने) हे अग्ने (वृष्णः) वृष्टि के हेतु (नवजातस्य) अरणियों में नवोत्पन्न (यस्य) जिस वायु से सहायता पाये हुये को (ते) तेरी (अजराः) बूढ़ी नहीं किन्तु जवान (इधानाः) प्रदीप्त लपटें (उत्) ऊपर को (चरन्ति) चलती हैं (अग्ने) हे अग्ने। तब तू (अरुषः) प्रकाशमान और (धूमः) यज्ञधूमयुक्त हुआ (दूतः) देवदूत (द्याम्) आकाश को (अच्छ) ओर (एषि) जाता है (हि) इस कारण (देवान्) सूर्यादि दूरस्थित देवों से (सम्—ईयसे) मिल जाता है॥ ऋ० ७।३।३ में भी॥३॥

अथ मैत्रावरुणमाज्यम् तद्विषये—

तमिन्द्रमिति तृचस्य द्वितीयसूक्तस्य—शुनःशेप ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
(१२२२) तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे।

१ २र ३ १ २
स वृषा वृषभो भुवत्॥१॥

इस की व्याख्या (११९) में हो चुकी है॥१॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १र २र ३ १र २र ३ १र २र ३ २
(१२२३) इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः ।
३ २ ३ २उ ३ २
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥

भावार्थः—(सः) वह (इन्द्रः) वृष्टिकर्त्ता (दामने) अन्नधनादि देने के लिये (कृतः) परमेश्वर ने बनाया है (ओजिष्ठः) वह अतिबलयुक्त है (सः) वह (बले) बलवान् सोम में (हितः) रक्खा गया है (द्युम्नी) अन्नवाला (श्लोकी) इसी से कीर्त्तिवाला (सः) वह (सोम्यः) सोमाहुति के योग्य है ॥ ऋ० ८ । ९३ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २उ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(१२२४) गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः ।
३ २ ३ १र २र
ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥ ३ ॥ [१०]

भावार्थः—(वज्रः) वज्र (न) सा (सबलः) बलयुक्त (अनपच्युतः) शिथिलतारहित (उग्रः) तीव्र (अस्तृतः) न मारा हुवा इन्द्र (ववक्ष) हमारे लिये जलादि का वहन करना चाहता है । इसलिये (गिरा) वेद वाणी द्वारा (संभृतः) परमात्मा ने धारण किया और कराया है ॥

वायुविशेष इन्द्र के जड़ होने पर भी " वहन करने की इच्छा " कहना ऐसा ही औपचारिक है जैसा कि " दीवार वा भित्ति गिरना चाहती है " इत्यादि में ॥ ऋ० ८ । ९३ । ९ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

इति नवमाऽध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

उक्तान्याज्यानि

इदानीं माध्यन्दिनः पवमान इति विव०

अथ सप्तमे खण्डे प्रथमतृचस्य—उचथ्य ऋषिः । पवमानः सोमो देवता ।
१ । २ गायत्री, ३ निचृद्गायत्री च छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २
(१२२५) अध्वर्यो अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र आनय।
३ १ २ ३ १ २
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४९९) में हो गई ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ २२
(१२२६) तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत।
१ २ ३ १ २
पवमानस्य मरुतः ॥ २ ॥

भावार्थः—(इन्दो) हे सोम! (पवमानस्य) स्वयं शुद्ध और अन्यों के शोधक तथा (मधोः) मधुर (अन्धसः) अन्न का (तव) तेरा (त्ये) वे (मरुतः) वायु और तत्रस्थ अन्य (देवाः) देवता (व्याशत) विविध भोजन करते हैं॥ ऋ० ९। ५१। ३ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(१२२७) दिवः पीयूषमुत्तमꣳ सोममिन्द्राय वज्रिणे।
३ २ ३ १ २
सुनोता मधुमत्तमम् ॥ ३ ॥ [११]

भावार्थः—हे अध्वर्युलोगो! तुम (मधुमत्तमम्) अति मधुर (दिवः) आकाश के (पीयूषम्) अमृत (उत्तमम्) उत्तम (सोमम्) सोमरस को (वज्रिणे) विजुली वाले (इन्द्राय) मेघवर्षक वायुविशेष के लिये (सुनोत) अभिषुत करो॥ ऋ० ९। ५१। २ में भी ॥ ३ ॥

अथ धर्त्तादिव इति द्वितीयतृचस्य—कविर्ऋषिः। पवमानःसोमोदेवता। त्रिष्टुप्, विराड् जगती, निचृज्जगती चेति तिसृणां क्रमेण छन्दांसि॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१२२८) धर्त्ता दिवः पवते कृत्व्योरसो, दक्षो देवानाम-

३ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १र २र ३
नमाक्रोनृभिः हरिः। सृजानो अत्योन सत्वभि
२ ३ १ २ ३ २
र्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५५८) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २
(१२२९) शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः, स्वाः३ सिषा-
३ १ २र १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
सन्रथिरो गविष्टिषु। इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभि-
१ २ ३ १ २ ३ १ २
रिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ २ ॥

भावार्थः—(अपस्युभिः) कर्मकाण्डार्थी (मनीषिभिः) बुद्धिमान् ऋत्विजों से (हिन्वानः) हवन किया हुवा (इन्दुः) सोम (इन्द्रस्य) वृष्टिकारक वायु विशेष के (शुष्मम्) बल को (ईरयन्) प्रेरता बढ़ाता हुवा (अज्यते) सूर्य किरणों से मिलता है। दृष्टान्त—(न) जैसे (रथिरः) रथी (शूरः) शूरवीर योद्धा (स्वः) स्वाधीनतारूप सुख को (सिषासन्) बांटना चाहता हुवा (गभस्त्योः) दोनों हाथों में (आयुधा) खड्ग, चर्म, परशु, पाश इत्यादि अस्त्र शस्त्रों को (धत्ते) धारण करके तैयार होता है। ऐसे ही (गविष्टिषु) सूर्य किरणों के यज्ञों में सोम इन्द्र को तैयार करता है ॥ ऋ०९। ७६। २ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१२३०) इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा, तविष्यमाणो
३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
जठरेष्वाविश। प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी,
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
धिया नो वाजाँ उपमाहि शश्वतः ॥३॥ [१२]

भावार्थः—हे (पवमान) शोध्यमान ! (सोम) सोम ! तू (तविष्यमाणः) वृद्धि को प्राप्त होवेगा सो (इन्द्रस्य) वायुविशेष इन्द्र के (जठरेषु) पेटों में (ऊर्मिणा) लहरी द्वारा (आविश) प्रवेश कर (इव) जैसे कि (विद्युत्) बिजुली (अभ्रा) बादलों में प्रवेश करती है और (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोक को (प्र-पिन्व) दुह अर्थात् वृष्टि तथा खेती को सम्पन्न कर और (धिया) यज्ञ कर्म से (नः) हमारे लिये (शश्वतः) बहुत (वाजान्) अन्न, धन, बल आदि पदार्थों को (उप—माहि) प्राप्त करा ॥ यदि इन्द्र कोई देहधारी विशेष विवक्षित होता तो १ इन्द्र का एक ही जठर=पेट होता, यहां "जठरेषु" इस बहुवचन से स्पष्ट होता है कि आकाशप्रदेश जिस में से वर्षा होती है, बहुत है, और इस लिये उस को इन्द्र का जठर=उदर मान कर बहुवचन प्रयुक्त किया है ॥ ऋ० ९ । ७६ । ३ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

उक्तोमाध्यन्दिनः पवमानः । इदानीं पृष्ठान्युच्यन्ते इति वि० ॥

अथ प्रगाथस्य द्वितीयसूक्तस्य—देवातिथिः काण्वऋषिः । इन्द्रोदेवता । क्रमेण भुरिगनुष्टुप्, निचृत्पङ्क्तिश्च छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २उ ३ २ ३क २र ३ २ ३ १ २
(१२३१) यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
१ २ ३१र २र ३ २ ३१ ३१२
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥

इस की व्याख्या (२७९) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २३ १२३ १ २३ २३ १२ ३ १२३
(१२३२) यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे
१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सचा । कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस
३ १र २र ३ १ २
इन्द्रायच्छन्त्यागहि ॥ २ ॥ [१३]

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यद्वा) यद्यपि आप (रुमे) क्या रमणीय देश और क्या (रुशमे) हिंसकदुष्ट, तथा क्या (श्यावके) अन्धियारे

और (कवे) क्या समर्थ, (सचा) सर्वत्र एक साथ ही एकरस (मादयसे) अपने आनन्दस्वरूप से वर्त्तमान हैं । तथापि (ब्रह्मवाहसः) वेदवाहक (कण्वासः) मेधा=धारणावती बुद्धि वाले लोग जब (त्वा) आप को (स्तोमेभिः) वैदिकस्तुतिमन्त्रों से (आयच्छन्ति) ढूंढते हैं, तब (आगहि) आप प्राप्त होते हैं ॥ निघण्टु ३ । १५ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ४ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ अच्छावाकं साम—इति विव०

चतुर्थप्रगाथसूक्तस्य—भर्गः प्रागाथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद् बृहती पङ्क्तिश्चेति क्रमेण छन्दसी ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

(१२३३) उभयꣳ शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३

सत्राच्या मघवान्त्सोम पीतये धिया शविष्ठ

१ २

आगमत् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (२९०) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२उ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

(१२३४) तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः ।

३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २

उतोपमानां प्रथमो निषीदसि सोमकामꣳ हि

३ १ २

ते मनः ॥ २ ॥ [१४]

भावार्थः—पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति करके हे इन्द्र ! परमेश्वर ! (तम्) पूर्वोक्त (स्वराजम्) स्वयंराजमान (तम्) उस (वृषभम्) कामवर्षक आप को (धिषणे) द्युलोक और पृथिवी लोक के निवासी (ओजसा) परमपुरुषार्थ आत्मिकबल से (निष्टतक्षतुः) ढूंढ पाते हैं (हि) क्योंकि (ते) आप का

(मनः) ज्ञान (सोमकामम्) ह्रद्गतसौम्यभाव को चाहता है (उत) और आप (उपमानाम्) आकाशादि उपमानों में (प्रथमः) मुख्य अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म हैं (निषीदसि) और व्यापक होने से निरन्तर सर्वत्र वर्त्तमान हैं ॥

ऋ० ८ । ६१ । २ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

इति नवमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

० उक्तानि पृष्ठानि इति विवरणकारः

अथाऽष्टमे खण्डे प्रथमतृचस्य—निध्रुविः काश्यप ऋषिः । पवमानः सोमो देवता । आद्ययोर्निचृद् गायत्री, अन्त्याया गायत्री च छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१२३५) पवस्व देवआयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
३ १र २र ३ १ २
वायुमारोह धर्मणा ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४८३) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१२३६) पवमान नितोशसे रयिंॅ सोम श्रवाय्यम् ।
१ २ ३ १र २र
इन्दो समुद्रमाविश ॥ २ ॥

भावार्थः—(पवमान) शुद्धिकारक ! (इन्दो) आर्द्र ! (सोम) ओषधिराज ! (नितोशसे) वृत्र=मेघ को मारता=वर्षाता है, सो तू (श्रवाय्यम्) श्रवणीय प्रशस्त (रयिम्) धनधान्यप्रद (समुद्रम्) आकाश में (आविश) घुस ॥ ऋ० ९ । ६३ । २३ के पाठ का भेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १ २
(१२३७) अपघ्नन् पवसे मृधः० ॥ ३ ॥ [१५]

इस की व्याख्या (४९२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—अम्बरीषऋजिश्वा च ऋषी । पवमानः सोमो देवता । १ । २ अनुष्टुप्, ३ निचृदनुष्टुप् च छन्दसी ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २
(१२३८) अभी नो वाजसातमम्० ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५४९) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ ३
(१२३९) वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।
१ २र ३ १र २र ३ १ २
निनेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥२॥

भाषार्थः—(अध्रिगो) हे अचल ! (वसो) सब के निवासहेतो ! परमेश्वर ! (ते) तेरे (सुम्ने) सुख=मोक्षानन्द में (वयम्) हम तेरे सेवक (नि) निरन्तर (नेदिष्ठतमाः) अत्यन्त समीप रहने वाले (स्याम) हों तथा (ते) तेरे (अस्य) इस ऐहिक सुख, (राधसः) धन, और (पुरुस्पृहः, वसोः) बहुतों के चाहे हुवे, निवास के हेतु (इषः) अन्न के भी समीप रहने वाले होवें ॥

तात्पर्य यह है कि हे परमेश्वर ! ऐसी कृपा हो कि जब तक हम जीवें तब तक धन धान्य आदि संपत्ति ऐहिक सुखसाधन पास रहें और अन्त में मोक्ष के आनन्दभागी हों ॥

निघण्टु २ । १०, २ । ७, ३ । ६ निरुक्त ५ । ११ के प्रमाण और ऋ० ९ । ९८ । ५ के पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २
(१२४०) परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ३ [१६]

भाषार्थः—(गव्ययुः) सूर्यकिरणों का चाहने वाला (ऊर्ध्वः) ऊर्ध्वगामी (यः) जो सोम (भ्राजा) प्रकाशमान दीप्ति के साथ (न) जैसे जाता है, तद्वत् दीप्ति के साथ (अध्वरे) यज्ञ में (धारा) धार के साथ याति) जाता है (स्वानः) अभिषूयमाण (स्यः) वह (इन्दुः) गीला

सोमरस (मदच्युतः) हर्ष के लिये वेदमन्त्रों से प्रेरित=उपदिष्ट हुवा (अव्ये) ऊर्णामय दशापवित्र पर (परि) सर्वतः (अक्षरत्) टपकता है ॥
ऋ० ९ । ९८ । ३ के पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ तृतीयसूक्तस्य—अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरा ऋषयः । पवमानः सोमो देवता । १ आर्ची भुरिग्गायत्री २ । ३ आर्ची स्वराड् गायत्री च छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
(१२४१) पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम १

इस की व्याख्या (४०९) में होगई ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १
(१२४२) शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे
३ १र २र ३ १ २
पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः ॥ २ ॥

भावार्थः—(सोम) हे शान्तिधाम ! (शुक्रः) आशुकारी आप (देवेभ्यः) सूर्यादि देवों, (दिवे) अन्तरिक्ष, (पृथिव्यै) पृथिवीलोक (च) और (प्रजाभ्यः) वहां २ की प्रजाओं के लिये (शम्) सुख (पवस्व) वर्षाइये ॥
ऋ० ९ । १०९ । ५ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१२४३) दिवो धर्त्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन् ।
२ १ २
वाजी पवस्व ॥ ३ ॥ [१७]

भावार्थः—हे शान्तस्वरूप ! परमेश्वर ! तू (शुक्रः) शीघ्र सृष्ट्यादि करने वाला (पीयूषः) अमृतस्वरूप (वाजी) अतिबलवान् है, सो सर्वशक्तिमत्ता से (दिवः) द्युलोकादि का (धर्त्ता) धारक (असि) है । सो हे पिता ! तू (सत्ये) कारण के नाश न होने से सत्य=त्रिकालाऽबाध्य (विधर्मन्) विविध धर्म वाले जगत् में (पवस्व) हमें पवित्र कर ॥ ऋ० ९ । १०९ । ६ में भी ॥३॥

यज्ञायज्ञीयमग्निष्टोमसाम इति वि०

इति उत्तरार्चिके नवमाध्यायस्याऽष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अथ नवमे खण्डे

प्रथमतृचस्य—उशनाऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ ३ २
(१२४४) प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् ।
२ ३ २ ३ १र २र
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥१॥

इस की व्याख्या (५) में हो गई ॥ १ ॥

इदानीमुक्थसामानि भवन्ति औशनं प्रथममुक्थम् इति विव०

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
(१२४५) कविमिव प्रशꣳस्यं यं देवास इति द्विता ।
१र २र ३ २
नि मर्त्येष्वादधुः ॥ २ ॥

भावार्थः—(यम्) जिस अग्नि का (देवासः) विद्वान् (द्विता) गार्हपत्य और आहवनीयरूप दो प्रकार से (नि—आ—दधुः) आधान करते हैं "उस की प्रशंसा कर" यह पूर्वमन्त्र से सम्बन्ध है । जो (कविमिव) विद्वान् के समान (प्रशंस्यम्) प्रशंसनीय है ॥ ऋ० ८ । ८४ । २ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१२४६) त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुही गिरः ।
१ २ ३ २ ३ १र २र
रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ३ ॥ [१८]

भावार्थः—(यविष्ठ) हे अतिबलवत्तम ! ईश्वर ! (दाशुषः) दानादि से परोपकाररत (नॄन्) मनुष्यों की (पाहि) रक्षा कीजिये, (गिरः) उन की स्तुतियों को (शृणुहि) सुनिये (उत) और (तोकम्) उन के पुत्रादि सन्तान

वर्ग की (तना) अपने अनन्तसामर्थ्य से (रक्ष) रक्षा कीजिये ॥

भौतिकपक्ष में—(यविष्ठ) अति बलवान् अग्नि (दाशुषः) हव्यदान से होम करने वाले (नॄन्) कर्म के नेता कर्मकाण्डियों की रक्षा करता है और (गिरः) उन की वाणियों को सुनता अर्थात् जैसा २ वे चाहते हैं वैसा २ उत्तम काम उन का पूर्ण करता है और उन के सन्तानों की भी रक्षा करता है॥

तात्पर्य यह है कि जो लोग नित्यप्रति होम से वायु आदि देवों को हव्य देकर अग्निदूत के द्वारा तृप्त करते हैं, उन की कराई तृप्ति से प्रसन्न हुवे वे वायु आदि भौतिक देवता उन की और उन के सन्तानों की आयु की रक्षा करते तथा सब प्रकार उन की कामना पूरी करते हैं ॥ ऋ० ८। ८४। ३ में भी ॥३॥

अथ द्वितीयतृचस्य—नृमेधऋषिः । इन्द्रोदेवता । उष्णिक् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २
(१२४७) ऐन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।
३ २उ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥ १॥

इस की व्याख्या (३९३) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
(१२४८) अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
१र २र ३ १ ३ १र २र ३ २
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥

भावार्थः—(सत्य ! सोमपाः ! इन्द्र !) हे सच्चे सोम पीने वाले इन्द्र ! (हि) निश्चय तू (उभे) दोनों (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोक को (अभि बभूथ) दबा कर वर्त्तमान है, सो तू (सुन्वतः) सोमयाजी यजमान का (वृधः) बढ़ाने वाला और (दिवः) आकाश का (पतिः) पालक (असि) है ॥

तात्पर्य यह है कि आकाशगत वायुविशेष वृष्टि के हेतु इन्द्र के यज्ञ द्वारा यजन करने से यज्ञ करने वालों की वृद्धि होती है क्योंकि वह आकाश गत सब प्राणी और अप्राणियों का पालक और वर्धक है ॥ ऋ० ८।९८।५ में भी॥२॥

अथ तृतीया—

१र २र १ २ ३ २ ३ १र २र
(१२४९) त्वꣳहि शश्वतीनामिन्द्र दर्त्ता पुरामसि ।
३ २उ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥ [१९]

भावार्थः-(इन्द्र) हे वृष्टिहेतो ! वायुविशेष ! (त्वं हि) तू ही (शश्वतीनाम्) बहुत पुरानी (पुराम्) नगरियों का (दर्त्ता) फाड़ने वाला (दस्योः) असुर मेघ का (हन्ता) हनन करने वाला और (मनोः) यज्ञशील मनुष्य का (वृधः) बढ़ाने वाला (असि) है जो कि (दिवः पतिः) आकाश का पति है ॥

वायुभेद जो इन्द्र कहाता है उस से ही वर्षा होती हैं, इस लिये सोमादि ओषधि द्वारा यज्ञ करने से उस का आप्यायन, उस से वर्षा, उन से पुरानी भित्ति आदि गिर जाने से पुरों का भेदन और यज्ञ करने वाले मनुष्यों के धान्यादि बढ़ने से उन की वृद्धि होती है । ऋ० ८ । ९८ । ६ में भी ॥ ३ ॥

अथ मारुतं सोम इति त्रिव०

तत्र तृतीयतृचस्य जेताऋषिः । इन्द्रोदेवता । उष्णिक् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ १र २र ३ १र २र १
(१२५०) पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वाजी पुरुष्टुतः ॥
॥ १ ॥ वाजी=वज्रीति पाठान्तरेण ॥

इस की व्याख्या (३५९) में हो गई ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१२५१) त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।
२ ३ १र २र ३ १ २
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥२॥

भाषार्थः—(अद्रिवः) हे मेघवाले ! इन्द्र ! सूर्य ! (त्वम्) तू (गोमतः, अबिभ्युषः, वलस्य) किरणयुक्त, तथापि निर्भय, मेघ के (बिलम्) घने समूह को (अपाऽवः) तोड़ कर खोल देता है और तब (देवाः) पृथिव्यादि लोक (तुज्यमानासः) मेघ से भीगे हुवे (त्वाम्) तुझ को (आविषुः) प्राप्त होते हैं ॥ निघण्टु १ । १० का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १ । ११ । ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ २३ १ २
(१२५२) इन्द्रमीशानमोजसाऽभि स्तोमैरनूषत । सहस्रं यस्य
३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २
रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ३ ॥ [२०]

भाषार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (ओजसा ईशानम्) धारण आकर्षणादि विविध अद्भुत बल से ऐश्वर्यवान् (इन्द्रम्) सूर्य वा परमेश्वर की (स्तोमैः) प्रशंसाविधायक वेदमन्त्रों से (अभि—अनूषत) सर्वतः प्रशंसा करो ॥ ऋग्वेद १ । ११ । ८ में भी ॥ ३ ॥

इति पञ्चमस्यार्धः प्रपाठकः ॥

इतिश्रीमत्कण्ववंशावतंस श्रीयुत पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र परीक्षितगढ़ (ज़िला—मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में नवां अध्याय समाप्त हुवा

॥ ९ ॥

ओ३म्

अथ दशमाऽध्यायः

इदानीं नवममहः इतिविवरणकारः

तत्र

अक्रान्त्समुद्रइति प्रथमतृचस्य पराशरऋषिः। सोमोदेवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र
(१२५३) अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन्प्रजा
१ २र ३ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३
भुवनस्य गोपाः। वृषा पवित्रे अधि सानो
१ २ ३ १र २र ३ १र २र
अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानोअद्रिः॥१॥

इस की व्याख्या (५२९) में हो चुकी है॥ १॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१२५४) मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो, मत्सि मित्रावरुणा
३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ
पूयमानः। मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्,
३ १ २ ३ १ २
मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम॥ २॥

भावार्थः—(देव) दिव्यगुणयुक्त ! (सोम) सोम ! तू (नः) हमारे (राधसे) धन और (इष्टये) यज्ञ के लिये (वायुम्) साधारण वायु को (मत्सि) हृष्ट करता है, तथा (पूयमानः) शोध्यमान तू (मित्रावरुणा) प्राण और अपान को (मत्सि) बल देता है और (मारुतं, शर्धः) मरुतों=वायुभेदों के बल को (मत्सि) आप्यायित करता है और (देवान्) इन्द्रियों को (मत्सि)

पुष्टि देता है और कहां तक कहा जावे–(द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोक अर्थात् पृथिवी आकाश के प्राणी अप्राणी सब पदार्थों को (मत्सि) वृद्धि पुष्टि करता और तद्द्वारा हमारे धन धान्यादि बढ़ाता है॥ ऋग्वेद ९।९७।४२ में भी॥२॥

अथ तृतीया–

३ १र २र ३ १ २ ३ १र
(१२५५) महत्तत्सोमो महिषश्चकारा–ऽपां यद्गर्भो
२र ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
ऽवृणीत देवान्। अदधादिन्द्रे पवमान
१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः॥३॥

इस की व्याख्या (५४२) में हो चुकी है॥३॥

अथैवदेव इति द्वितीयस्य दशर्चसूक्तस्य शुनःशेप ऋषिः। पवमानः सोमोदेवता। गायत्री छन्दः॥ तत्र प्रथमा–

३ २ ३ २र ३ १ २
(१२५६) एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति।
३ १र २र ३ १ २
अभि द्रोणान्यासदम्॥१॥

भावार्थः–(एषः) यह (अमर्त्यः) अमृत (देवः) सोम (द्रोणानि) द्रोण कलशों में (आसदम्) स्थित होने को (अभि दीयति) सर्वतः जाता है, (पर्णवीरिव) जैसे पक्षी॥ ऋग्वेद ९।३।१ में भी॥१॥

अथ द्वितीया–

३२ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २
(१२५७) एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो विगाहते।
२ ३ १ २ ३ १ २
दधद्रत्नानि दाशुषे॥२॥

भावार्थः–(विप्रैः) मेधावी ऋत्विजों से (अभिष्टुतः) प्रशंसित (देवः) द्योतमान (एषः) यह सोम (दाशुषे) हवियों के दाता यजमान के लिये

(रत्नानि) रमणीय धनादि पदार्थ (दधत्) देता हुवा (अपः) वसतीवरी नामक जलों को (विगाहते) विलोडित करता है ॥ ऋ०९।३।६ में भी ॥ २॥

अथ तृतीया—

३ १२ २२ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१२५८) एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः ।
१ २
पवमानः सिषासति ॥ ३ ॥

भापार्थः—(एषः) यह (पवमानः) सोम (विश्वानि) सब (वार्या) वरणीय धनादि पदार्थों को (सिषासति) विभागपूर्वक देना चाहता है, (इव) जैसे कि (सत्वभिः) सेनाओं के साथ (यन्) चढ़ाई पर जाता हुवा (शूरः) शूरवीर सेनापति ॥ ऋग्वेद ९ । ३ । ४ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

३२ ३१ २ ३ १२
(१२५९) एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति ।
३ १ २ ३ २
आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ४ ॥

भापार्थः—(एषः) यह सोम (देवः) दिव्य गुणयुक्त है सो वह (रथर्यति) रथद्वारा जाता है । जैसा कि सोमयाग में आदरार्थ सोम को रथ में ले चलते हैं । (पवमानः) शुद्धि करता हुवा वह सोम (दिशस्यति) यजमानों के लिये धनैश्वर्यादि देना चाहता और सोम पीने वालों की (वग्वनुम्) वाणी को (आविष्कृणोति) प्रकट करता है ॥

सोमयाग से मनुष्यों के धनैश्वर्य बढ़ते और सोमपान से वाणी (आवाज़) सुधरती है, इत्यादि दिव्यगुण होने से सोमयाजी लोग यज्ञ में सोम के आदरार्थ सोम को रथ में ले चलते हैं ॥

ऋग्वेद ९ । ३ । ५ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१२६०) एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
२ ३ १ २
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(पवमानः) शोध्यमान (हरिः) हरित (एषः) यह (देवः) दिव्यगुण सोम (ऋतायुभिः) यज्ञ की कामना वाले (विपन्युभिः) ऋत्विजों द्वारा (वाजाय) बलप्राप्त्यर्थ (मृज्यते) संस्कृत किया जाता है॥ ऋग्वेद ९। ३। ३ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—

३ २ ३ २ ३ २३ २ ३ १२
(१२६१) एष देवो विपाकृतोऽतिह्वराᳬंसि धावति ।
१२ ३ १२
पवमानो अदाभ्यः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(विपा) अङ्गुलि से (कृतः) अभिषुत (एषः) यह (देवः) दिव्यगुण (पवमानः) सोम (अदाभ्यः) अहिंसित हुवा (ह्वरांसि) शत्रुओं और रोगों को (अतिधावति) अतिक्रमण करके जाता है अर्थात् दबाता है॥

भाव यह है कि सोमयाजियों के रोग और सोमपायियों के शत्रु नष्ट होते हैं॥ ऋग्वेद ९। ३। २ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी—

३ २उ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१२६२) एष दिवं विधावति तिरो रजाᳬंसि धारया ।
१ २ ३ १ २
पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(एषः) यह (पवमानः) सोम (धारया) धाराओं से [अग्नि में हुत हुवा] (कनिक्रदत्) चटचटा शब्द करता हुवा (दिवम्) द्युलोक तथा (रजांसि) अन्य लोकों को (तिरः) छिपा हुवा (विधावति) विविधता से जाता है ॥ ऋग्वेद ९। ३। ७ में भी ॥७॥

अथाऽष्टमी—

३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
(१२६३) एष दिवं व्यासरत्तिरो रजाᳬंस्यस्तृतः ।
१ २ २ ३
पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥

भावार्थः—(स्वध्वरः) यज्ञ सुधारने वाला (अस्तृतः) अहिंसित=किसी से न दबने वाला (एषः पवमानः) यह सोम (तिरः) अदृश्यरूप से (रजांसि) लोकान्तरों को (व्यावरत्) अनेकधा जाता है ॥ ऋ० ९ । ३ । ८ में भी ॥८॥

अथ नवमी—

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(१२६४) एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।
१ २ ३ १ २
हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥

इस की व्याख्या (७५८) में हो चुकी है ॥ ९ ॥

अथ दशमी—

३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१२६५) एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः ।
१ २ ३ २
धारया पवते सुतः ॥ १० ॥

भावार्थः—(एषः) यह (उ) ही (स्यः) वह सोम है जो (पुरुव्रतः) बहुत कर्म वाला (जज्ञानः) उत्पन्न होते ही (इषः) अन्नों=धान्यों को (जनयन्) उत्पन्न करता हुवा (धारया) अपनी धारों से (पवते) शुद्धि करता है ॥ ऋग्वेद ९ । ३ । १० में भी ॥ १० ॥

इति दशमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीये खण्डे—

एषधियेत्यष्टर्चसूक्तस्य—असितदेवलावृषी । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१२६६) एष धिया यात्यण्व्या शूरोरथेभिराशुभिः ।
२ ३ १ २ ३ ३ २
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(इन्द्रस्य) वायुविशेष वृष्टिकर्त्ता इन्द्र के (निष्कृतम्) स्थान आकाश को (गच्छन्) जाता हुवा (एषः) यह सोमरस (अण्व्या) सूक्ष्म

तम (धिया) कर्म से (याति) पहुंचता है॥ दृष्टान्त—जैसे (शूरः) शूरवीर (आशुभिः) शीघ्रगामी (रथेभिः) रथों से जाता है ॥ ऋ०९।१५।१ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३२ ३१ २ ३२ ३१२
(१२६७) एष पुरु धियायते बृहते देवतातये ।
२३ १२३ १२
यत्राऽमृतास आशत ॥ २ ॥

भावार्थः—(एषः) यह सोम (बृहते) बड़े (देवतातये) यज्ञ के लिये (धियायते) कर्म चाहता है (यत्र) जिस यज्ञ में (अमृतासः) वायु आदि देवता (आशत) खाते हैं ॥ ऋग्वेद ९। १५। २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३१ २ ३ २ ३२३ १ २ ३ १२
(१२६८) एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः ।
३ २ ३१२ २२
प्र चक्राणं महीरिषः ॥ ३ ॥

भावार्थः—(आयवः) ऋत्विज् लोग (महीः) बहुत (इषः) अन्नों को (प्र चक्राणम्) बहुतायत से उत्पन्न करने वाले (एतम्) इस (मर्ज्यम्) निचोड़ने योग्य सोम को (द्रोणेषु) द्रोण कलशों में (उप मृजन्ति) निचोड़ते हैं ॥ ऋग्वेद ९। १५। ७ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

३२ ३१२ २२ ३ २ ३ १२ ३२
(१२६९) एष हितो विनीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा ।
१२ ३२३ १२
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ४ ॥

भावार्थः—(यदि) जब (भूर्णयः) भरणशील व बहुत छे चलने वाले याज्ञिक लोग (तुञ्जन्ति) देवतों के लिये देते=यज्ञ करते हैं, तब (एषः) यह सोम (हितः) ढका हुवा (शुन्ध्यावता) शुद्धि वाले (पथा) मार्ग से (अन्तः) अभिषव स्थान से आहवनीय स्थान को दोनों के बीच में (वि—नीयते) विशेष सावधानी से लेजाया जाता है ॥ ऋ० ९। १५। ३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी–

३ २ ३   १ २   ३ २ ३ १ २ ३   १ २
(१२७०) एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः ।
२ ३   १   २ ३   १ २
पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥

भावार्थः–(वाजी) वेगवाला (एषः) यह सोम (सिन्धूनाम्) रसों का (पतिः) पति (भवन्) होता हुवा (रुक्मिभिः) सुवर्ण के सी चमकीली (शुभ्रेभिः) उज्ज्वल (अंशुभिः) सूर्यकिरणों से (ईयते) लेजाया जाता है, वा जाता है ॥

अथवा–सोम को अभिषवस्थान से आहवनीयस्थान तक लेजाने का प्रकार कहते हैं कि सोम (रुक्मिभिः) सुवर्णकङ्कणादि धारने वाले ऋत्विजों द्वारा (शुभ्रेभिः) स्वच्छ श्वेत (अंशुभिः) वस्त्रों से (ईयते) लेजाया जाता है ॥ ऋ० ९ । १५ । ५ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी–

३ १र   २र ३   १ २ ३   १ २   ३   २ १ २
(१२७१) एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्योवृषा ।
३   १र   २र ३   १ २
नृम्णा दधान ओजसा ॥ ६ ॥

भावार्थः–अब सोम को बलवान् होने से वृषभ के अलङ्कार में वर्णन करते हैं (नृम्णा) बलों को (दधानः) धारण किये हुवे (एषः) यह सोम (यूथ्यः, वृषा) यूथ में के वृष के समान (शिशीते) तीक्ष्ण (शृङ्गाणि) शृङ्गों को (दोधुवत्) कंपाता है अर्थात् बैल के समान उन्नत अंशुवों को फैलाता है॥ ऋ० ९ । १५ । ४ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी–

३ १र   २र   ३ १र   २र   ३ १र   २र
(१२७२) एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति ।
२ ३   १ २
अव शादेषु गच्छति ॥ ७ ॥

भावार्थः—(वसूनि) दुष्ट प्राणियों को (पिब्दनः) पीड़ा देता हुआ (एषः) यह सोम (परुषा) पर्व से (अति) अतिक्रमण करके (यविवान्) जाता हुवा (शादेषु) नाशनीय राक्षसों में (अव गच्छति) पहुंचता है ॥

अर्थात् सोम के हवन से वायुआदिगत दुष्ट प्राणी नष्ट होते हैं, इस लिये कि होमा हुवा सोम उन में पहुंचता है ॥ ऋ० ९ । १५ । ६ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टमी—

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २
(१२७३) एतमु त्यं दश क्षिपो हरिंᳮ हिन्वन्ति यातवे ।
३ २ ३ १ २
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥ [३]

भावार्थः—(हरिम्) हरे (त्यम्) उस (स्वायुधम्) "उत्तम आयुध वाले" (मदिन्तमम्) अत्यन्त हृष्टिपुष्टिकारक (एतम् उ) इसी सोम को (दश) दस (क्षिपः) अङ्गुलियें (यातवे) पहुंचाने को (हिन्वन्ति) प्रेरती हैं ॥ राक्षसों के हनन का सामर्थ्य दिखाने को "उत्तम आयुध वाले" यह विशेषण अलङ्कारोक्ति है और आयुध शब्द से यज्ञपात्रों का भी ग्रहण है ॥ ऋ० ९ । १५ । ८ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ८ ॥

इति दशमाऽध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ तृतीये खण्डे—

एष उ स्य इति षड्ऋचस्य प्रथमसूक्तस्य—रहूगण ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २
(१२७४) एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत ।
२ ३ १ २ ३ १ २
गच्छन्वाजंᳮ सहस्रिणम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(स्यः) वह (एषः) यह अभिषुत सोम (वृषा) वीर्यवान् और वीर्यवर्धक है, (रथः) रपटने के स्वभाव वाला है, सो (सहस्रिणम्) बहुत (वाजम्) बल को (गच्छन्) प्राप्त होता हुवा (अव्याः) भेड़ के (वा-

रेभिः) बालों से बने दशापवित्र से (अव्यत) द्रोणकलश में को रपट जाता है ॥ ऋग्वेद ९ । ३८ । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३२ ३२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
(१२७५) एतं त्रितस्य योषणो हरिंꣳ हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
२३ १ २ ३ १२
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

भावार्थः—(त्रितस्य) विद्या शिक्षा धर्मान्वित उत्तीर्ण विद्वान् ऋत्विज् की (योषणः) अङ्गुलियें (अद्रिभिः) अभिषवपाषाणों से (एतम्) इस (हरिम्) विना सूखे=हरे (इन्दुम्) सोम को (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं ॥ ऋग्वेद ९ । ३८ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २
(१२७६) एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
गच्छञ्जारो न योषितम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—(एषः) यह (स्यः) वह सोम है जो (योषितम्) व्यभिचारिणी स्त्री से (गच्छन्) समागम करते हुवे (जारः) व्यभिचारी पुरुष के (न) समान "गुप्तरूप" से (मानुषीषु) मनुष्यसम्बन्धिनी (विक्षु) प्रजाओं में (श्येनः) श्येन पक्षी (न) सा=बलवान् (आ—सीदति) प्राप्त हुवा स्थित है ॥ ऋग्वेद ९ । ३८ । ४ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

३ २उ ३ १ २र ३ १र २र
(१२७७) एष स्य मद्यो रसोऽवचष्टे दिवः शिशुः ।
२उ ३ २ ३ १ २
य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ४ ॥

भावार्थः—(एष) यह (स्यः) वह (मद्यः) हृष्टिपुष्टिकारक (रसः) सोमरस है (यः) जो (इन्दुः) गीला (वारम्) दशापवित्र को (आविशत्)

लिथड़ कर घुस जाता है और जो (दिवः) द्युलोक का (शिशुः) पुत्रवत् आह्लादक होकर (अवचष्टे) दृष्टिप्रसाद करता है ॥ऋ० ९।३८।५ में भी ॥४॥

अथ पञ्चमी—

१२३ ३ १२ ३ १र २र ३ २
(१२७८) एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २
क्रन्दन्योनिमभिप्रियम् ॥ ५ ॥

भावार्थ—(एषः) यह (स्यः) वह सोम है जो (पीतये) पीने के लिये (सुतः) अभिषुत किया हुवा (हरिः) हरा गीला (धर्णसिः) धारण करने वाला और धैर्य का उत्पादक (प्रियम्) प्यारे (योनिम्) स्थान=द्रोणकलश= एक प्रकार के पात्र में (क्रन्दन्) शब्द करता हुवा [सोंडे के सा] उफान भरता हुवा (अभि—अर्षति) ठसाठस भर जाता है ॥ ऋ० ९।३८।६ में भी ॥५॥

अथ षष्ठी—

१२३ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१२७९) एतं त्यꣳ हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ६ ॥ [४]

भावार्थः—(एतम्) इस (त्यम्) पूर्वोक्त सोम को अध्वर्यु ऋत्विज् की (दश) दश १० (अपस्युवः) कर्म चाहती हुई (हरितः) अङ्गुलियें (मर्मृज्यन्ते) शोधती हैं (याभिः) जिन अङ्गुलियों से (मदाय) तृप्ति पुष्टि के लिये (शुम्भते) शोधा जाता है ॥ ऋ० ९। ३८। ३ में भी ॥ ६ ॥

इति दशमाऽध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थे खण्डे—

एषवाजीति षड्चस्य—प्रियमेध ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
(१२८०) एष वाजी हितोनृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः ।
२ ३ २ ३ १ २
अव्यं वारं विधावसि ॥ १ ॥

भावार्थः—(एषः) यह (वाजी) बलवान् सोम (नृभिः) कर्म के नेता लोगों ऋत्विजों से (हितः) धारण किया हुवा (विश्ववित्) सब को मिलने वाला (मनसः) मन का (पतिः) पालन पोषण करने वाला है, सो यह (अव्यम्) ऊनी (वारम्) दशापवित्र को (वियावति) विविध प्रकार से जाता है॥ चन्द्रमा की उत्पत्ति वेद में समष्टि मन से वर्णन की है और सोमरस का चन्द्रमा से बहुत साधर्म्य है, इस लिये यहां व्यष्टिगत मन का भी सोमरस को पोषक बताना युक्त है ॥ ऋ० ९ । २८ । १ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
(१२८१) एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः ।
२ ३ १ २ ३ २
विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥

भावार्थः—(एषः) यह (सोमः) सोम (विश्वा) सब (धामानि) स्थानों में (आविशन्) प्रवेश करता हुवा (देवेभ्यः) वायु आदि देवों के लिये (सुतः) अभिषुत हुवा (पवित्रे) दशापवित्र पर (अक्षरत्) टपकता है ॥ ऋ० ९ । २८ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१२८२) एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः ।
३ १ २ ३ १ २
वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥

भावार्थः—(अमर्त्यः) अमृतरूप (देववीतमः) देवतों का सर्वोत्तम भोजन (वृत्रहा) रोगादि शत्रुओं का घातक (एषः) यह (देवः) दिव्य-गुणयुक्त सोम (अधि योनौ) स्थान में (शुभायते) शुभ करता है ॥ ऋ० ९ । २८ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१२८३) एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः ।

३ १ २र
अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥

भावार्थः—(एषः) यह सोम (वृषा) वीर्यवान् वीर्यप्रद और वृष्टिकर्त्ता है (कनिक्रदत्) शब्द करता हुवा (दशभिः) दशों (जामिभिः) अङ्गुलियों से (यतः) दबाया=निचोड़ा हुवा (द्रोणानि) द्रुम=वृक्षों से बने काष्ठमय द्रोणकलशनामक यज्ञपात्रों में (अभि धावति) अभितः जाता है ॥

ऋग्वेद ९ । २८ । ४ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१२८४) एष सूर्यमरोचयत्पवमानो अधि द्यवि ।
३ १ २ ३ १र २र
पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥

भावार्थः—(एषः) यह (मत्सरः) गाढा (मदः) हर्षकारक (पवमानः) सोम (पवित्रे) पवित्र (द्यवि अधि) द्युलोक में (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयत्) प्रकाशित करता है ॥

आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक भेद से ३ प्रकार का सूर्य है। अभिषुत किया, हवन किया और पिया हुवा सोम उन तीनों प्रकार से सूर्य को रुचि देता है । वृष्टि का कारण जो सूर्याग्नि है, वह सोम के हवन से ऐसी वृद्धि पाता है कि वर्षा करे, सोम के पीने से मानस सूर्य की रुचि बढ़ती है ॥ ऋ० ९।२८।५ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये और तदनुसार अर्थ भेद है ॥५॥

अथ षष्ठी—

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
(१२८५) एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता ।
१ २ ३ १र २र
पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥ ६ ॥ [५]

भावार्थः—(अदाभ्यः) अनिवार्यवीर्य, (वाचः पतिः) वाणी का सुधारक पालक पोषक, (संवसानः) सब का आच्छादन करता हुवा, (एषः) यह सोम—(विवस्वता सूर्येण) प्रकाशवाले सूर्य से (हासते) पृथिवी पर वर्षा के साथ त्यागा=छोड़ा जाता है ॥ ऋ० ९ । २८ । ६ में भी ॥ ६ ॥

इति दशमाऽध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमे खण्डे—

एष कविरिति षड्ऋचस्य—नृमेधऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१२८६) एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।
३ २उ ३ १ २
पुनानोघ्नन्नप द्विषः ॥ १ ॥

भावार्थः—(अभिष्टुतः) प्रशंसित (कविः) बुद्धितत्त्वयुक्त (पवित्रे अधि) दशापवित्र पर (पुनानः) शोध्यमान (एषः) यह सोम (द्विषः) रोगादि शत्रुओं को (अपघ्नन्) बाधित करता हुवा (तोशते) उन का नाश करता है॥ ऋ०९।२७।१ का पाठान्तर और सायण का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥१॥

अथ द्वितीया—

३ १ २र ३ १ २ ३ १र २र
(१२८७) एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परिषिच्यते ।
३ १ २ ३ १ २
पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥

भावार्थः—(दक्षसाधनः) बलकारी (स्वर्जित्) और सुख का जीतने वाला (एषः) यह सोम (इन्द्राय वायवे) इन्द्रनामक वायु के लिये अभि-षुत करके (पवित्रे) दशापवित्र पर (परिषिच्यते) टपकाया जाता है ॥ ऋग्वेद ९ । २७ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३२उ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
(१२८८) एष नृभिर्विनीयते दिवोमूर्धा वृषा सुतः ।
२ ३ १२ ३ २
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥

भावार्थः—(दिवः) द्युलोक वा सुख का (मूर्धा) मस्तकतुल्य (वृषा) वृष्टिहेतु (विश्ववित्) विश्व का लाभ (एषः) यह (सोमः) सोम (सुतः)

अभिषुत किया हुवा (वनेषु) वसतीवरीसंज्ञक जलों में (नृभिः) कर्म के नेता ऋत्विजों द्वारा (विनीयते) संस्कृत किया जाता है ॥ ऋ० ९।२७।३ में भी ॥३॥

अथ चतुर्थी—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१२८९) एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः ।
१ २ ३ १र २र
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥

भावार्थः—(गव्युः) सूर्यकिरणों को चाहने वाला और (हिरण्ययुः) तेज चाहने वाला (इन्दुः) प्रकाश करने वाला (सत्राजित्) सदा जीतने वाला और (अस्तृतः) स्वयं अन्यों से न हारने वाला (एषः) यह (पवमानः) सोम (अचिक्रदत्) शब्द करता है । ऋ० ९।२७।४ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

३ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१२९०) एष शुष्म्यऽसिष्यदद्ऽन्तरिक्षे वृषा हरिः ।
३ २उ ३ २ ३ २
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ५ ॥

भावार्थः—(शुष्मी) बलवान् (वृषा) वृष्टिकर्त्ता (हरिः) हरा (पुनानः) शुद्धि करता हुवा (एषः) यह (इन्दुः) सोम (अन्तरिक्षे) आकाश में (इन्द्रम्) वायुविशेष को (आऽसिष्यदत्) प्राप्त होता है ॥ ऋग्वेद ९।२७।५ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१२९१) एष शुष्म्यऽदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
३ १ २ ३ २
देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥ [६]

भावार्थः—(शुष्मी) बलवान् (अदाभ्यः) नष्ट न करने योग्य (देवावीः) देवों का उत्तम भोजन (अघशंसहा) पाप का नाशक (एषः) यह (सोमः)

सोम (पुनानः) शोध्यमान (अर्षति) [आकाश को] जाता है ॥ ऋग्वेद ९ । २८ । ६ में भी ॥ ६ ॥

इति दशमाध्यायस्य—पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठे खण्डे—

स सुत इति षड्टचस्य—रहूगणऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३२ ३ २३ २३ १२ २ ३ १ २
(१२९२) स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।
३ १२ २२ ३ २
विघ्नन् रक्षांꣳसि देवयुः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(वृषा) वीर्यवान् (देवयुः) देवकाम (सः) वह सोम (पीतये) देवतों के पानार्थ (सुतः) अभिषुत किया हुवा (रक्षांसि) राक्षसों को (विघ्नन्) विशेषकर नष्ट करता हुवा (पवित्रे) पवित्र अन्तरिक्ष में (अर्षति) जाता है ॥ ऋग्वेद ९ । ३७ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ २
(१२९३) स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः ।
३ २उ ३ १ २
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(धर्णसिः) धारक (विचक्षणः) आंख का हितकारी (हरिः) हरा (सः) वह सोम (कनिक्रदत्) शब्द करता हुवा (पवित्रे) पवित्र अन्तरिक्ष वा सूर्यकिरणसमूह में (योनिम्) स्थान को (अभि) लक्ष्यकरके (अर्षति) जाता है ॥ ऋग्वेद ९ । ३७ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३१२ २२ ३ १ २
(१२९४) स वाजी रोचनं दिवः पवमानो विधावति ।
३ १२ २२३ १ २
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥

भावार्थः-(दिवः) द्युलोक का (रोचनम्) रोचक (वाजी) बलवान् (रक्षोहा) राक्षसहन्ता (सः) वह (पवमानः) सोम (अव्ययम्) ऊनी (वारम्) दशापवित्र पर (विधावति) विविध प्रकार से जाता है ॥ ऋ० ९ । ३७ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(१२९५) स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
जामिभिः सूर्यं सह ॥ ४ ॥

भावार्थः—(त्रितस्य) विद्या शिक्षा और धर्म इन ३ पदार्थों से युक्त विद्वान् ऋत्विज् के (अधिसानवि) उच्च यज्ञ में (पवमानः) शोध्यमान (सः) वह सोम (जामिभिः) जलों के [निघं० १ । १२] (सह) साथ (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयत्) प्रकाशित करता है ॥ ऋ० ९ ।३७। ४ में भी ॥४॥

अथ पञ्चमी—

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २र
(१२९६) स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः ।
२ ३ १ २
सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥

भावार्थः—(सः) वह सोम (वृत्रहा) रोगादिशत्रुघातक (वृषा) वृष्य वीर्यवान् वीर्यवर्धक वर्षा करने वाला (सुतः) अभिषव किया हुवा (वरिवोवित्) यजमान को धनादि लाभ कराने वाला (अदाभ्यः) नष्ट करने योग्य नहीं है, सो (वाजमिव) संग्राम के घोड़े के समान (असरत्) वेग से जाता है ॥ ऋग्वेद ९ । ३७ । ५ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ १र २र
(१२९७) स देवः कविनेषितोऽभि द्रोणानि धावति ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(सः) वह सोम (इन्द्राय) वायुविशेष को (संहयन्) सत्कृत करता हुवा (देवः) द्योतमान और (इन्दुः) गीला किया हुवा (कविना) मेधावी अध्वर्यु से (इषितः) प्रेरित हुवा (द्रोणानि) द्रोणकलशों के (अभि) प्रति (धावति) वेग से जाता है ॥ ऋ० ९ । ३७ । ६ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ६ ॥

इति दशमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमे खण्डे—

यः पावमानीरिति षडृचस्य—पवित्रऋषिः । पावमान्यृचोदेवताः ।

अनुष्टुप्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

(१२९८) यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतꣳ रसम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सर्वꣳ स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥१॥

भाषार्थः—पवमान सोम के प्रकरण को समाप्त करते हुवे इस प्रकरण के अध्ययन का फल कहते हैं—(यः) जो मनुष्य (ऋषिभिः) ऋषियों के (संभृतम्) संग्रह किये हुवे (रसम्) वेद के साररूप (पावमानीः) पवमान सोम देवता सम्बन्धिसूक्तसमूह को (अध्येति) साङ्गोपाङ्ग पढ़ता है (सः) वह मनुष्य (मातरिश्वना) वायु से (स्वदितम्) स्वादु किये हुवे और (पूतम्) पवित्र किये हुवे (सर्वम्) सब भोज्य पदार्थों को (अश्नाति) खाता है ॥ ऋग्वेद ९ । ६७ । ३१ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २उ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

(१२९९) पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २

तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यः) जो (पावमानीः) पवमान देवता की ऋचों को (ऋषिभिः संभृतं रसम्) ऋषियों द्वारा संगृहीत वेद के सार रूप सूक्तसमुदाय का (अध्येति) पाठ करता है (सरस्वती) वेदवाणीरूपिणी देवता (तस्मै) उस के लिये (क्षीरम्) दुग्ध (सर्पिः) घृत और (मधु) मीठे (उदकम्) जल (दुहे) भर पूर देती है ॥ ऋ० ९ । ६७ । ३२ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३००) पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्च्युतः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतंहितम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—(पावमानीः) सोमप्रकरण की ऋचायें (स्वस्त्ययनीः) कल्याणी हैं, वे (सुदुघाः) सुन्दर फल की देने वाली हैं, वे (घृतश्च्युतः) जल की वर्षाने वाली हैं (ऋषिभिः) ज्ञानी ऋषियों ने (रसः) यह वेद का सार (संभृतः) इकट्ठा किया है (हि) सो यह (ब्राह्मणेषु) ब्राह्मणों में (अमृतम्) अमर बल (हितम्) रक्खा हुवा है ॥

अर्थात् जो पवमानसूक्त पढ़ते हैं, इन को उसके अनुकूल आचरण करने से सब सुख, वर्षा, दीर्घायु आदि फल प्राप्त होते हैं, इस लिये पवमानसूक्त मानो अमृतरूप हैं और वेद का सार हैं ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २
(१३०१) पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥४॥

भावार्थः—(देवीः) दिव्यगुणयुक्त (पावमानीः) पवमानदेवता की ऋचायें (नः) हमारे (इमम्) इस (लोकम्) लोक (अथो) और (अमुम्) परलोक को (दधन्तु) धारित करें तथा (देवैः) विद्वानों से (समाहृताः) संगृहीत की हुई वे ऋचायें (नः) हमारे (कामान्) कामों को (समर्धयन्तु) समृद्ध करें॥४॥

अथ पञ्चमी—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१३०२) येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥ ५ ॥

भावार्थः—(देवाः) वायुआदि देवता (येन) जिस (सहस्रधारेण) सहस्रकिरण सूर्य से (सदा) सर्वदा (आत्मानम्) आपे को (पुनते) शुद्ध

करते हैं (तेन) उस सूर्य से (पावमानीः) पवमान देवता की ऋचायें (नः) हम को (पुनन्तु) शुद्ध करें ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—

३ २ ३ १२३ १ २ ३२
(१३०३) पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।
१ २ ३१ २ ३१ २
पुण्यांश्च भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥६॥[८]

भाषार्थः—(पावमानीः) पवमानसंबन्धिनी ऋचायें (स्वस्त्ययनीः) स्वस्ति=अविनाश को प्राप्त कराने वाली हैं (ताभिः) उन के अध्ययन से मनुष्य (नान्दनम्) आनन्द को (गच्छति) प्राप्त होता है, (च) और (पुण्यान्) पवित्र शुद्ध निर्मल (भक्षान्) भोज्यों का (भक्षयति) भोजन करता है (च) तथा (अमृतत्वम्) अमरभाव को (गच्छति) प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥

इति दशमाऽध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

अथ

अष्टमे खण्डे अगन्मेति प्रथमतृचस्य वसिष्ठऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
(१३०४) अगन्म महा नमसा यविष्ठं, यो दीदाय समिद्धः
१ २३२ ३ १ २ ३ १२ ३ २३ १ २
स्वे दुरोणे । चित्रभानुꣳ रोदसी अन्तरुर्वी,स्वाहुतं
३ १२ ३ १ २
विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(यः) जो अग्नि (स्वे) अपने (दुरोणे) गृह आहवनीय वेदि में (समिद्धः) सुलगाया हुवा (दीदाय) प्रकाशता है, उस (यविष्ठम्) अति युवा अर्थात् प्रचण्ड, (उर्वी) विस्तृत (रोदसी) द्यावापृथिवी के (अन्तः) बीच अन्तरिक्ष में (चित्रभानुम्) विचित्र ज्वाला वाले,(स्वाहुतम्) भले प्रकार से होम किये हुवे, (विश्वतः) सब ओर को (प्रत्यञ्चम्) फैलते-

हुवे अग्नि को (मह्ना) बहुत (नमसा) अन्न=हविः के साथ (अगन्म) हम समीप जावें ॥ ऋ० ७ । १२ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३१२ २२ ३१ २ ३ २ ३ १ २३ २ ३
(१३०५) स महा विश्वा दुरितानि साह्वानग्निष्टवे दम

२ ३१ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
आ जातवेदाः । स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान्

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
गृणत उत नो मघोनः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(सः) वह (अग्निः) अग्नि (जातवेदाः) जिस के प्रकाश से लोक में घटपटादि पदार्थ दीखते और जान पड़ते हैं वा जिस से समस्त रत्नादि धन उत्पन्न हुवे हैं, (मह्ना) अपने महत्व से (विश्वा) सब (दुरितानि) रोगादि दुःखों को (साह्वान्) अभिभूत=तिरस्कृत करता हुवा (दमे) यज्ञशाला गृह में (आ—स्तवे) सर्वतः स्तुत किया जाता है (सः) वह अग्नि (गृणतः) स्तुति=अग्नि के वेदोक्त गुण कीर्त्तन रूप स्तोत्र पढ़ते हुवे (नः) हम लोगों को (उत) तथा (मघोनः) यज्ञ वाले (अस्मान्) हमलोगों को (नः) हमारे (अवद्यात्) निन्दनीय (दुरितात्) पाप से (रक्षिषत्) बचावे । यह चाहते हैं ॥ ऋग्वेद ७ । १२ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २२ ३२ ३ १ २ ३ १ २
(१३०६) त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने, त्वां वर्धन्ति

३ २ ३ १ २ १२ १२ ३ १ २
मतिभिर्वसिष्ठाः । त्वे वसू सुषणनानि सन्तु,

३ १ २ ३ २ ३ १ २
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ [९]

भाषार्थः—(अग्ने) अग्ने ! (त्वम्) तू ही (वरुणः) रोगादि दुःखों का निवारक (उत) और (मित्रः) सुखप्रापक मित्र है (वसिष्ठाः) अत्यन्त वसु सूर्यकिरणें (मतिभिः) मेधातत्वयुक्त अपने तेजों से (त्वाम्) तुझ अग्नि को (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं (त्वे) तुझ में विद्यमान (वसू) तैजस सुवर्णादि

रत्न धन (सुधनानि) भले प्रकार संविभाग वाले (सन्तु) हों (यूयम्) तुम अग्नि के अन्तर्गत वरुण मित्र आदि देवो ! (स्वस्तिभिः) क्षेम=सुखों से (नः) हमारी (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥ ऋ० ७ । १२ । ३ में भी ॥३॥

अथ द्वितीय तृचस्य—वत्सऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ २उ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(१३०७) महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँइव ।
१ २ ३ १ २
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥

भावार्थः—(वत्सस्य) वेदपाठी वक्ता के (स्तोमैः) वैदिक स्तोत्रों के साथ (ओजसा) बल से (महान्) अधिक (वृष्टिमान्) वर्षायुक्त (पर्जन्यः) बादल (इव) सा (यः) जो (इन्द्रः) वायुविशेष (वावृधे) बढ़ता है ॥ ऋग्वेद ८ । ६ । १ तथा यजुः ७ । ४० में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१३०८) कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् ।
३ १ २ ३ १ २
जामि ब्रुवत आयुधा ॥ २ ॥

भावार्थः—(कण्वाः) बुद्धिमान् स्तुतिकर्त्ता लोग (यत्) जब कि (इन्द्रम्) वायुविशेष को वा परमात्मा को (यज्ञस्य) यज्ञ का (साधनम्) साधक (अक्रत) करते=स्तुत करते हैं तब (आयुधा) यज्ञपात्रों को (जामि) निष्प्रयोजन (ब्रुवते) बताते हैं ॥ सायणाचार्य ने भी जामि का अर्थ अतिरेकार्थक मान कर 'निष्प्रयोजन' ही बताया है ॥ तात्पर्य यह है कि स्तोता लोग स्तुतिकाल में यज्ञपात्रों का प्रयोग नहीं करते ॥ ऋ० ८।६।३ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१३०९) प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ ३ ॥ [१०]

भावार्थः—(ऋतस्य) यज्ञ की (प्रजाम्) प्रजारूप इन्द्र=वायु को (यत्) जब कि (विप्रतः) आकाश में पूर्ण करते हुवे (वह्नयः) सूर्यकिरणें वा होमकुण्डस्थ अग्निज्वालायें (प्र-भरन्त) भरती हैं तब (विप्राः) ऋत्विज् ब्राह्मण लोग (ऋतस्य) यज्ञ के (वाहसा) पहुंचानेव ाले मन्त्रपाठ के साथ यजन आरम्भ करते हैं। जिन मन्त्रों द्वारा मनुष्य को यज्ञ का प्रकार और उस का फल ज्ञात हुवा, वे मन्त्र यज्ञ के पहुंचाने वाले समझने चाहियें ॥ ऋग्वेद ८। ६। २ में भी ॥ ३ ॥

इति दशमाऽध्यायस्याऽष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

उक्तान्याज्यानि इति,

इदानीं माध्यन्दिनः पवमानः इति च विव०

अथ नवमे खण्डे प्रथमतृचस्य—वैखानसऋषिः। सोमोदेवता। गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
(१३१०) पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत ।
३ १ २ ३ १ २
जीरा अजिरशोचिषः ॥ १ ॥

भावार्थः—(जिघ्नतः) अभिपूयमाण (हरेः) हरित (अजिरशोचिषः) सर्वत्रगमनशील तेज वाले (पवमानस्य) सोम की (चन्द्राः) आह्लादकरी (जीराः) धारायें (असृक्षत) अग्नि में छोड़ी जाती हैं ॥ ऋग्वेद ९। ६६। २५ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३११) पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।
१ २ ३ १ २
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २
(१३१२) पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः ।

१ २ ३ २ ३ १ २
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ [११]

भावार्थः—(पवमान) सोम ! (स्तोत्रे) प्रशंसा करने वाले यजमान के लिये (सुवीर्यम्) सुन्दर वीर्य को (दधत्) धारण करता हुवा=देता हुवा, (वाजसातमः) अत्यन्त बलदायक, (पवमानः) अभिपूयमाण, (रथीतमः) यज्ञ में रथ से ले जाया जाता है इस लिये अतिरथी, (शुभ्रशस्तमः) अति प्रकाशमान (हरिश्चन्द्रः) हरित वर्ण की चमक वाला, (मरुद्गणः) मरुत्=वायुभेद जिस के गण=सहायक हैं, (शुभ्रेभिः) उज्ज्वल (रश्मिभिः) किरणों के साथ (व्यश्नुहि) विविध प्रकार से व्यापे ॥ अष्टाध्यायी के प्रमाण और ऋग्वेद ९ । ६६ । २६—२७ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २—३ ॥

अथ द्वितीय तृचस्य— सप्तर्षय ऋषयः । पवमानः सोमोदेवता । तत्र प्रथमायाः विराड् बृहती छन्दः । सेयम्—

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
(१३१३) परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमोय उत्तमꣳ हविः ।
३ १२ २२ ३ २ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
दधन्वान्योनर्यो अप्स्वाऽ३ऽन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः॥१॥

इस की व्याख्या (५१२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः—भुरिग्बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
(१३१४) नूनं पुनानोऽविभिः परिस्रवाऽदब्धः सुरभिन्तरः । सुते
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
चित्त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥२॥

भावार्थः—सोम ! (अदब्धः) अहिंसित और (सुरभिन्तरः) अतिसुगन्ध युक्त, (नूनम्) निश्चय (पुनानः) शोध्यमान, (अविभिः) दशापवित्रों से (परिस्रव) टपक, (सुते, चित्) अभिषुत होने पर (अन्धसा) अन्न के साथ (गोभिः) इन्द्रियों से (श्रीणन्तः) मिलाते हुवे हम (उत्तरम्) उत्तम, (अप्सु) रसों में वर्त्तमान, (त्वा) तुझ हर्षकारक का (मदामः) सेवन करते हैं ॥

अर्थात् सोम की हानि न करके सुरक्षित करना, अभिषुत करना, दशापवित्र नामक ऊर्णामय पवित्र पर से टपकाना और अन्न के साथ भोजन में परिणत करके उसमें बल उत्पन्न करना हर्ष का उत्पादक है॥ ऋग्वेद ९। १०७। २ में भी॥ २॥

अथ तृतीयायाः पिपीलिकामध्या गायत्री छन्दः॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

(१३१५) परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः३ [१२]

भावार्थः—(स्वानः) अभिषव किया जाता हुवा (देवमादः) देवों का तृप्तिकारक (क्रतुः) यज्ञ का स्वरूप (इन्दुः) गीला सोम (विचक्षणः) आंखों का हितकारी है, सो (चक्षसे) तृप्तिप्रसादार्थ (परि) चारों ओर से फैलता है॥ ऋग्वेद ९। १०७। ३ में भी॥ ३॥

अथ तृतीयतृचस्य—वसुर्ऋषिः। सोमोदेवता। जगती छन्दः॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २

(१३१६) असावि सोमो अरुषो वृषा हरी, राजेव दस्मो

३ १र २र २ २उ ३ १ २ ३ १ २

अभि गा अचिक्रदत्। पुनानो वारमत्येष्यव्ययं,

३ १र २र ३ १ २ ३ २ २

श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत्॥ १॥

इस की व्याख्या (५६२) में हो चुकी है॥ १॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

(१३१७) पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या

३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २उ

गिरिषु क्षयं दधे। स्वसार आपो अभि गा

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

उतासरन् सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे॥ २॥

भावार्थः—अब यह बताया जाता है कि सोम का होम करने पर पुनः सोम की उत्पत्ति किस के साथ, किस स्थान में, किस से, किस रूप में होती है—(अध्वरे) यज्ञ (वीते) बीत चुकने पर (महिषस्य) बड़े (पर्णिनः)

पत्तों वाले सोम का (पर्जन्यः) मेघ (पिता) जनक होता है, और (पृथिव्याः) भूमि के (नाभा) नाभि=मध्य (गिरिषु) पर्वतों में (क्षयम्) निवास को [सोम] (दधे) धारण करता है, तथा (स्वसारः आपः) भगिनी के तुल्य जल (गाः) भूमियों को (अभि) अभिव्याप्त करके (उदासरन्) उच्चभाव से सब ओर जाते हैं और तब सोम (ग्रावभिः) पत्थरों के साथ (सं वसते) वास करता है ॥ अर्थात् यज्ञ से मेघ वर्षता है और वह जल तथा सोम को पर्वतों में वर्षा कर वहां सोम ओषधिराज को उपजाता है, क्योंकि सोम और अप् (स्त्रीलिङ्ग)=जलों को उत्पन्न करने वाला एक मेघ ही है, इस लिये सोम और जल का मेघ पिता कहा गया और सोम की बहन=भगिनियें अप् (जल) कही गईं। इस प्रकार सोम पर्वत प्रदेशों में वर्षा ऋतु में पत्ते वाली बूटी के रूपमें पत्थरों में रहता है । ढूंढिये तो पाइयेगा ॥ ऋ० ९ । ८२ । ३ के दो पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ २ ३ ५ ३ २ ३ १
(१३१८) कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि
२र ३ १ २ ३ १ २
वाजमर्षसि । अपसेधन्दुरिता सोम नोमृड
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
घृता वसान परियासि निर्णिजम् ॥ ३ ॥ [१३]

भावार्थः—(सोम) हे सोम ! (कविः) मेधायुक्त तू (वेधस्या) हमारी यज्ञ करने की इच्छा से (माहिनम्) आदरणीय दशापवित्र को (पर्येषि) सर्वतः प्राप्त होता है (न) जैसे (मृष्टः) स्नानादि से अलङ्कृत (अत्यः) अश्व (वाजम्) संग्राम को सामना करके जाता है तद्वत् तू भी मृष्टः=शोधित और अभिषुत होकर रोगादि शत्रुविनाशार्थ पान किया हुवा और होम किया हुवा (अभ्यर्षसि) सब ओर जाता है, तथा (दुरिता) दुःखों वा पापों को (अपसेधन्) विनष्ट करता हुवा (नः) हम को (मृड) सुखी कर । जो तू (घृता) उदकों में (वसानः) वसता हुवा (निर्णिजम्) दशापवित्र पर (परियासि) उतरता है ॥ ऋ० ९ । ८२ । २ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

इति दशमाऽध्यायस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

अथ

दशमे खण्डे प्रगाथात्मक प्रथमसूक्तस्य नृमेधऋषिः । इन्द्रोदेवता ।

बृहती छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २३ १र २र १ २

(१३१९) आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत । वसूनि

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

जातोजनिमान्योजसा प्रतिभागं न दीधिमः ॥१॥

इस की व्याख्या (२६७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १र २र ३ १र २र

(१३२०) अलर्षिरातिं वसुदामुपस्तुहि भद्रा इन्द्रस्य

३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३

रातयः । यो अस्य कामं विधतोन रोषति

१ २ ३ १ २ ३ १ २

मनोदानाय चोदयन् ॥ २ ॥ [१४]

भावार्थः–हे मनुष्य ! तू (अलर्षिरातिम्) दोषरहित दानी (वसुदाम्) धनदाता परमात्मा की (उपस्तुहि) उपासना करके स्तुति कर क्योंकि (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (रातयः) दान (भद्राः) कल्याणमय महैश्वर्यकारक हैं (यः) जो परमेश्वर (दानाय) दान के लिये (विधतः) सेवक (अस्य) इस भक्त के (मनः) मन को (चोदयन्) प्रेरित करता हुवा (कामम्) इस की कामना को (न) नहीं (रोषति) मारता=पूर्ण करता है ॥ ऋ० ८ । ९९ । ४ का पाठभेद और निरुक्त ६ । २३ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ द्वितीयप्रगाथस्य–भर्गऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१३२१) यत इन्द्र भयामहे ततोनोअभयं कृधि ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १र २र

मघवन् शग्धि तव तन्न ऊतये विद्विषोविमृधोजहि॥१॥

इस की व्याख्या (२७४) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१र २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
(१३२२) त्वꣳ हि राधसस्पते राधसोमहः क्षयस्यासि
३ २ १ २ ३ १ २
विधर्त्ता । तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः
३ १ २
सुतावन्तोहवामहे ॥ २ ॥ [१५]

भावार्थः—(राधसस्पते) हे धनपते ! (त्वम्) आप (हि) ही (महः) बड़े (राधसः) धन के और (क्षयस्य) निवास=ब्रह्माण्ड के (विधर्त्ता) विशेष से धारण करने वाले (असि) हैं। (गिर्वणः) हे वाणी से प्रशंसनीय! (मघवन्) धनैश्वर्यवन् ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (तम्) उस (त्वा) आप को (वयं सुतावन्तः) हम सोमाभिषव कर चुकने वाले (हवामहे) पुकारते= स्तुति करते हैं। इन्द्र=वायु पक्ष में भी ॥ ऋ० ८ । ६१ । १४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

इति दशमाऽध्यायस्य दशमः खण्डः ॥ १० ॥

अथैकादशे खण्डे—

प्रथमतृचस्य—भरद्वाजऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
(१३२३) त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठोअध्वरे ।
१ २ ३ १ २
पवस्व मꣳहयद्रयिः ॥ १ ॥

भावार्थः—(सोम) सोम ! वा परमेश्वर ! (मन्द्रः) आह्लादकारक और (अध्वरे) यज्ञ वा ज्ञानयज्ञ में बलप्रदायक होने से (ओजिष्ठः) अतिबलवान् (धारयुः) धारा वा प्रेम भक्ति की धारा चाहने वाला (असि) है । (मंहयद्रयिः) धनदायक सो (त्वम्) तू (पवस्व) शुद्धि कर ॥ ऋ० ९ । ६७ । १ में भी ॥१॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१३२४) त्वꣳ सुतोमदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः ।

१ २ २ १र २र

इन्द्रः सत्राजिदस्तृतः ॥ २ ॥

भावार्थः—हे सोम ! वा परमेश्वर ! (त्वम्) तू (सुतः) अभिषुत वा हृदयकमल में ध्यान किया हुवा (मदिन्तमः) अभिषुत करने वालों वा ध्यान करने वालों को तृप्ति वा आनन्द का दाता (दधन्वान्) धारक (सत्राजित्) सब का जेता और (अस्तृतः) अन्यों से अहिंसित (इन्दुः) प्रकाशवान् है ॥ ऋ० ९ । ६७ । २ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १र २र ३क २र ३ १ २

(१३२५) त्वꣳ सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् ।

३ २ ३ २ ३ १ २

द्युमन्तꣳ शुष्ममाभर ॥ ३ ॥ [१६]

भावार्थः—हे परमेश्वर ! (अद्रिभिः) सोमाभिषव के पत्थरों [सिल बट्टों] से (सुष्वाणः) अभिषुत किया हुवा सोम (कनिक्रदत्) शब्दायमान है, (त्वम्) आप कृपा करके (अभ्यर्ष) हमें प्राप्त हों और (द्युमन्तम्) दीप्तियुक्त (शुष्मम्) बल को (आभर) इस सोम में भरें ॥ ऋ० ९ । ६७ । ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—मनुर्ऋषिः । सोमो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१३२६) पवस्व देव वीतय इन्द्रो धाराभिरोजसा ।

२ ३ २ १ २

आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५७१) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २

(१३२७) तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वां देवासोअमृताय कं पपुः ॥ २ ॥

भावार्थः—(उदप्रुतः) जल के निकालने वाले (तव) तेरे (द्रप्साः) रस (मदाय) तृप्ति पुष्टि के उत्पादनार्थ (इन्द्रम्) वर्षक वायुभेद को (वावृधुः) बढ़ाते हैं। तव हे सोम ! (देवासः) आकाश के वायु आदि देव (कम्) जलरूप (त्वाम्) तुझ को (अमृताय) अमर होने के लिये (पपुः) पीते= शोषते=अपने में समावेशित करते हैं ॥ ऋ० ९ । १०६ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ १ २

(१३२८) आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।

३ १ २ ३ १ २

वृष्टिद्यावोरीत्यापः स्वर्विदः ॥ ३ ॥ [१७]

भावार्थः—(सुतासः) अभिषुत किये हुवे (इन्दवः) सोम (पुनानाः) पावन, (वृष्टिद्यावः) द्युलोक को वर्षा की ओर झुकाने वाले, (रीत्यापः) जलों को पृथिवी की ओर गिराने वाले, (स्वर्विदः) सुखप्रापक होते हुवे (नः) हमारे लिये (रयिम्) धनादि ऐश्वर्य को (आ धावत) प्राप्त करावें ॥ ऋग्वेद ९ । १०६ । ९ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीय तृचस्य—अम्बरीष ऋजिश्वावा ऋषिः । सोमो देवता ।

अनुष्टुप्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

(१३२९) परि त्यꣳ हर्यतꣳ हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।

२ ३ २ उ ३ २ उ ३ १ २ ३ १ २ २ २

योदेवान् विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५५२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

२उ ३ १२ ३ १२ ३१२
(१३३०) द्विर्यं पञ्च स्वयशसं सखायो अद्रिसंहितम् ।
३१र २र ३ १ २ ३ १२ ३१२
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥ २ ॥

भावार्थः–(पञ्च) पांच (सखायः) सखा ऋत्विज् लोग (यम्) जिस (अद्रिसंहितम्) ग्रावा=सिलबट्टों से अभिषुत=छिले हुवे, (स्वयशसम्) अपनी कीर्त्ति वाले, (इन्द्रस्य प्रियम्) इन्द्र के प्यारे (काम्यम्) कमनीय सोम को (द्विः) दो बार (प्रस्नापयन्ते) वसतीवरी नामक जलों में डुबो कर रखते हैं उस को (ऊर्मयः) लहरें " पुनन्ति "=शोधती हैं, यह पूर्वमन्त्र से अनुवृत्ति करके अन्वय है ॥ ऋ० ९ । ९८ । ६ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

१ २ ३ १ २ ३ १र २र १ २ ३
(१३३१) इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परिषिच्यते । नरे च
१ २ ३ १ २ ३ १ २
दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ ३ ॥ [१८]

भावार्थः–(सोम) ओषधिराज ! (सदनासदे) यज्ञासन पर बैठने वाले (वीराय) क्षात्रधर्मयुक्त (दक्षिणावते) यज्ञ करने योग्य दक्षिणा वाले (वृत्रघ्ने) दुष्टशत्रुसंहारकारी (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (नरे) मनुष्य के लिये (पातवे) पीने को (च) और यज्ञ करने को (परिषिच्यसे) अभिषुत किया जाता है ॥ ऋ० ९ । ९८ । १० का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥३॥

अथ चतुर्थतृचस्य–ऋणः त्रसदस्युर्वा ऋषिः । सोमो देवता । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा–

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
(१३३२) पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१॥

इस की व्याख्या (४३०) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

१ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१३३३) प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥२॥

भाषार्थः—(ते) वे (सोतारः) अभिषुत करने वाले ऋत्विज् लोग (सोमं रसम्) सोम रस को (मदाय) हर्षप्राप्ति के लिये और (महे) बहुत (द्युम्नाय) अन्न के लिये (प्र पुनन्ति) अभिषुत करते हैं ॥ ऋ० ९ । १०९ । ११ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १२ २२ ३ २३ १ २ ३२३ १ २
(१३३४) शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम्
॥ ३ ॥ [१९]

भाषार्थः—(शिशुम्) नये (जज्ञानम्) उत्पन्न होते हुवे (हरिम्) हरे (इन्दुम्) गीले (सोमम्) सोम को (पवित्रे) दशापवित्र पर (मृजन्ति) शोधते हैं ॥ ऋ० ९ । १०९ । १२ में भी ॥३॥

अथ पञ्चमतृचस्य—अमहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ २ ३ २३२ ३ १ २ ३१२ २२
(१३३५) उपोषु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
१ २ ३ १ २
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४८७) में होचुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१२ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१३३६) तमिद्वर्धन्तु नोगिरो वत्सꣳ सꣳशिश्वरीरिव ।
१२ २२ ३ १ २
य इन्द्रस्य हृदꣳसनिः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यः) जो सोम (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् पुरुष का (हृदंसनिः) हृदयदायक है (तम् इत्) उस ही सोम को (नः) हम याज्ञिकों की (गिरः) प्रशंसोक्तियें (सं-वर्धन्तु) भले प्रकार बढ़ावें । इस में दृष्टान्तः—(वत्सम्) प्यारे पुत्र को (शश्वरीरिव) जैसे बच्चों वाली उन की मातायें बढ़ाती हैं; तद्वत् ॥ ऋग्वेद ९ । ६१ । १४ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१३३७) अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ।
१ २ ३ १ २
वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥ ३ ॥ [२०]

भावार्थः—(उक्थ्य) प्रशंसनीय ! (सोम) सोम ! (नः) हमारे (गवे) गौ आदि पशुओं के लिये (शम्) जिस से सुख हो उस प्रकार (अर्ष) वृद्धि करे और (पिप्युषीम्) बहुत सी (इषम्) अन्नादि भोजनसंपदा को (धुक्षस्व) पूर्ण करे तथा (समुद्रम्) मेघमण्डल को (वर्ध) बढ़ावे ॥ ऋग्वेद ९ । ६१ । १५ के पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

इति दशमाध्यायस्य एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

अथ

द्वादशे खण्डे प्रथमतृचस्य—त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१३३८) आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१३३) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २उ ३ १ २३ १ २ ३ २ ३ १र २र
(१३३९) बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथु स्वरुः ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥

भावार्थः—(येषाम्) जिन यजमानों का (युवा) जवान (इन्द्रः) इन्द्र (सखा) मित्र है, (एषाम्) इन का (इध्मः) इन्धन (बृहन् इत्) बहुत ही है और (शस्त्रम्) स्तोत्र भी (भूरि) बहुत है तथा (स्वरुः) बिजुली वा वज्र भी (पृथुः) विस्तीर्ण है ॥ ऋग्वेद ८ । ४५ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३४०) अयुद्ध इद्युधावृतᳩ शूर आजति सत्वभिः ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥ [२१]

भावार्थः—(युवा) जवान (इन्द्रः) राजा इन्द्र (येषाम्) जिन का (सखा) अनुकूलवर्त्ती सहायक है उन का (शूरः) वह वीर राजा इन्द्र (सत्वभिः) अपनी सेनाओं सहित (अयुद्ध इत्) अवश्य युद्ध करता और (युधावृतम्) योद्धाओं से युक्त शत्रु को (आजति) नमाता है ॥ ऋग्वेद ८ । ४५ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयसूक्तस्य—गोतमऋषिः । इन्द्रोदेवता । उष्णिक् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३४१) य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३८९) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३४२) यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २
उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ २ ॥

भावार्थः—(अङ्ग) हे प्रिय ! परमात्मन् ! (बहुभ्यः) बहुत मनुष्यों में से (यः) जो (चित्) कोई (हि) ही भक्त धर्मात्मा यजमान (सुतावान्) सोमयाजी होकर (त्वा) आप की (आ—विवासति) परिचर्या उपासना करता है (तत्) वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् होजाता और (उग्रम्) भारी (शवः) बल को (पत्यते) प्राप्त होता है ॥ ऋ० १ । ८४ । ९ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १२ २२

(१३४३) कदा मर्त्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।

३ १ २ ३ २३ १ २ ३ २

कदा नः सुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥३॥ [२२]

भावार्थः—(अङ्ग) हे प्रिय ! परमेश्वर ! (इन्द्रः) परमेश्वर आप (नः) हमारी (गिरः) वाणी=प्रार्थनाओं को (कदा) कब (शुश्रवत्) अनुकूलता से सुनेंगे ? और (कदा) कब (अराधसम्) यज्ञ के विरोधी (मर्त्तम्) मनुष्य को (पदा) पांव से (क्षुम्पमिव) जैसे अहिच्छत्र=जो लकड़ी गल कर पृथिवी पर छत्राकार फूल आती है उस को नष्ट कर देते हैं, ऐसे (स्फुरत्) नष्ट करेंगे ? अर्थात् कृपया शीघ्र हमारी प्रार्थना सुनिये ॥ निरुक्त ५।१६—१७ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ८४ । ८ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २

(१३४४) गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

३ १ २ ३ २३ १ २

ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१॥

इस की व्याख्या (३४२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२उ ३ १२ २२ ३ १२ २२ ३ १ २

(१३४५) यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।

२उ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥

भावार्थः—(यत्) जो कि, यजन करने वाला मनुष्य (सानोः सानु) पर्वत प्रदेश से देशान्तर को सोमवल्ली और समिध् आदि लाने के लिये (आरुहः) चढ़ता है, और (भूरि) बड़े (कर्त्वम्) यज्ञ कार्य को (अस्पष्ट) छूता=अनुष्ठित करता है (तत्) सो यह (वृष्णिः) कामना पूर्ण करने वाला

वरदायक (इन्द्रः) परमेश्वर (चेतति) जानता है और (यूथेन) वायु आदि देवगण से (अर्थम्) इस यजमान के इष्ट को (एजति) पूरा कराता है ॥ ऋ० १ । १० । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २उ ३ २ ३ २३ १२ ३ २

(१३४६) युङ्क्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।

१ २ ३ १२ २२

अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥३॥ [२३]

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नः) हमारी (सोमपा) सोमयाजियों की (गिराम्) प्रार्थनारूप वाणियों का (उपश्रुतिं चर) कृपया श्रवण कीजिये (अथ हि) और (केशिना) केश के तन्तु समान प्रतीत होने वाले (हरी) हरण करने वाले (वृषणा) वर्षा करने वाले (कक्ष्यप्रा) रस्सी के समान पुरने वाले सीधे और तिरछे दो प्रकार के सूर्यकिरणों को (युङ्क्ष्व) उपयोग में लाइये ॥ ऋ० १ । १० । ३ का पाठान्तर और अष्टाध्यायी ३ । १ । ७, ६ । ३ । १३५, ७ । १ । ३९, ६ । १ । १९७, ६ । ४ । ९, ३ । २ । ३, ६ । २ । १३९, ६ । ३ । १३६, ८ । १ । १८, ८ । १ । २१ और उणादि १ । १५६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥३॥

द्वादशाहस्य नवममह इति, अष्टचत्वारिंशत् स्तौमिकम् इति च विवरणकारः ॥

इति पञ्चमः प्रपाठकः समाप्तः ॥५॥

इतिश्रीमत्कण्ववंशावतंस श्रीयुत पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र परीक्षितगढ़ (ज़िला—मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में दशम अध्याय समाप्त हुवा

॥ १० ॥

ओ३म्

अथ एकादशाऽध्यायः

अथ षष्ठः प्रपाठकः

तत्र

प्रथमे खण्डे चतुर्ऋचस्य प्रथमसूक्तस्य—मेधातिथिः काण्वऋषिः । अग्निर्देवता ।
गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१२ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २
(१३४५*) सुषमिद्धो न आवह देवाँ अग्ने हविष्मते ।
१ २ ३ १ २
होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥

भाषार्थः—(पावक) शोधक ! (होतः) होमकर्त्तः ! (अग्ने) अग्ने ! तू (नः) हमारे मध्य में (हविष्मते) यज्ञ करते हुवे यजमान के लिये (देवान्) वायु आदि देवों का देवदूत कर्म से (आवह) आवाहन करता है (च) और (यक्षि) यजन करता है ॥ ऋग्वेद १ । १३ । १ में भी ॥

अष्टाध्यायी २ । १ । ५७ ॥ ६ । २ । ४६ ॥ ६ । २ । ४९ ॥ ६ । २ । १३९ ॥ ८ । ३ । ९ ॥ ८ । ३ । २ ॥ ८ । ३ । ३ ॥ १ । ४ । १९ ॥ ८ । १ । १९ ॥ ८ । १ । ७२ ॥ ८ । १ । ७३ ॥ २ । ४ । ७३ ॥ ८ । २ । ३६ ॥ ८ । २ । ४१ ॥ ६ । १ । १६२ ॥ ८ । १ । २८ और ८ । १ । ५८ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

---

* सप्तमाध्यायान्त में "प्रवोर्चोप०" इस सूक्तसंकेत को एक गिनने पर मन्त्रसंख्या वहां ११११ आती, संकेत के ३ सूक्त गिनने से १११५ संख्या होगई । वहां से यहां दशमाध्यायान्त में १३४४ के स्थान में १३४६ ये २ संख्या अधिक मुद्रित होगई । उसे त्याग कर फिर भाष्यारम्भनिर्दिष्टचक्रानुसरणार्थ उन २ अङ्कों को घटा कर मन्त्र संख्या १३४५ * ही चलायी जाती है ॥

अथ द्वितीया–

१ २ ३ २ ३ १ २
(१३४६*) मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे।
३ १ २ ३ १ २
अद्या कृणुह्यूतये ॥ २ ॥

भावार्थः–(कवे) अग्नि के प्रकाश से ज्ञान बढ़ने के कारण हे मेधाविन्! (तनूनपात्) जलों से उत्पन्न होने वाला तू (अद्य) आज (नः) हमारे (मधुमन्तम्) माधुर्ययुक्त (यज्ञम्) हव्य को (ऊतये) रक्षा के लिये (देवेषु) वायु आदि देवों के समीप (कृणुहि) कर=पहुंचादे ॥ अग्नि का नाम 'तनूनपात्'=जलों से उत्पन्न हुवा होने में नीचे लिखा निरुक्त का भावार्थ प्रमाण है। निरुक्त का प्रमाण ऊपर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

"तनूनपात् घृत है, "नपात्" यह अनन्तर सन्तान का नाम है, जो कि निर्णततमा होती है, इस अर्थ में तनू नाम गौ का है क्योंकि इस में भोग विस्तृत है, गौ से दुग्ध और दुग्ध से घृत होता है ॥ शाकपूणि आचार्य का मत है कि तनूनपात् अग्नि का नाम है, इस अर्थ में तनू शब्द जलवाचक है क्योंकि जल आकाश में तने (फैले) रहते हैं, उनसे ओषधि वनस्पति उत्पन्न होती हैं, ओषधि वनस्पतियों से यह (अग्नि) उत्पन्न होता है॥ ऋ० १।१३।२ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
(१३४७*) नराशꣳसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञउपह्वये।
१ २ ३ १ २
मधुजिह्वꣳ हविष्कृतम् ॥ ३ ॥

भावार्थः–मैं यज्ञकर्त्ता (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ में (इह) इस वेदी के बीच में (प्रियम्) हितकारक (हविष्कृतम्) द्रव्यों को हव्य बनाने वाले (मधुजिह्वम्) इसी से माधुर्यरस का स्वादु लेने वाली जिह्वा वाले (नराशंसम्) अग्नि की (उपह्वये) स्तुति=प्रशंसा करता हूं ॥

" नराशंस यज्ञ का नाम है क्योंकि नर=मनुष्य इस (यज्ञ) में बैठे हुवे स्तुति पढ़ते हैं, यह कात्थकियों का मत है और शाकपूणि आचार्य (कहते हैं कि) अग्नि (का नाम नराशंस) है क्योंकि नरों=ऋत्विगादि से प्रशंसनीय है" निरुक्त ८।२ का मूल संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० १।१३।३ में भी ॥३॥

अथ चतुर्थी—

१ २ ३ १२३ १२ ३ १ २ ३१र २र
(१३४८) अग्ने सुखतमे रथे देवाँईडित आवह ।
२ ३ २ ३ १ २
असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥ [१]

भावार्थः—(अग्ने) हे अग्ने ! (ईडितः) प्रशंसा किया हुवा (मनुः) मन्त्र से वा मनुष्य=यजमानादि से (हितः) स्थापित किया हुवा तू (होता) देवों का आह्वाता (असि) है (सुखतमे) अति सुखदायक (रथे) रमणीय मार्ग में (देवान्) वायु आदि देवों को (आवह) ला ॥ ऋ० १।१३।४ में भी ॥ ४ ॥

अथ मैत्रावरुणमाज्यम् इति विवरणकारः
यदद्येति द्वितीयतृचस्य—वसिष्ठ ऋषिः । आदित्योदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१३४९) यदद्य सूर उदितेनागामित्रो अर्यमा ।
३ १ २ ३१र २र
सुवाति सविता भगः ॥ १ ॥

भावार्थः—(यत्) जो कुछ (सूरे) सूर्य (उदिते) उदय होने पर=प्रातःकाल (अनागाः) निर्दोष (मित्रः, अर्यमा, सविता, भगः) मित्र, अर्यमा, सविता, भग नामक आकाशस्थ वायुभेद देवविशेष (सुवाति) उत्पन्न करे, वह (अद्य) आज हमें प्राप्त हो ॥

मनुष्यों को चाहियें कि प्रातःकाल सवेरे उठकर परेश की उपासनादि करें और प्रार्थना करें कि प्राणादि वायु जो सर्वसंपत्तियों के कर्त्ता हैं और जो सूर्योदय के कुछ पूर्व से ही निर्दोष रहते हैं और जगत् का उपकार करते हैं, हमारा भी उपकार करें । इस लिये यह भी ध्वनित हुवा कि मनुष्य को

बहुत सवेरे के निर्दोष प्राणादि वायुओं का सेवन करना चाहिये जिस से संपत्ति बढ़ती हैं ॥ ऋ० ७ । ६६ । ४ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १२ ३ २उ ३ १र २र
(१३५०) सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
ये नो अꣳहोतिपिप्रति ॥ २ ॥

भाषार्थः—(ये) जो पूर्व मन्त्र में मित्रादि वायुभेद गिनाये हुवे देव (नः) हम को (अंहः) आलस्यादि पाप से (अतिपिप्रति) पार करते हैं उन के साथ (सः) वह (क्षयः) रहना=निवास (यामन्) उस प्रहर में (नु) [वितर्क में] (प्र) अत्यन्त (सुप्रावीः) सुरक्षक (अस्तु) होवे ॥

प्रातः काल उठने और मित्रादि वायुभेद के सेवन करने वाले निरालस हम लोगों को वह उस प्रकार रहन सहन शुभ हो, यह तात्पर्य है ॥

ऋग्वेद ७ । ६६ । ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३२ ३ २३ १२ ३१ २ ३२ ३ २
(१३५१) उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये ।
३ १र २र
महो राजान ईशते ॥ ३ ॥ [२]

भाषार्थः—(उत) और (ये) जो पूर्वोक्त मित्रादि देव (स्वराजः) स्वयंप्रकाशमान हैं (अदितिः) और उन की माता=प्रकृति, ये सब (अदब्धस्य) रक्षित (महः) बड़े (व्रतस्य) शुभ कर्मानुष्ठान के (राजानः) राजा (ईशते) समर्थ हैं ॥

अर्थात् मित्रादिपदवाच्य प्राणादि वायुभेद=देवों के ही सामर्थ्य से मनुष्य सब शुभ कर्मों के करने में कृतकार्य होते हैं ॥ ऋ० ७ । ६६ । ६ में भी ॥ ३ ॥

अथैन्द्रमाज्यम् इति विवरणकारः

उत्वेति तृतीय तृचस्य—प्रगाथऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १र २र

(१३५२) उत्त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।

१ २ ३ १ २

अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१९४) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१३५३) पदा पणीनराधसो निबाधस्व महाँ असि ।

२उ ३ २ ३ १ २र

नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥

भावार्थः—पूर्व मन्त्र से "अद्रिवः" पद की अनुवृत्ति लाकर—हे परमेश्वर! आप (महान्) बड़े (असि) हैं, (कश्चन) कोई भी (त्वा) आप के (प्रति) बराबर (नहि) नहीं है, सो आप (अराधसः) यथार्थ धन न लगाने वाले (पणीन्) लोभियों को (पदा) व्याप्तिरूप लात से (निबाधस्व) पीड़ित कीजिये=दण्ड दीजिये ॥ ऋ० ८ । ६४ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र

(१३५४) त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।

२उ ३ १ २

त्वꣳ राजा जनानाम् ॥ ३ ॥ [३]

उक्तं प्रातः सवनमिति विद०

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्वम्) आप (सुतानाम्) अभिषुत सोमों के और (त्वम्) आप ही (असुतानाम्) अनभिषुत सोमों के (ईशिषे) ईश्वर हैं (त्वम्) आप (जनानाम्) प्राणिमात्र के (राजा) राजा है ॥

यहां सोमों के उपलक्षण से संपूर्ण स्थावर और जनों के उपलक्षण से जङ्गम जगत् का स्वामी परमात्मा स्तुत किया जाता है ॥ ऋ० ८ । ६४ । ३ में भी ॥३॥

इति एकादशाऽध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

इदानीं माध्यंदिनं सवनमभिधीयते इति विव०

अथ द्वितीयखण्डे प्रथमतृचस्य—पराशरऋषिः । सोमोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १
(१३५५) आजागृविर्विप्र ऋतं मतीनाᳬ सोमः पुनानो
२ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
असदच्चमूषु । सपन्ति यं मिथुनासो निकामा
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ १ ॥

भावार्थः—(सत्यम्) सच्चे (मतीनाम्) मेधा तत्त्वों का (विप्रः) मेधावी (सोमः) सोम (जागृविः) निन्द्रा तन्द्रा आलस्यादि का निवारक चेतन करने वाला होने से जागरणशील (पुनानः) शोध्यमान (चमूषु) यज्ञपात्र चमसों में (आऽसदत्) सब ओर रक्खा जाकर रहता है, (यम्) जिस सोम को (मिथुनासः) सपत्नीक (निकामाः) नितरां कामना करने वाले (रथिरासः) यज्ञ लेचलने वाले नेता (सुहस्ताः) शोभन हाथों वाले (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोग (सपन्ति) सत्कृत करते=सुधारते हैं ॥

निघण्टु ३ । १२ और ३ । १४ में सपति क्रिया को परिचरणकर्मा और अर्चतिकर्माओं में गिनाया है और निरुक्त ३ । १३ और ३ । १९ में इस का व्याख्यान है, वहां भी इस का स्पर्श अर्थ नहीं किया। इस से निरुक्तप्रमाण का नाम लेकर सायणाचार्य ने जो स्पर्श अर्थ किया है, वह भ्रममूलक ही जान पड़ता है ॥ ऋ० ९ । ९७ । ३७ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥१॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३
(१३५६) स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा
१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
रोदसी वी ष आवः । प्रिया चिद्यस्य प्रियसास
३ २ ३ २र २र ३ २ ३ १र २र
ऊती सतो धनं कारिणे न प्रयᳬसत् ॥२॥

भावार्थः—(सः) वह सोम (पुनानः) शोध्यमान (सूरे) सूर्यकिरणों में (उप–दधानः) रक्खा हुआ (उभे) दोनों (रोदसी) द्यावापृथिवी को (आऽप्राः) आपूरित कर देता है, तब (सः) वह सोम (वि–आवः) फैलता है (सतः) विद्यमान (यस्य) जिस सोम की (प्रिया) प्यारी और (प्रियसासः) प्रीतिदायिनी धारायें (चित्) अवश्य (ऊती) रक्षार्थ हैं, वह सोम (कारिणे न) जैसे काम करने वालों को धन देते हैं, तद्वत् यज्ञानुष्ठानी को (धनम्) धान्यादि उत्पन्न करके (प्र यंसत्) दे ॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३६ ॥ ८ । ३ । १०६ ॥ २ । ४ । ८० और ६ । ४ । ७३ के प्रमाण और ऋ० ९ । ९७ । ३८ के पाठान्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१३५७) स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ

३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि नोज्योतिषावीत्। यत्र नः पूर्वे पितरः

३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥३॥ [४]

भावार्थः—(वर्धिता) अपने बल से प्राणादि वायुभेदप्रभृति देवों का बढ़ाने वाला और (वर्धनः) स्वयं बढने वाला (पूयमानः) अभिषव के पश्चात् दशापवित्र से शोध्यमान (मीढ्वान्) वृष्टिकारक (सः) वह (सोमः) सोम (ज्योतिषा) अपने तेज से (नः) हमारी (अभि आवीत्) सर्वतः रक्षा करे (यत्र) जिस सोम के विषय में (नः) हम याज्ञिकों के (पूर्वे) पिछले (पितरः) पिता पितामहादि लोग जो (पदज्ञाः) सोमादि पदार्थों के ज्ञाता और (स्वर्विदः) सुख के ज्ञाता थे, वे (गाः) सूर्यकिरणों और (अद्रिम्) मेघमण्डल को (इष्णन्) चाहते थे ॥

भाव यह है कि अभिषव किया हुवा और फिर दशापवित्र से शोधा हुवा और अनन्तर होमा हुवा सोम सूर्यकिरणमण्डल और मेघमण्डल में व्याप कर आप बढ़ता और अन्य प्राणादि वायुभेद इत्यादि देवों को बढ़ाता और वृष्टि आदि सर्वसम्पदों को बढ़ा कर सब जगत् का उपकारक होता है जिस के द्वारा सब की रक्षा होती है, इस लिये मनुष्यों को योग्य है कि पितृ परम्परा से जिन्हें सोमादि पदार्थों का ज्ञान है, उन विद्वान् लोगों द्वारा

सोमयागादि का अनुष्ठान कराया करें ॥ ऋग्वेद ९ । ६७ । ३९ के दो पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथात्मकस्य द्वितीय सूक्तस्य—प्रगाथः काण्व ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ ३

(१३५८) मा चिदन्यद्विशंसत सखायो मा रिषण्यत ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २

इन्द्रमित्स्तोता वृषणंसचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ।

इस की व्याख्या (२४२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

(१३५९) अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

विद्वेषणं संवननमुभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् २ [५]

भावार्थः—(अवक्रक्षिणम्) सूर्यादिलोकसमूह ब्रह्माण्डकटाहों को अपनी २ मर्यादा में खेंचने वाले (वृषभम् यथा) वृषभ के समान मेघमण्डलादि से वृष्ट्यादि द्वारा सींचने वाले (जुवम्) शीघ्र उत्पत्ति स्थिति प्रलय को अनायास सहज में कर देने वाले (गां न) पृथिवी के समान (चर्षणीसहम्) मनुष्य आदि प्राणिकृत चेष्टाओं के सहनशील (विद्वेषणम्) राग द्वेषरहित (संवननम्) संभजनीय (उभयङ्करम्) निग्रह और अनुग्रह दोनों के कर्त्ता (मंहिष्ठम्) बड़े भारी दानी (उभयाविनम्) दोनों लोकों में रक्षा करने वाले परमात्मा को "स्तुत करो" यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है ॥ ऋ० ८।१।२ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

उदुत्य इति प्रगाथस्य तृतीयसूक्तस्य—मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ १र २र ३ २ ३ १ २

(१३६०) उदुत्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१॥

इस की व्याख्या (२५१) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया-

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३
(१३६१) कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद्धीतमाशत। इन्द्रꣳ
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोमेभिर्महयन्त आयवःप्रियमेधासो अस्वरन्॥२॥[६]

भावार्थः—(कण्वाइव) मेधावियों के समान और (भृगवः) फूंकने वाली (सूर्याइव) सूर्य की किरणों के समान तेजस्वी (प्रियमेधासः) जिनको मेधा प्यारी है, वा जिन को यज्ञ प्यारा है वे (आयवः) मनुष्य (महयन्तः) पूजते हुवे (स्तोमेभिः) स्तोत्रों से (विश्वम्) व्यापक (धीतम्) ध्यान किये हुवे (इन्द्रम्) परमेश्वर को (इत्) ही (अस्वरन्) स्तुत करें और (आशत) प्राप्त हों, "इत्" शब्दार्थ यह है कि परमेश्वर मान कर किसी अन्य को न पूजें॥ निघण्टु ३। १५ और निरुक्त३। १७ इत्यादि प्रमाण तथा ऋ० ८। ३। १६ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये॥ २॥

पर्यूषु इति तृचस्य चतुर्थसूक्तस्य-ऋणञ्चसद्दस्युर्वा ऋषिः। सोमोदेवता। पिपीलिकामध्या त्रिपदा त्रिष्टुप्छन्दः॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३६२) पर्यूषु प्रधन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्विषस्तरध्या ऋणयानईरसे॥ १॥

इस की व्याख्या (४२८) में हो गई है॥ १॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २
(१३६३) अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोजीरया रꣳहमाणः पुरन्ध्या॥ २॥

भावार्थः—(पवमान) सोम! (सूर्यम्) सूर्यकिरणमण्डल के (विधारे) धारक गगनमण्डल में (शक्मना) बल से (रंहमाणः) वेग करता हुवा तू (गोजीरया) किरणों के वेगयुक्त (पुरन्ध्या) दोनों द्यावापृथिवी के मध्य में (हि) ही (पयः) जल को (अजीजनः) उत्पन्न करता है॥

निघण्टु १ । १४, २ । १५ अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ९ । ११० । ३ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

२ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३६४) अनु हि त्वा सुतꣳ सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
वाजाँ अभि पवमान प्रगाहसे ॥ ३ ॥ [७]

इस की व्याख्या (४३२) में हो चुकी है ॥ ३ ॥

अथ पञ्चमस्य तृचसूक्तस्य–ऋणत्रसद्दस्युर्वा ऋषिः । सोमोदेवता । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा–

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २र
(१३६५) परिप्रधन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥

इस की व्याख्या (४२७) में हो गई है ॥ १ ॥

३ १र २र ३१र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१३६६) एवाऽमृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यःपीयूषः॥२॥

भावार्थः–(अमृताय) मेघजल के लिये (महे) और बड़े उत्तम (क्षयाय) निवास के लिये (सः) वह (दिव्यः) दिव्य (पीयूषः) पानयोग्य (शुक्रः) वीर्यदायक सोम (एव) निश्चय (अर्ष) आकाश को जाता है ॥

अर्थात् आहुति दिया हुवा सोम आकाश को गया हुवा वृष्टिकारक, सुन्दर निवास का हेतु और वीर्यदायक होता है ॥ ऋ० ९ । १०९ । ३ में भी॥२॥

अथ तृतीया–

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३६७) इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय विश्वे

३ २
च देवाः ॥ ३ ॥ [८]

भावार्थः–(सोम) सोम ! (इन्द्रः) वृष्टिकारक वायुविशेष वा राजा (क्रत्वे) यज्ञ के लिये (च) और (दक्षाय) बल के लिये (ते) तेरे रस

को (पेयात्) पीवे और (विश्वे) सब (देवाः) वायु आदि वा विद्वान् भी पीवें ॥ ऋ० ९ । १०९ । २ में भी ॥ ३ ॥

इति एकादशाऽध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ तृतीये खण्डे प्रथमतृचस्य–हिरण्यस्तूपऋषिः । सोमोदेवता ।
जगती छन्दः ॥ तत्र प्रथमा–

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३६८) सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो, मत्सरासः प्रसुतः
३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३
साकमीरते । तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो,
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
नेन्द्रादृते पवते धाम किञ्चन ॥ १ ॥

भावार्थः–(सर्गासः) अग्नि में छोड़े जाते हुवे (प्रसुतः) अत्यन्त अभिषुत (आशवः) शीघ्रगामी (मत्सरासः) हृष्टिकारक सोम (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मयः) किरणों के समान (द्रावयित्नवः) दौड़ने वाले (साकम्) एक साथ (परि) सब ओर (ईरते) दौड़ जाते हैं। (इन्द्रात्) इन्द्रनामकवायु विशेष से (ऋते) अतिरिक्त कोई (किञ्चन) किसी (धाम) स्थान को (न) नहीं (पवते) शुद्ध करता ॥ ऋ० ९ । ६९ । ६ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३६९) उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु, मन्द्राजनी
३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १
चोदते अन्तरासनि। पवमानः संतनिः सुन्वता-
२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
मिव, मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति ॥ २ ॥

भावार्थः–अब सोम का मेधा [बुद्धि] जनकत्व निरूपित करते हैं– (सुन्वताम्) अभिषव करने वालों के (सन्तनिः) सन्तान के (इव) तुल्य (द्रप्सः) रखने वाला (पवमानः) सोम (वारम्) प्रथम दशापवित्र पर (परि अर्षति) रपटता है (उ) फिर (मधु) मिठाई के साथ (उप पृच्यते)

मिलाया जाता है और (मधुमान्) मिठाई से मिला हुवा (अन्तः आसनि) मुख के भीतर (सिच्यते) सींचा जाता=पिया जाता है तब (मन्द्राजनी) हर्ष की प्रेरक (मतिः) बुद्धि (चोदते) उस से प्रेरित होती है॥ ऋ० ९। ६९। २ का पाठ संस्कृत भाष्य में देखिये॥ २॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र
(१३७०) उक्षा मिमेति प्रतियन्ति धेनवो, देवस्य देवीरु-
रर ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
पयन्ति निष्कृतम्। अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययं,
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
मत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत॥ ३॥ [९]

भाषार्थः—(उक्षा) सींचने वाला सोम (मिमेति) शब्द करता है (धेनवः) सोम की धारायें (प्रतियन्ति) द्रोणकलश में जाती हैं (देवीः) दिव्य धारायें (देवस्य) सोम के (निष्कृतम्) स्वच्छ सोमघट रूप स्थान को (उपयन्ति) भर देती हैं (सोमः) सोम (अर्जुनम्) श्वेतवर्ण (अव्ययम्) भेड के रोमजनित (वारम्) ऊनी दशापवित्र को (अत्येति) छान कर चला जाता है (निक्तम्) स्वच्छ (अत्कम्) वज्र के तुल्य दीप्यमान द्रोणकलश को (परि—अव्यत) भर देता है॥ ऋग्वेद ९। ६९। ४ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ३॥

अथ द्वितीयतृचस्य—वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः।

तत्र प्रथमा—

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१३७१) अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्रशस्तम्। दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम्॥ १॥

इस की व्याख्या (७२) में हो चुकी है॥ १॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २उ ३ १ २३उ २र ३ २ ३ १ २ ३
(१३७२) तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्, सुप्रतिचक्षमवसे
१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
कुतश्चित्। दक्षाय्यो योदमआस नित्यः ॥२॥

भावार्थः—(यः) जो (दक्षाय्यः) बलिष्ठ अग्नि (दमे) घर घर में (नित्यः) नित्य (आस) होवे (तम्) उस (सुप्रतिचक्षम्) भले प्रकार दर्शन के हेतु (अग्निम्) अग्नि का (कुतश्चित्) सब से (अवसे) रक्षा के लिये (वसवः) बसने वाले गृहस्थ लोग (अस्ते) घर के अन्तर्गत अग्न्यागार में (न्यृण्वन्) आधान करें ॥

गृहस्थ मनुष्यों का धर्म है कि सब प्रकार की रक्षार्थ अपने अपने घरों में अग्न्यागार नामक स्थान विशेष में नियम से प्रत्येक समय अग्नि का स्थापन रक्खें ॥ ऋ० ७ । १ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १र २र ३ २र
(१३७३) प्रेद्धोअग्ने दीदिहि पुरोनोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
१र २र ३ १ २ ३ १ २
त्वांꣳ शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ॥ ३ ॥ [१०]

भावार्थः—(यविष्ठ) अत्यन्त युवा अग्ने (प्रेद्धः) अत्यन्त प्रदीप्त तू (अजस्रया) निरन्तर (सूर्म्या) प्रदीप्त लोहे की कील के समान ज्वाला से (नः) हमारे (पुरः) आगे यज्ञवेदि में (दीदिहि) धधक, क्योंकि (त्वाम्) तुझ को (शश्वन्तः) निरन्तर वा बहुत [निघं० ३ । १] (वाजाः) हव्य अन्न (उपयन्ति) प्राप्त हो रहे हैं ॥ ऋ० ७ । १ । ३ और यजुः १७ । ७६ में भी ॥ ३ ॥

उक्तमग्निष्टोम साम । इदानीं सानसं स्तोत्रं भवति इत्यादि विवरणकारः ॥

तत्र तृतीयतृचस्य—सार्पराज्ञी ऋषिः । सूर्य आत्मा देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१३७४) आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
३ १ २ ३ १ २
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (६३०) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
(१३७५) अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
१र २र ३ १र २र
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ २ ॥

इस की व्याख्या (६३१) में हो चुकी है ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३७६) त्रिंशद्धाम विराजति वाक्पतङ्गाय धीयते ।
२ ३ २ ३ २३ १ २
प्रतिवस्तोरह द्युभिः ॥ ३ ॥ [११]

इस की व्याख्या (६३२) में हो चुकी है ॥ ३ ॥

इत्येकादशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

इति षष्ठप्रपाठके प्रथमोऽर्धः

समाप्तश्चायं द्वादशाहः सत्रात्मकोऽहीनात्मकश्चेति विवरणाकारः ॥

इतिश्रीमत्कण्ववंशावतंस श्रीयुत पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र परीक्षितगढ़ (ज़िला—मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ

॥ ११ ॥

ओ३म्

अथ द्वादशाऽध्यायः

इदानीं गवामयनं सवत्सरं सत्र मुच्यते । तत्रादौ ज्योतिष्टोमेऽतिरात्रः०००० आग्नेयमाज्यम् इति विवरणकारः—

तत्र

प्रथमे खण्डे चतुर्थर्चे प्रथमसूक्ते प्रथमयोर्गोतमो राहूगण ऋषिः ।
अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१३७७) उप प्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये ।
३ २ ३ १ २ ३ २
आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥

भावार्थः—(अध्वरं) जो हिंसा से रहित है उस यज्ञ के (उपप्रयन्तः) समीप उत्तम प्रकार से जाते हुवे और यज्ञ में पहुंच कर यज्ञारम्भ करते हुवे हम (आरे) दूर (च) और (अस्मे) हमारे समीपवर्त्तियों की (शृण्वते) सुनाई करते हुवे (अग्नये) ज्ञानस्वरूप परमात्मा के लिये (मन्त्रम्) स्तोत्र को (वोचेम) उच्चारित करें ॥

जो परमात्मा दूरस्थों और अस्मदादि के समीपस्थों की सब की सुनाई करता है उस ज्ञानस्वरूप परमात्मा के लिये उस की स्तुतिरूप वेदसूक्तों स्तोत्रों का पाठ यज्ञ के आरम्भ में अवश्य करना चाहिये ॥

अथवा—भौतिक पक्ष में, (आरे) दूरस्थों (च) और (अस्मे) हमारे समीपवर्त्तियों की सब की (शृण्वते) स्वीकार करने वाले (अग्नये) अग्नि के लिये (मन्त्रम्) आग्नेयसूक्तादि वेदमन्त्र का (अध्वरम् उपप्रयन्तः) यज्ञ में जाते हुवे हम (वोचेम) उच्चारण करें ॥

भौतिक अग्नि भी दूरस्थ और समीपस्थ सब प्राणियों का उपकार कर सकता है जब कि होमा जावे, और अग्नि में होमजनित लाभ वर्णन करने

वाले मन्त्रों में कहे फल को पूरा कर देना ही, बुलाई करना समझिये, सो उस अग्निविषयक मन्त्रों द्वारा यज्ञारम्भ में याज्ञिकों को पाठ करना चाहिये॥ ऋ० १ । ७४ । १ तथा यजुः ३ । ११ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३७८) यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु ।
१ २ ३ २३ १ २
अक्षरद्दाशुषे गयम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(यः) जो (पूर्व्यः) सनातन परमेश्वर वा अग्नि (स्नीहितीषु, संजग्मानासु, कृष्टिषु) मरती, जाती, प्रजाओं में (दाशुषे) दानशील यज्ञ करने वाले मनुष्य के लिये (गयम्) प्राण को (अक्षरत्) सींचता है॥ [उस अग्नि के लिये मन्त्रोच्चारण करें] यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है ॥

भाव यह है कि यद्यपि सारी प्रजा मरती जाती दुनिया है, कोई अमर नहीं, परन्तु परमात्मा के उपासकों और अग्निहोत्रियों को प्राण अधिक मिलता है और वे दीर्घजीवी होते हैं ॥ निघण्टु २ । १९ अष्टाध्यायी १ । ३ । २९ और ३ । २ । १०६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ७४ । २ में भी ॥२॥

अथ तृतीयायाः—वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३७९) स नो वेदो अमात्यमग्नीरक्षतु शंतमः ।
३ २उ ३ १ २
उतास्मान्पात्वꣳहसः ॥ ३ ॥

भावार्थः—(स) वह (शंतमः) सुखदायक (अग्निः) परमेश्वर वा अग्नि (नः) हमारे (वेदः) धन को और (अमात्यम्) मन्त्रिवर्ग को (रक्षतु) रक्षित करे (उत) और (अस्मान्) हमारी (अंहसः) पाप से वा वायु आदि गत सूक्ष्म कृमि आदि रोगजनक जन्तु से (पातु) रक्षा करे ॥

ऋग्वेद ७ । १५ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः—गौतमो राहूगण ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३८०) उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाऽजनि ।

३ १र २र
धनंजयो रणे रणे ॥ ४ ॥ [१]

भावार्थः—(वृत्रहा) पापहन्ता वा शत्रुहन्ता (अग्निः) अग्नि (उत् अपानि) उत्पन्न हुवा है, जो (रणे रणे) प्रत्येक संग्राम में (धनंजयः) विजयप्रद है (उत) तर्कपूर्वक (जन्तवः) आग्नेय विद्या के ज्ञाता प्राणी (ब्रुवन्तु) उपदेश्य उपदेशक भाव से प्रचार करें ॥

जो संग्राम देशविजयार्थ चक्रवर्त्ती राज्यस्थापनार्थ प्रजारक्षार्थ किये जावें उन में भी अग्निसिद्ध शस्त्राऽस्त्र ही विजयप्रद हैं, और जो संग्राम वायु आदि गतसूक्ष्म दुष्टजन्तुओं से मनुष्यादि के शरीरस्थ धातु आदि में स्वास्थ्य के लिये होता है, उस में भी आग्नेय द्रव्य जो होमादि द्वारा उत्पन्न होकर शरीरों और वायु आदि में फैलते हैं, उन्हीं के द्वारा विजय होता है इस लिये परमात्मा का उपदेश है कि लोग तर्कवितर्कपूर्वक उपदेश्य उपदेशक वा शिष्य अध्यापक होकर इस विद्या में नया २ आविष्कार करें ॥ ऋ० १ । ७४ । ३ में भी ॥४॥

अथ द्वितीय तृचात्मकसूक्तस्य—भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १र २र ३ १ २
(१३८१) अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अरं वहन्त्याशवः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (९५) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१३८२) अच्छा नो याह्या वहाऽभि प्रयांꣳसि वीतये ।
२ ३ १र २र
आ देवान्त्सोमपीतये ॥ २ ॥

भावार्थः—अग्ने ! (नः) हम को (अच्छ) अच्छे प्रकार (याहि) प्राप्त हो और (प्रयांसि) अन्नों हव्यों को (वीतये) खाने के लिये तथा (सोमपीतये) सोम पीने के लिये (देवान्) वायु आदि देवों को (अभि—आ—वह) संमुख बुलाओ ॥ ऋग्वेद ६ । १६ । ४४ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १र २र ३ १ २
(१३८३) उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत्।
२ ३ १ २
शोचा विभाह्यजर ॥ ३ ॥ [२]

भावार्थः—(भारत) भरण करने वाले (अग्ने) अग्ने ! (उत् शोच) चमक (अजर) जरारहित ! (दविद्युतत्) निरन्तर प्रकाशमान तू (द्युमत् अजस्रेण) दीप्तिमान् अविच्छिन्न तेज से (विभाहि) अन्यों को प्रकाशित कर॥ ऋग्वेद ६ । १६ । ४५ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयसूक्तस्य तृचस्य—प्रजापतिर्ऋषिः । सोमोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१३८४) प्रसुन्वा नायन्धसो मर्त्तो नवष्ट तद्वचः।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
अप श्वानमराधसꣳहतामखं न भृगवः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५५३) में हो चुकी है और (७७४) में भी आ चुकी है॥१॥

इदानीमाभिप्लविकमुच्यते इति विवः ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १र २र ३ २उ ३ १ ३ २र
(१३८५) आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः।
१ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
सरज्जारो न योषणां वरोन योनिमासदम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(जामिः) रसस्वरूप सोम (अत्के) आच्छादक दशापवित्र पर (आ अव्यत) संबद्ध होता और फिर (योनिम्) स्थान=द्रोणकलश में (आसदम्) स्थित होने को (सरत्) सरकता है । इस में ३ दृष्टान्त—१—(न) जैसे (पुत्रः) पुत्र (ओण्योः) द्यावा पृथिवी के समान माता पिता की (भुजे) गोद में और २-(न) जैसे (जारः) कामी पुरुष (योषणाम्) कामिनी स्त्री को और ३-(न) जैसे (वरः) विवाहला पुरुष कन्या को प्राप्त होता है ॥ ऋ० ९ ।

१०१ । १४ में भी ॥ यहां से ४ ऋचाओं में मुग्ध पक्षपाती ज्वालाप्रसाद भार्गव ने सब वैदिक तन्त्रों से निराला सीता राम का वर्णन करके अनर्थ किया है ॥२॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
(१३८६) स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥३॥ [३]

भावार्थः—(यः) जो (हरिः) हरा सोम (पवित्रे) दशापवित्र पर (अव्यत) संबद्ध होता है (सः) वही रूपान्तर से (दक्षसाधनः) बल का साधन होकर (वीरः) बली सोम (रोदसी) द्युलोक पृथिवीलोक को (वि-तस्तम्भ) थांभ रहा है (न) जैसे (वेधाः) विधाता (योनिम्) स्थान= ब्रह्माण्ड में (आसदम्) आसीन है ॥

स्वभावसिद्ध बात है कि गरमी प्रत्येक वस्तु को विशीर्ण करती बखेरती और सोम शीतल होने से सब पदार्थों को जोड़ता है क्योंकि यह बल का साधन है । बस सोम ने ही रूपान्तर से उस २ पदार्थ में बलसाधनता से स्थित होकर उस २ पदार्थ को थांभ रक्खा है । यह भाव है ॥

ऋ० ९ । १०१ । १५ में भी ॥ ३ ॥

इति उत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयखण्डे प्रथमप्रगाथस्य—सौभरिकाण्व ऋषिः । इन्द्रोदेवता । निचृदुष्णिक् पादनिचृत्पङ्क्तिश्चेति क्रमेण छन्दसी ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
(१३८७) अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
३ १ २ ३ १ २
युधे दापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३९९) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २र
(१३८८) नकी रेवन्तꣳ सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥२॥[2]

भावार्थः—इन्द्र ! हे राजन् ! (रेवन्तम्) केवल धनी जो यज्ञादि परोपकार में धन नहीं लगाता उस धनी मानी को आप (सख्याय) मित्रता के लिये (नकिः) नहीं (विन्दसे) रखते क्योंकि (सुराश्वः) मद्यादि व्यसनों से बढ़े हुए प्रमत्त नास्तिक वे धनी मानी लोग (ते) आप की (पीयन्ति) हिंसा करते हैं। किन्तु—(नदनुम्) स्तुति करने वाले राजभक्त प्रजाजन को (यदा) जब आप (आकृणोषि) बुलाते हैं तब (समूहसि) उस का धनादि से सत्कार करते हैं (आत् इत्) तब (पीतेव) पिता के समान (हूयसे) उससे स्तुत होते हैं॥ ऋग्वेद ८। २१। १४ में भी॥ २॥

अथ द्वितीयस्य तृचस्यसूक्तस्य—मेधातिथिमेध्यातिथी ऋषी।
इन्द्रोदेवता। बृहती छन्दः॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २
(१३८९) आ त्वा सहस्रमाशतं युक्ता रथे हिरण्यये।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥१॥

इस की व्याख्या (२४५) में हो चुकी है॥ १॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३९०) आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणाय पीतये ॥२॥

भावार्थः—इन्द्र ! सूर्य ! (मयूरशेप्या) मयूर की पूंछ के समान अनेक वर्ण वाले भी (शितिपृष्ठा) एक श्वेतवर्ण की प्रतीति से युक्त (हरी) तिरछे सीधे भेद से दो प्रकार के किरणसमूह, (विवक्षणस्य) प्रशंसनीय (मध्वः) मधुर (अन्धसः) अन्न हव्य सोम के (पीतये) पानार्थ (हिरण्यये) तेजोमय (रथे) रमणीय स्वरूप में (त्वा) तुझ को (आवहताम्) सर्वतः लेचलते हैं॥

तात्पर्य यह है कि सूर्य की किरणें जो सीधी और तिरछी होकर दो प्रकार हम तक आती हैं और जिन में मोर की पुच्छ के से सात ७ रङ्ग हैं पर

सब मिल कर एक श्वेतपृष्ठ जान पड़ते हैं, वे किरणें "अग्नौ प्रास्ताहुतिः०" इत्यादि मनुवचनोक्त रीत्यनुसार सोमादि मधुर प्रशंसनीय हव्य पदार्थ सूर्य में पहुंचाती हैं ॥ अष्टाध्यायी ७ । ३ । ३९ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८ । १ । २५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३९१) पिबा त्वा ऽ३ऽ स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपाइव ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥३॥ [५]

भावार्थः—(गिर्वणः) हे वाणी से प्रशंसनीय ! (पूर्वपाइव) प्रथम पीने वाले वायु के समान वर्त्तमान तू (अस्य) इस (सुतस्य) अभिषुत और (परिष्कृतस्य) शोधित (रसिनः) रस वाले सोम का (इयम्) यह (आसुतिः) आसव (मदाय) हर्ष के लिये (चारुः) उत्तम है (तु) अतः (पिब) शोषण कर, जिस से तेरी किरणों से छुवे हुवे इस सोमरस के संपृक्त सब लोक उस के गुणों से संपृक्त होजावें ॥ ऋ० ८ । १ । २६ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयसूक्तस्य—प्रगाथस्य ऋजिश्वा ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । ककुप्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(१३९२) आ सोता परिषिञ्चताऽश्वं न स्तोममप्तुरꣳरजस्तुरम् ।
३ १ २ ३ १ २
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५८७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३९३) सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने । ऋतेन
२ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २
य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥२॥ [६]

भावार्थः—(सहस्रधारम्) बहुत धारा वाले (वृषभम्) वर्षा से वृष्टिकर्त्ता (पयोदुहम्) जलों के दोग्धा (प्रियम्) प्यारे सोम को (देवाय) दिव्य

(जन्मने) जन्म के लिये [अभिषुत करो] यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है (यः) जो सोम (ऋतजातः) जल से उत्पन्न हुवा (ऋतेन) वसतीवरी नामक जल से (विवावृधे) बढ़ता है और जो (राजा) प्रकाशमान (देवः) दिव्य (ऋतम्) द्रवीभूतजलरूप (बृहत्) महान् है ॥ ऋ० ८ । ६८ । ८ में भी ॥ ८ ॥

इति द्वादशाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ–

तृतीये खण्डे प्रथमतृचस्य–भरद्वाजऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा–

३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१३९४) अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।

१ २ ३ १र २र

समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

(१३९५) गर्भे मातुः पितुः पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २

सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥

भावार्थः–यहां पितर और माता शब्द से द्युलोक और पृथिवीलोक का ग्रहण है । श्रवण करते हैं कि " द्यौः पिता पृथिवी माता " । (मातुः) पृथिवी के (गर्भे) मध्य (अक्षरे) क्षररहित वेदिस्थान में (विदिद्युतानः) प्रकाशमान (पितुः) द्युलोक का [हव्य पहुंचा कर पालन करने से] (पिता) पालक अग्नि (ऋतस्य) यज्ञ की (योनिम्) उत्तर वेदि नामक स्थान में (आ–सीदन्) स्थित हुवा " वृत्रों का नाश करता है " यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है ॥ ऋग्वेद ६ । १६ । ३५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१३९६) ब्रह्म प्रजावदाभर जातवेदो विचर्षणे ।

२ ३ २३१२ ३२
अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥ ३ ॥ [७]

भाषार्थः—(जातवेदः) ज्ञानोत्पादक ! (विचर्षणे) विशेष करके दृष्टि के सहायक ! (अग्ने) अग्ने ! (प्रजावत्) पुत्रपौत्रादि सन्तान युक्त (ब्रह्म) धन वा अन्न [निघं० २।१० और २।७] (आभर) प्राप्त करा (यत्) जो अन्न वा धन (दिवि) आकाश में (दीदयत्) प्रकाशमान होवे ॥

भाव यह है कि होमादि द्वारा अग्नि की परिचर्या करने वाले के धन धान्य सन्तानादि की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है ॥ ऋ० ६ । १६ । ३६ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—वसिष्ठ ऋषिः । सोमोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ २ ३१ २ ३१ २ ३ २ ३ २ ३
(१३९७) अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो, देवो देवेभिः
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
समपृक्त रसम् । सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्,
३ २३ १ २ ३ २ ३ १ २
मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५२६) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २र ३ २ १ २ ३ ३ २ ३
(१३९८) भद्रा वस्त्रा समन्याऽऽवसानो, महान्कविर्नि-
१ २ ३ १ २ १ २ ३क २र
वचनानि शꣳसन् । आवच्यस्व चम्वोः
३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
पूयमानो, विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥२॥

भाषार्थः—(भद्रा) भले (समन्या) संग्रामयोग्य (वस्त्रा) वस्त्रतुल्य तेजों को (वसानः) ओढ़े हुवे (महान्) बड़े (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (निवचनानि) सूक्तों को (शंसन्) पढ़ते हुवे (विचक्षणः) द्रष्टा (जागृविः) आलस्य प्रमाद रहित पुरुष के समान (पूयमानः) शोध्यमान सोम (देववीतौ)

यज्ञ में (चम्वोः) द्युलोक और पृथिवी लोक में (आवच्यस्व) प्रवेश करता है ॥ निघं० २। १७ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ऋ० ९। ९७। २ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३९९) समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये, यशस्तरो
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यशसां क्षैतो अस्मे। अभिस्वर धन्वा पूयमानो,
३ १ २ ३ २ ३ १ २
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ [८]

भाषार्थः—(यशसाम्) यशस्वियों में (यशस्तरः) अतियशस्वी (क्षैतः) भूमि में उत्पन्न हुवा (प्रियः) प्यारा सोम (सानो) ऊंचे (अव्ये) ऊनी दशापवित्र पर (अस्मे) हमारे लिये (संमृज्यते) शोधित किया जाता है (उ) और वही (पूयमानः) शोध्यमान सोम (धन्व) अन्तरिक्ष में [निघण्टु १। ३] (अभिस्वर) शब्द करता और मेघगर्जन को उत्पन्न करता है । (यूयम्) सू वही सोम (स्वस्तिभिः) सुखदायक पालनों से (सदा) सर्वदा (नः) हम को (पात) पालता है ॥ ऋ० ९। ९७। ३ में भी ॥३॥

अथ तृतीयतृचस्य—तिरश्ची ऋषिः । इन्द्रोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१४००) एतो न्विन्द्रꣳस्तवाम शुद्धꣳशुद्धेन साम्ना ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाꣳसꣳशुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥१॥

इस की व्याख्या (३५०) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३१ ३ १ २ ३ १ २
(१४०१) इन्द्र शुद्धो न आगहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
३ २ ३ १र २र ३ १ २
शुद्धो रयिं निधारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥२॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (शुद्धः) पवित्र करने वाले=पावन आप (नः) हम को (आगहि) प्राप्त हों (शुद्धः) पावन आप (शुद्धाभिः) पावनी (ऊतिभिः) रक्षाओं से हमारी रक्षा करें (शुद्धः) पावन आप (रयिम्) निश्छल व्यवहार द्वारा प्राप्त धन को (निधारयः) निरा धारण करावें (सोम्य) हे अमृतस्वरूप! (शुद्धः) पावन आप (ममद्धि) हम पर प्रसन्न हों॥ ऋ० ८। ८५। ८ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २
(१४०२) इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
३ २ ३ १ २ ३ १र २र
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥३॥ [९]

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (हि) क्योंकि आप (शुद्धः) पवित्र हैं इस कारण (रयिम्) शुद्ध धन को (नः) हमारे लिये दीजिये (शुद्धः) आप पवित्र हैं सो (दाशुषे) दानी पुण्यात्मा पुरुष के लिये (रत्नानि) पवित्र मणिमुक्तादि रत्न दीजिये (शुद्धः) आप शुद्ध हैं इस से (वृत्राणि) दुष्ट अशुद्ध राक्षसों का (जिघ्नसे) नाश करते हैं और (शुद्धः) शुद्ध आप (वाजम्) शुद्ध अन्न को (सिषाससि) कर्मानुसार देना चाहते हैं॥ ऋ० ८। १०८। ९ में भी॥३॥

इति उत्तरार्चिके द्वादशाऽध्यायस्य

तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थखण्डे प्रथम तृचस्य—सुतंभर ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

३ १र ३र ३ २३ १ २ ३ १ २
(१४०३) अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः ।
३ १ २ ३ १ २
देवस्य द्रविणस्यवः ॥ १ ॥

भावार्थः—(द्रविणस्यवः) धन चाहने वाले हम मनुष्य (दिविस्पृशः) सूर्यरूप से आकाश के छूने वाले (देवस्य) द्योतमान (अग्नेः) अग्नि के

(सिध्रम्) पुरुषार्थसाधक (स्तोमम्) प्रशंसा के मन्त्रों को (मनामहे) उच्चारित करते हैं ॥ ऋ० ५ । १३ । २ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २
(१४०४) अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा ।
१ २३२ ३ १ २
स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(होता) वायु आदि देवों का बुलाने वाला वा होमसाधक (अग्निः) अग्नि (मानुषेषु) मनुष्यों के लोकों में (आ) वास करता है (यः) जो कि (नः) हमारी (गिरः) वाणियों को (जुषत) सेवित करता है अर्थात् हमारे अभीष्ट पूरे करता है (सः) वह अग्नि (दैव्यम्) द्युलोक की (जनम्) सृष्टि का (यक्षत्) यजन करे ॥ ऋ० ५ । १३ । ३ में भी ॥ २॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ १
(१४०५) त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः ।
१ २ ३ १२ २२
त्वया यज्ञं वितन्वते ॥ ३ ॥ [१०]

भाषार्थः—(अग्ने) ! तू (जुष्टः) सेवित (होता) देवों को बुलाने वाला वा होमसंपादक (वरेण्यः) वरणीय (सप्रथाः) सर्वतः फैलने वाला (असि) है, और सब यजमान (त्वया) तुझ अग्नि साधन से (यज्ञम्) यज्ञ को (वितन्वते) विस्तृत करते हैं ॥ निरुक्त ६ । ७ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ५ । १३ । ४ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीय तृचस्य—वसिष्ठ ऋषिः । सोमोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

(पञ्चमस्याहुः संपश्या मध्यंदिनमिति विवरणकारः)

२ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
(१४०६) अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधा—मङ्गोषिणमवा-
३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३
वशन्त वाणीः। वना वसानो वरुणो न सिन्धु—

१ २३ १ २ ३ १२
वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५२८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
(१४०७) शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान्, जेता पवस्व सनिता
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
धनानि । तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्व, ऽषाढः
३ १र २र ३ १ २
साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥ २ ॥

भावार्थः—(शूरग्रामः) शूरों का समूह बनाने वाला (सर्ववीरः) सब को वीर करने वाला (सहावान्) सब को दवा सकने वाला (जेता) विजय कराने वाला (धनानि) धनों का (सनिता) देने वाला (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण आयुध वाला (क्षिप्रधन्वा) शीघ्रगामी वाणों के धनुष का धारक (समत्सु) संग्रामों में (अषाढः) किसी को न सहने वाला (पृतनासु) सेनाओं में (शत्रून्) शत्रुओं को (साह्वान्) तिरस्कृत करने वाला [सोम] (पवस्व) अभिषुत होता है ॥

यहां सोमयाजियों और सोमपान करने वालों का आरोप सोम में करके वर्णन है ॥ ऋ० ९ । ९० । ३ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३
(१४०८) उरु गव्यूतिरभयानि कृण्वन्, समीचीने आपवस्वा
१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र ३र २र
पुरन्धी । अपः सिषासन्नुषसः स्वाऽ३ऽर्गाः, संचिक्रदो
१ २ ३ २ ३ १ २
महोअस्मभ्यं वाजान् ॥ ३ ॥ [११]

भावार्थः—(उरुगव्यूतिः) विस्तृत मार्गवाला सोम, सोमयाजियों को (अभयानि) दैवी विपत्ति आदि से अभय (कृण्वन्) करता हुआ (पुरन्धी) द्युलोक और पृथिवीलोक को (समीचीने) सुखदायक सङ्गत (आपवस्व) पवित्र

करता है तथा (अस्मभ्यम्) हम सोमयाजी मनुष्यों के लिये (महः वाजान्, अपः, उषसः, स्वः, गाः) बड़े अन्न, जल, सुप्रभात, सूर्य, और किरणें (सिषासन्) देना चाहता हुवा सा (संचिक्रदः) शब्द करता है ॥

जब कि सोम का होम होता है और वह शब्द करता हुवा आकाश को जाता है तब द्युलोक पृथिवीलोक पवित्र शुद्ध होते हैं और मनुष्यों को जल वायु सूर्य उस की किरण और सुप्रभात से उत्पन्न सुख प्राप्त होता है॥ ऋग्वेद ९ । ९० । ४ में भी ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथात्मकस्य द्वितीयसूक्तस्य—नृमेधपुरुमेधावृषी । इन्द्रोदेवता । पादनिचद्बृहती, निचृत्पङ्क्तिश्च छन्दसी ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २ २ ३ १ २
(१४०९) त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः। त्वं वृत्राणि
३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हꣳस्यप्रतीन्येकइत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (२४८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
(१४१०) तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसꣳ राधोभाग-
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
मिवेमहे । महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र
१ २ ३ १ २
प्र ते सुम्ना नो अश्नुवन् ॥ २ ॥ [१२]

भाषार्थः—(असुर) हे प्राणदाता ! (तम्) पूर्वोक्तगुणविशिष्ट (त्वा) आप (प्रचेतसम्) सर्वज्ञ से (उ) ही (नूनम्) निश्चय (भागमिव) पुत्र जैसे पिता से दायभाग को मांगते हैं, वैसे हम (राधः) धर्मादि के साधन धन को (ईमहे) मांगते हैं । (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (ते) आप का (कृत्तिः) यश वा अन्न (मही) बड़ा (इवः) ही (शरणा) शरण है ,ते) आप के (सुम्ना) आनन्द (नः) हम को (प्राश्नुवन्) प्राप्त हों ॥ निरुक्त ५ । २२ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९० । ६ में भी ॥ २ ॥

अथ प्रगाथात्मक चतुर्थसूक्तस्य—सौभरिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । ककुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३१ २३१ २र३१२
(१४११) यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
३ २ ३१ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (११२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
(१४१२) अपांनपातꣳ सुभगꣳ सुदीदितिमग्निमु
१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
श्रेष्ठशोचिषम् । स नो मित्रस्य वरुणस्य
२ ३ २उ ३ १ २ ३ २
सोऽअपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥२॥ [१३]

भाषार्थः—(अपांनपातम्) जलों को न गिरने देने वाले (सुभगम्) शोभन ऐश्वर्यदायक (सुदीदितिम्) भले प्रकार प्रकाशमान (श्रेष्ठशोचिषम्) पवित्र लपटों वाले (अग्निम्) अग्नि को (उ) अवश्य [प्रशंसित करता हूं] (सः) वह अग्नि (वरुणस्य) अपान का (मित्रस्य) प्राण का और (सः) वही (दिवि) आकाश में वर्त्तमान (अपाम्) जलों का (सुम्नम्) सुख (नः) हमारे लिये (आ यक्षते) देता है ॥ ऋ० ८ । १९ । ४ का पाठान्तर संस्कृतभाष्य में देखिये और यह भी देख कर आप आश्चर्य करेंगे कि सायणाचार्य के भाष्य में उस ऋग्वेदस्थ " ऊर्जोन पातम् " की ही व्याख्या यहां सामवेदभाष्य में धरदी है, सामवेद के " अपां न पातम् " की नहीं ॥२॥

इति द्वादशाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमे खण्डे प्रथम तृचस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २३ २ ३ २
(१४१३) यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।
२उ ३ १ २ ३ १ २
स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ १ ॥

भावार्थः-(अग्ने) हे अग्ने । (पृत्सु) संग्रामों में (यम्) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य को (अवाः) तू रक्षित करता है (यम्) और जिस को (वाजेषु) बल=जीवन=प्राणनों में (जुनाः) तू प्राप्त होता वा रक्षा करता है (सः) वह मनुष्य (शश्वतीः) नित्य=बहुत काल ठहरने वाले (इषः) अन्नों को (यन्ता) नियमन कर सकता है ॥ निघण्टु २ । १७ अष्टाध्यायी ६ । ४ । ७५ ॥ ३ । १ । ८१ वार्त्तिक ६ । १ । १६८ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । २७ । ७ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १र २र
(१४१४) नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्यचित् ।
१ २ ३ १ २
वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ २ ॥

भावार्थः-(सहन्त्य) हे शत्रुओं के तिरस्कृत करने वाले ! अग्ने ! (अस्य) इस अग्नि का उपयोग जानने वाले (कयस्यचित्) किसी भी पुरुष का (पर्येता) आक्रमण करने वाला (नकिः) कोई नहीं, किन्तु इस का (श्रवाय्यः) श्रवण करने योग्य कीर्त्तिकारक (वाजः) बलविशेष (अस्ति) है ॥

ऋ० १ । २७ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४१५) स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता ।
१ २ ३ १ २
विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ३ ॥ [१४]

भावार्थः-(सः) वह (विश्वचर्षणिः) विश्व की दृष्टि का सहायक अग्नि (अर्वद्भिः) प्राणों सहित (वाजम्) अन्न वा बल को (तरुता) पार लगाने वाला (अस्तु) हो, (विप्रेभिः) मेधावी ऋत्विजों से (सनिता) यज्ञफल का दाता (अस्तु) हो ॥ ऋ० १ । २७ । ९ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयसूक्तस्य—नोधा ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ २ ३
(१४१६) साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो, दश धीरस्य धीतयो
१ २ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३
धनुत्रीः। हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य, द्रोणं ननक्षे
१ ३ २ ३ २
अत्यो न वाजी ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५३८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ ३ २२ ३ १२ २२ ३ १ २
(१४१७) सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो, वृषा दधन्वे पुरुवारो
३ २ १ ३ १२ १२ ३ १ २ ३ १२ २२
अद्भिः। मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्, संगच्छते
३ १ २ ३ १ २
कलश उस्रियाभिः ॥ २ ॥

भावार्थः—(वावशानः) वायुआदि देवों को मानो चाहता हुवा सा (वृषा) वृष्टिकारक (पुरुवारः) बहुतों से वरण किया हुवा सोम (अद्भिः) वसतीवरी नामक मातृतुल्य जलों से (सम् दधन्वे) भले प्रकार धारण किया जाता है। इस में दृष्टान्तः—(मातृभिः) माताओं से (शिशुः) बच्चा (न) जैसे दुग्धादि देकर धारण किया जाता है, तद्वत् (मर्यः) पुरुष (न) जैसे (योषाम्) स्त्री से (अभि यन्) समागम करता है तद्वत् (कलशे) द्रोणकलश में (निष्कृतम्) संस्कृत स्थान को संगत करता हुवा (उस्रियाभिः) गौवों=किरणों से (संगच्छते) मिलता है ॥ ऋ० ९। ९३। २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१४१८) उत प्रपिप्यऊधरघ्न्याया, इन्दुर्धाराभिः सचते
३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
सुमेधाः। मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति

१ २ ३२ ३ १
वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३ ॥ [१५]

भावार्थः—(उत) और (अघ्न्यायाः) गौ के (ऊधः) थान के समान सरस सोम (प्रविष्ये) ओषध्यादि में प्रविष्ट होकर आप्यायन करता है (सुमेधाः) बुद्धि सुधारने वाला (इन्दुः) सोम (धाराभिः) धारों से (सचते) मिलता है तब (गावः) किरणें (चमूषु) द्युलोक और पृथिवी लोक के नाना प्रदेशों में व्यापकर (मूर्धानम्) द्युलोक के मस्तक रूप सूर्य मण्डल को (पयसा) मेघजल से (अभिश्रीणन्ति) ढक देती हैं। दृष्टान्तः—(न) जैसे (निक्तैः) धुले उज्ज्वल (वसुभिः) वस्त्रों से आच्छन्न करते हैं तद्वत् ॥

निघण्टु २। ११, ३। ३०, ५। ५ निरुक्त ११। ४३ और अष्टाध्यायी ६।१। २९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ९। ९३। ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथात्मकतृतीयसूक्तस्य—मेधातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४१९) पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः॥१

इस की व्याख्या (२३९) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३
(१४२०) भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तर-
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
भिमातये। अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभि
१ २ ३ १ २
रा नः सुम्नेषु यामय ॥ २ ॥ [१६]

भावार्थः—पूर्वमन्त्र से अनुवृत्ति लाकर हे इन्द्र! परमेश्वर! (ते) तुम्हारी (सुमतौ) उत्तम मति जो वेदोपदेशरूप है उस में (वयम्) हम (वाजिनः)

बलवान् और अन्नादि साधनवान् (भूयाम) होवें (नः) हम को (अभिमातये) अभिमान के लिये (मा) मत (स्तः) मारो किन्तु नम्र करके (चित्राभिः) अपनी विचित्र (अभिष्टिभिः) चाहने योग्य रक्षाओं से (अस्मान्) हम को (अवतात्) रक्षित करो, तथा (नः) हम को (इषेषु) सुखों में (आ-यामय) निर्वाहित करो [गुज़ारो] ॥

ईश्वरभक्त मनुष्यों को उस की कृपा से निरभिमानता, रक्षा और सुख से निर्वाह, बल तथा अन्नादि सर्वसुख के साधन मांगने चाहियें, यह भाव है ॥ ऋग्वेद ८ । ३ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृचस्य चतुर्थसूक्तस्य-रेणुर्ऋषिः । सोमोदेवता । जगती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा-

१२ ३२ ३१२ ३२ ३१२
(१४२१) त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे, सत्यामाशिरं
३१ २ ३२३१ २र ३२३
परमे व्योमनि । चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे,
१२ ३ २३१ २र
चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५६०) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया-

१ २ ३१२३ १२ ३१२ ३
(१४२२) स भक्ष्यमाणो अमृतस्य चारुण, उभे द्यावा
१ २३ १२ १२ ३२३ २३
काव्येना विशश्रथे । तेजिष्ठा अपो मंहना
१ २ ३ १२३२३ १२३ १२ ३२
परिव्यत, यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥२॥

भाषार्थः-(अमृतस्य) अमृतरूप (चारुणः) सुन्दर वेद के (काव्येन) सस्वर पाठ के साथ (भक्ष्यमाणः) भोजन कराया जाता हुवा=होम किया जाता हुवा (सः) वह सोम (उभे) दोनों (द्यावा) द्युलोक पृथिवीलोक को (विशश्रथे) भर देता है और (मंहना) महत्त्व से (तेजिष्ठाः) अत्यन्त

प्रकाशमान (अपः) जलों को (परिव्यत) आच्छन्न कर देता है (सदः) यज्ञ में (देवस्य) दिव्य सोम देवता के (श्रवसा) यश से [जो वेदमन्त्रों में वर्णित है] (विदुः) वेदज्ञ जानते हैं ॥ ऋ० ९। ७० । २ में "भिक्षमाणः" पाठ है और सायणाचार्य ने यहां भी इकार को अकार मान कर वही अर्थ रक्खा है ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३१ २र ३ १ २
(१४२३) ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवो, ऽदाभ्यासो
३ १ ३ २ १ २र १ २ ३ १ २ ३क २र
जनुषी उभे अनु । येऽभिर्नृम्णा च देव्या
३ १ २र ३ १ २
च पुनत, आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३॥ [१७]

भाषार्थः—(येभिः) जिन किरणों से सोम (नृम्णा च) बलों को (च) और (देव्या) देवयजनयोग्य अन्नों को (पुनते) शुद्ध करता है (ते) वे (अमृत्यवः) अमृत तुल्य (अदाभ्यासः) न हिंसनीय (केतवः) किरणें (उभे) दोनों स्थावर जङ्गम (जनुषी) जीवयोनियों को (अनु सन्तु) अनुकूल हों (आत् इत्) तब ही (मननाः) मन्त्र (राजानम्) ओषधिराज सोम को (अगृभ्णत) परिगृहीत करते=प्राप्त होते हैं, अर्थात् मन्त्रानुकूल सोम का फल होता है ॥ ऋ० ९ । ७० । ३ में भी ॥ ३ ॥

इति द्वादशाऽध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठे खण्डे प्रथमतृचस्य—कुत्सऋषिः । सोमोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३.२ ३ २ ३क २र ३ २ ३
(१४२४) अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो, ऽ३ऽभि
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
मित्रावरुणा पूयमानः । अभी नरं
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
धीजवनꣳरथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥१॥

भावार्थः—प्रकरण से सोम (गृणानः) प्रशंसित हुवा (वीतिः) खाने के लिये (वायुम्) वायुसामान्य को (अभि अर्ष) अभिव्याप्त होता है, (पूयमानः) शुद्ध किया हुवा सोम (मित्रावरुणा) मित्र प्राण और वरुण अपान को [ऋ० १ । ८ । ३ । १२] (अभि) अभिव्यापता है और (धीजवनम्) बुद्धि दौड़ाने वाले (रथेष्ठाम्) देहस्थ (नरम्) पुरुष को (अभि) प्राप्त होता है, तथा (वज्रबाहुम) विजुली को किरण वाले (वृषणाम्) वृष्टिकारक (इन्द्रम्) वायुविशेष वा सूर्य को (अभि) प्राप्त होता है ॥ ऋ० ९ । ९७ । ४९ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २र ३ १ १ ३ २ ३ २
(१४२५) अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षा, ऽभि धेनूः
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
सुदुघाः पूयमानः । अभि चन्द्रा भर्त्तवे
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
नो हिरण्या, ऽभ्यश्वानूथिनो देव सोम ॥२॥

भावार्थः—(देव) दिव्य (सोम) सोम (सुवसनानि) भले प्रकार पहरने के (वस्त्रा) वस्त्रों को (अभि—अर्ष) प्राप्त कराता है, (पूयमानः) सोम (सुदुघाः) सुन्दर दूध देने वाली (धेनूः) दुधार गौओं को (अभि) प्राप्त कराता है, (नः) हमारे (भर्त्तवे) धारणार्थ (चन्द्रा) चांदी और (हिरण्या) सोने को (अभि) प्राप्त कराता है और (रथिनः) रथ वाले (अश्वान्) घोड़ों को (अभि) प्राप्त कराता है ॥ ऋ० ९ । ९७ । ५० में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २
(१४२६) अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १
पूयमानः । अभि येन द्रविणमश्नुवामाभ्यार्षेयं
२ ३ १ २
जमदग्निवन्नः ॥ ३ ॥ [१८]

भावार्थः—(पूयमानः) सोम (नः) हमारे लिये (दिव्या) आकाशीय (वसूनि) धनों को (अभिअर्ष) सर्वतः प्राप्त कराता है और (विश्वा) सब (पार्थिवा) पृथिवीसंबन्धी धनों को भी (अभि) प्राप्त कराता है तथा (येन) जिस बल वा नीरोगता से (द्रविणम्) उस आकाशीय और पार्थिव धन को हम (अश्नुवाम) भोग सकें वह भी (अभि) प्राप्त कराता है और (नः) हमारे लिये (जमदग्निवत्) आंख के समान [श० ८। १। २। ५] (आर्षेयम्) अन्य ज्ञानेन्द्रियों के तेज को भी (अभि) प्राप्त कराता है ॥

ऋ० ९। ६७। ५१ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य नृमेधपुरुमेधावृषी। इन्द्रोदेवता। विराडनुष्टुप्, निचृदनुष्टुप्, बृहती च क्रमेण छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१र २र ३ १ २ ३ १ २
(१४२७) यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥१॥

भावार्थः—(अपूर्व्य) हे अनादि ! (मघवन्) ईश्वर ! (वृत्रहत्याय) अन्धियारे के नाशार्थ (यत्) जब कि आप (जायथाः) जगत् को उत्पन्न करते हैं (तत्) तब (पृथिवीम्) भूमि को (अप्रथयः) विस्तीर्ण बनाते हैं (उतो) और (तत्) तभी (दिवम्) द्युलोकस्थ चराचर को भी (अस्तभ्नाः) थांभते हैं ॥ ऋ० ८। ८९। ५ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
(१४२८) तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
१र २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥२॥

भावार्थः—(तत्) तभी (ते) तुम्हारा (हस्कृतिः) दिनकर (अर्कः) सूर्य (अजायत) उत्पन्न हुवा (उत) और (तत्) तभी (यज्ञः) सूर्य से सधने वाला तुम्हारा होमादि उत्पन्न हुवा, कहां तक कहा जाय (यत्)

जो कुछ (जातम्) उत्पन्न हो चुका (यत् च) और जो कुछ (जन्त्वम्) उत्पन्न होगा (तत्) उस (विश्वम्) सब को (अभिभूः असि) तुम दबाये हो ॥ ऋ० ८ । ८९ । ६ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३१२ २२३ १२ २२ ३ २ ३१२
(१४२९) आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि । घर्मं न

२२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥३॥ [१९]

भावार्थः—परमेश्वर ने (आमासु) कच्ची ओषधियों में (पक्वम्) पके रस को (ऐरयः) प्रेरित किया और (सूर्यम्) सूर्य को (दिवि) द्युलोक में (आ रोहयः) ऐसे चढ़ाया कि (न) जैसे (सामम्) वर्ष भर के (घर्मम्) ताप को (सुवृक्तिभिः) ऋतुरूप विभागों से (तपत) तपे । इस लिये हे ईश्वरभक्तो ! तुम (गिर्वणसे) वाणी से सेवनीय इन्द्र=परमेश्वर के लिये (जुष्टम्) प्रीतिपूर्वक (बृहत्) बड़े साम को " गाओ " यह परिशेष है ॥

परमेश्वर ने आकाश में सूर्य को ऐसी युक्ति से रक्खा है कि वह सब ऋतुओं में क्रम और विभागपूर्वक ऐसा तपे कि जिस से सब ओषधि वनस्पति आदि भले प्रकार कच्ची से पकी हो जावें। यह अद्भुत परन्तु ज्ञानपूर्वक महाकार्य है जिस से उस परमात्मा का महत्त्व सूचित होता है, जिस के लिये हम को उस की महती स्तुति सामगान द्वारा करनी चाहिये ॥ ऋ० ८ । ८९ । ७ में भी ॥३॥

अथ तृतीयतृचस्य—अगस्त्यऋषिः । इन्द्रोदेवता । १—स्वराडनुष्टुप्, २—विराडनुष्टुप् ३—निचृत्त्रिष्टुप् चेति क्रमेण छन्दांसि ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २३ १ २ ३ १ २२
(१४३०) मत्स्यऽपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरोमदः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥१॥

भावार्थः—(हरिवः) हे सर्वशक्तिमन्निन्द्र ! परमेश्वर ! (ते) आप (वृष्णः) कामपूरक का पूर्वसूक्तोक्त रीति से उत्पन्न किया (महः) सब ओषधि वनस्पत्यादि में उस २ रूप से परिणत भारी (मत्सरः) हर्षकारक (मदः) तृप्तिकारक (वाजी) बलवान् बलदायक (सहस्रसातमः) अपरिमित अत्यन्त दाता वा सहस्रों पुरुषों के बांटने को पर्याप्त शक्तिकी बहुतर-

यत वाला महानुभाव (इन्दुः) सोम (ते) आप के ही प्रसाद से (पात्रस्येव) मानों पात्र से पीरहे हों ऐसे (अपायि) हमने पिया । (मदिः) आप इस प्रकार हम को हृष्ट और पुष्ट करते हैं, इस लिये पूर्वोक्त प्रकार स्तुत्य हैं ॥ ऋ० १ । १७५ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
(१४३१) आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ॥२॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे ईश्वर ! (मत्सरः) हर्षकारक (वृषा) वृष्टिकारक (मदः) तृप्तिकारक (वरेण्यः) स्वीकरणीय (सहावान्) मर्दनशील (सानसिः) संभजनीय (पृतनाषाड्) शत्रुसेनाओं को तिरस्कृत करने वाला (अमर्त्यः) अमृत (ते) आप का सोम (नः) हम को (आ—गन्तु) प्राप्त हो ॥ ऋ० १ । १७ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४३२) त्वꣳहि शूरः सनिता चोदयो मनुषोरथम् ।

३ २ ३ १ २ ३२उ ३ २ ३ ३ ३ १ २
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥३॥ [२०]

भावार्थः—हे ईश्वर ! (त्वं हि) आप ही (शूरः) सच्चे वीर और (सनिता) दाता हैं, सो (मनुषः रथम्) मनोरथ को (चोदयः) सत्कर्मों में लगाइये और आप (सहावान्) दुष्टजनशिक्षक हैं सो (अव्रतम्) नास्तिक (दस्युम्) उपद्रवी अधर्मी को (ओषः) फूंक दीजिये (न) जैसे (पात्रम्) अशुद्ध पात्र को (शोचिषा) अग्नि से तपा कर शुद्ध करते हैं तद्वत् ॥ ऋ० १ । १७५ । ३ में भी ॥ ३ ॥

इति द्वादशाऽध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

इति श्रीमत्कण्ववंशावतंस श्रीयुत पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र परीक्षितगढ़ (ज़िला—मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में बारहवां अध्याय समाप्त हुआ ॥१२॥

ओ३म्

अथ त्रयोदशाऽध्यायः

तत्र

प्रथमे खण्डे पञ्चर्चस्य प्रथमसूक्तस्य—कविर्ऋषिः । सोमोदेवता ।
गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १र २र
(१४३३) पवस्व वृष्टिमा सु नोपामूर्मिं दिवस्परि।
३ १ २ ३ १र २र
अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ १ ॥

भावार्थः—हे कामपूरक ! परमेश्वर ! वा सोम ! (नः) हमारे लिये (अपाम्, ऊर्मिम्, वृष्टिम्) जलों की, लहरी, वर्षा को तथा (अयक्ष्माः, बृहतीः, इषः) नीरोग, बहुल, अन्नों को (दिवः) आकाश से (आ-परि-सु-पवस्व) सर्वतः भले प्रकार वर्षाओ ॥

वर्षा की बहुतायत और उत्तमता से अन्न भी नीरोग और उत्तम तथा बहुतायत से होते हैं और मानो वर्षा रूप से आकाश से ही अन्न वर्षते हैं ॥

ऋग्वेद ९ । ४९ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१४३४) तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।
१ २ ३ १ २ ३ २
जन्यास उप नो गृहम् ॥ २ ॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! वा सोम ! (तया) उस (धारया) धारा से (पवस्व) वर्षा द्वारा हमें पवित्र करो (यया) जिस से कि (जन्यासः) जङ्गली नहीं किन्तु जनसमुदाय में रहने वाली (गावः) गौवें और तदुपलक्षित अन्य अश्वादि पशु (नः) हमारे (गृहम्) घर को (इह) इसी लोक में (उपाऽऽगमन्) आवें ॥ ऋग्वेद ९ । ४९ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४३५) घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।
३ १ २ ३ १र २र
अस्मभ्यं वृष्टिमापव ॥ ३ ॥

भावार्थः–हे परमेश्वर! वा सोम! (यज्ञेषु देववीतमः) ब्रह्मयज्ञादि यज्ञों में देवों=उपासकों को प्राप्यतम, वा होमादि में वायु आदि देवों के भक्ष्यतम (घृतम्) जल को (धारया) मुसलधार से (पवस्व) वर्षाओ अर्थात् (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वृष्टिम्) वर्षा को (आ–पव) सर्वतः वर्षावो ॥
ऋग्वेद ९ । ४९ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी–

१ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४३६) स न ऊर्जे व्याऽ३ऽव्ययं पवित्रं धाव धारया ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
देवासः शृणवन् हि कम् ॥ ४ ॥

भावार्थः–(देवासः) विद्वान् (हि) ही (कम्) प्रजापति परमात्मा को, अथवा रस रूप सोम को (शृणवन्) वेद की श्रुतियों से सुनते और सुनकर जानते हैं कि (सः) वह (नः) हमारे लिये (ऊर्जे) रस की उत्पत्ति के लिये (अव्ययम्) अविनाशी (पवित्रम्) शुद्ध आकाशमण्डल को (धारया) मेघवर्षण धारा से (वि धाव) विविध प्रकार प्राप्त है ॥
ऋग्वेद ९ । ४९ । ४ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी–

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४३७) पवमानो असिष्यदद्रक्षांᳪस्यपजङ्घनत् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
प्रत्नवद्रोचयन् रुचः ॥ ५ ॥ [१]

भावार्थः–(पवमानः) पावन परमात्मा, वा सोम (रक्षांसि) प्राणघातक दुष्ट जन्तुओं को (अपजङ्घनत्) नष्ट करता हुवा और (रुचः) सूर्य किरणों को (रोचयन्) प्रकाशित करता हुवा (असिष्यदत्) वर्षाता है ॥

ऋग्वेद ९ । ४९ । ५ में भी ॥ ५ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य द्वितीयसूक्तस्य—भरद्वाजऋषिः । इन्द्रो देवता ।
अनुष्टप्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४३८) प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अरं गमाय जग्मयेऽपश्चाद्दघ्वने नरः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३५२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४३९) एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रꣳसुतेभिरिन्दुभिः ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! (एनम्) इस (ऋजीषिणम्) बलवान् (सोमपातमम्) अतिसोमपान करने वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्यशाली पुरुष राजा के (प्रति) प्रति (सुतेभिः) अभिषुत (इन्दुभिः) गीले (सोमेभिः) सोमरसों और (अमत्रेभिः) सोमपानपात्रों के सहित (ईम्) अवश्य (आ—एतन) आओ ॥ ऋ० ६ । ४२ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४४०) यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १र २र
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तंतमिदेषते ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! (यदि) यदि तुम (सुतेभिः) अभिषुत (इन्दुभिः) ताज़े (सोमेभिः) सोमरसों से [इन्द्र को] (प्रतिभूषथ) सत्कृत करते हो तो वह (मेधिरः) बुद्धिमान् इन्द्र (धृषत्) शत्रुओं का धर्षण करने वाला (विश्वस्य) सब को (वेद) जानता है (इत्) और (तं तम्) उस उस काम को (एषते) तुम को पहुंचाता है ॥ ऋ० ६ । ४२ । ३ में भी ॥३॥

अथ चतुर्थी–

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १२ ३२
(१४४१) अस्मा अस्मा इदन्धसोध्वर्यो प्रभरा सुतम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोभिशस्तेरवस्वरत्॥ ४॥[२]

भावार्थः–(अध्वर्यो) हे यज्ञ के अध्वर्यु ! तू (अस्मै अस्मै इत्) इसी इन्द्र राजा के लिये (अन्धसः) सोम रूप अन्न के (सुतम्) अभिषुत रस को (प्रभर) दे। क्योंकि यही (समस्य) सब (शर्धतः) उत्साह करते हुवे (जेन्यस्य) जीतने योग्य शत्रु की (अभिशस्तेः) हिंसा से (कुवित्) सर्वथः (अवस्वरत्) तुम को पालता है ॥ ऋ० ६ । ४२ । ४ में भी ॥ ४ ॥

इति त्रयोदशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥
उक्ताः स्वरसामानः इति विव०

अथ

द्वितीये खण्डे प्रथमस्य षड्चस्य सूक्तस्य–असितोदेवलोवा ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा–

३ २ ३ १२ २र ३ १ २ १ २
(१४४२) बभ्रवे नु स्वतवसेरुणाय दिविस्पृशे ।
१ २ ३ १ २
सोमाय गाथमर्चत ॥ १ ॥

भावार्थः–हे याज्ञिको ! ऋत्विजो ! मनुष्यो ! तुम (बभ्रवे) पिङ्गलवर्ण और (अरुणाय) कभी २ रक्तवर्ण (स्वतवसे) अपने बल (दिविस्पृशे) गगन मण्डल को छूने वाले हुत (सोमाय) सोम के लिये (गाथम्) गानयुक्त प्रशंसा की (अर्चत) चर्चा करो ॥ ऋ० ९ । ११ । ४ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

१ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१४४३) हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतꣳ सोमं पुनीतन ।
२ ३ १ २ ३ १ २
मधावाधावता मधु ॥ २ ॥

भाषार्थः—हे अध्वर्यु आदि ऋत्विजो ! मनुष्यो ! तुम (हस्तच्युतेभिः) हाथ से छूटे (अद्रिभिः) वहाँ से (सुतम्) अभिषुत (सोमम्) सोम को (पुनीतन) दशापवित्र पर छान कर शुद्ध करो और (मधौ) मधुर सोम में (मधु) दुग्ध को (आधावत) गेरो ॥ ऋ० ९ । ११ । ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १र २र ३ २ ३ १ २

(१४४४) नमसेदुपसीदत दध्नेदभिश्रीणीतन ।

२ ३ १ २

इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ३ ॥

भाषार्थः—हे ऋत्विजो ! (इन्दुम्) सोम को (दध्ना) दही से (अभिश्रीणीतन) मिलावो (इत्) अथवा (नमसा) भोजनीय अन्न के साथ (उपसीदत) सेवन करो,(इत्) अथवा (इन्द्रे) राजा में (दधातन) जमा करो ॥ ऋ० ९ । ११ । ६ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २र

(१४४५) अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे ।

३ १ २ ३ २

देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(सोम) सोम (अमित्रहा) शत्रुनाशक और (विचर्षणिः) विशेष कर चक्षु का सहायक (देवेभ्यः) वायु आदि देवों के लिये (अनुकामकृत्) आनुकूल्य से काम करने वाला है सो (गवे) गौ आदि पशुओं के लिये (शम्) जिस प्रकार सुख हो उस प्रकार से (पवस्व) वर्षा कर ॥ ऋग्वेद ९ । ११ । ७ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१४४६) इन्द्राय सोम पातवे मदाय परिषिच्यसे ।

३ १र २र ३ १

मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(सोम) सोम ! (मनश्चित्) मन का चिनने वाला=निर्माण करने वाला अर्थात् मनस्वीपने का बढ़ाने वाला और (मनसः) मन का (पतिः) पालक [चन्द्रमा की उत्पत्ति समष्टि मनस्तत्त्व से वेद में कही है, तदनुसार सोम भी चान्द्रमस होने से अपने कार्य का वर्धक पोषक और पालन करने वाला है] (मदाय) हर्ष के लिये (पातवे) पानार्थ (इन्द्राय) राजा के लिये (परि पिच्यसे) सर्वतः पात्रों में सेचन किया जाता है ॥ ऋग्वेद ९ । ११ । ८ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४४७) पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः ।
२ ३ १ २ ३ २
इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥ ६ ॥ [३]

भाषार्थः—(पवमान) शुद्ध ! शोधक ! (इन्दो) प्रकाशक ! (सोम) सोम ! तू (नः) हमारे (युजा) सहायक (इन्द्रेण) इन्द्र के साथ (नः) हमारे लिये (सुवीर्यम्) सुन्दर वीर्य और (रयिम्) धान्यादि धन को (रिरीहि) दे ॥ ऋग्वेद ९ । ११ । ९ में भी ॥ ६ ॥

अथ तृचस्य द्वितीयसूक्तस्य—सुकक्षऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१४४८) उद्घेदभिश्रुता मघं वृषभं नर्यापसम् ।
१ २
अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (११५) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३क २र
(१४४९) नव यो नवतिं पुरो विभेद बाह्वोजसा ।
१ २ ३ १ २
अहिं च वृत्रहाऽवधीत् ॥ २ ॥

भावार्थः-(यः) जो (वृत्रहा) मेघहन्ता इन्द्र (अहिम्) मेघ को (अवधीत्) मारता (च) और (नव नवतिम्) ९९ (पुरः) क़िलों को (बिभेद) ढाता है [वह इन्द्र इत्यादि] अगले मन्त्र से अन्वय है॥ यहां ९९ संख्या के क़िलों का व्याख्यान जानने के लिये पूर्व (१७९) संख्या की ऋचा का भाष्य देखकर मिलालेना चाहिये ॥ ऋ० ८ । ९३ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
(१४५०) स न इन्द्रः शिवः सखाऽश्वावद्गोमद्यवमत् ।
३ १ २
उरुधारेव दोहत ॥ ३ ॥ [४]

इति त्रयोदशाऽध्याये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

" उक्तोविषुवान् " अथ " महादिवाकीर्त्यं पृष्ठम् " इतिविवरणकृत् ॥

भावार्थः-(सः) वह (शिवः) सुखस्वरूप और सुखदायक (सखा) याज्ञिक और यजनीय संबन्ध से मित्र (इन्द्रः) इन्द्रनामक वायुविशेष (नः) हमारे लिये (अश्वावत) अश्वों या प्राणों से युक्त (गोमत) गौ वा इन्द्रियों से युक्त (यवमत) जौ और अन्य धान्यों से युक्त धन को (उरुधारा) बहुत दुधार गौ के (इव) समान (दोहते) दुहकर पूर्ण करता है ॥ अष्टाध्यायी ८ । २ । ९ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९३ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ—

तृतीये खण्डे प्रथमतृचस्य—विभ्राट्सौर्यऋषिः । सूर्योदेवता । जगती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३
(१४५१) विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपता-
१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
वविह्रुतम् । वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः
२ ३ १ २र
पिपर्त्ति बहुधा विराजति ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (६२८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

३ १ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ १र
(१४५२) विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मन्दिवो धरुणे सत्य
२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
मर्पितम्। अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे
२ ३ १ २ ३ २
असुरहा सपत्नहा ॥ २ ॥

भावार्थः–(धर्मन्) धारण करने वाले (दिवः) द्युलोक के (धरुणे) धरन=स्तम्भ रूप सूर्यमण्डल में (अर्पितम्) पिरोही हुई (विभ्राट्) जाज्वल्यमान (बृहत्) बड़ी भारी (सुभृतम्) भले प्रकार पुष्ट (वाजसातमम्) अन्न वा बल की वर्षा द्वारा देने वाली (सत्यम्) स्थिर (अमित्रहा) दुष्ट जन्तुओं की नाशक (वृत्रहा) मेघ की विदारक (दस्युहन्तमम्) प्रकाश से चोरों की निवारक [जो कि चोर रात्रि को अन्धकार में पड़ते हैं] (असुरहा) अन्धकार की नाशक (सपत्नहा) दिन में युद्ध के सुगम और सुकर होने से शत्रुओं के नाश की सहायक (ज्योतिः) सूर्य को ज्योति (जज्ञे) उत्पन्न हुई है॥ ऋ० १० । १७० । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४५३) इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदु-
३ १ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
च्यते बृहत्। विश्वभ्राड्भ्राजोमहि सूर्योदृश उरु पप्रथे
२ ३ २ ३ १ २
सह ओजो अच्युतम् ॥ ३ ॥ [५]

भावार्थः–(इदम्) यह (श्रेष्ठम्) प्रशंसनीय (विश्वजित्) विश्व को जीतने वाली (धनजित्) धन को जीतने वाली (बृहत्) बड़ी भारी (विश्वभ्राड्) विश्व की प्रकाशक (महि) बड़ी भारी (भ्राजः) भून देने वाली

(ज्योतिषाम् उत्तमं ज्योतिः) ज्योतियों में उत्तम ज्योति (उच्यते) कहाती है. सो इस (अच्युतम्) अविनाशि (सहः) सब को दबाने वाली (ओजः) बलदायक ज्योति को (दृशे) देखने के लिये (सूर्यः) सूर्य (उरु) बहुतायत से (पप्रथे) फैलाता है ॥ ऋ० १० । १७० । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथात्मकद्वितीयसूक्तस्य—शक्तिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१४५४) इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि
३ १२ २२
जीवाज्योतिरशीमहि ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (२५९) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १
(१४५५) मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्योऽ३ऽमा
२ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३
शिवासोऽवक्रमुः । त्वया वयं प्रवतः
१ २ ३ १ २
शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२॥ [६]

भावार्थः—(शूर) अनन्तवीर्य ! इन्द्र ! परमेश्वर ! (नः) हम को (अज्ञाता) विना जाने (वृजना) पाप (मा) न (अवक्रमुः) लगें और (दुराध्यः) हठी दुराराध्य (अशिवासः) पापी पुरुष संगति को (मा) न मिलें किन्तु (त्वया) आप की सहायता से (प्रवतः) प्रणाम करते हुवे (वयम्) हम भक्त (शश्वतीः) निरन्तर असंख्य जन्म मरणादि दुःखदायक (अपः) कर्मों को (अति तरामसि) लांघ जावें ॥ ऋ० ७ । ३२ । २७ में भी ॥२॥

अथ प्रगाथात्मकतृतीयसूक्तस्य—भर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । ककुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

(१४५६) अद्याऽद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः । विश्वा

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा, दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥१॥

भाषार्थः—(सत्पते) हे सत्पुरुषों के रक्षक ! पालक ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (नः) हमारी (अद्य अद्य) आज (च) और (श्वः श्वः) कल्ह २ और (परे) परले दिन, इस प्रकार (विश्वा अहा) सब दिन (त्रास्व) रक्षा करो (च) और (नः) हम (जरितॄन्) स्तोताओं की (दिवा) दिन में (च) और (नक्तम्) रात्रि में भी (रक्षिषः) रक्षा करो ॥

भाव यह है कि आज कल परसों इत्यादि सब दिन परमात्मा से रक्षा प्रार्थना करनी चाहिये क्योंकि वह सब काल में दिन रात सत्पुरुषों की रक्षा और पालन करने वाला है ॥ ऋ० ८ । ६१ । १७ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१४५७) प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः संमिश्लो

३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १र २र

वीर्याय कम् । उभा ते बाहू वृषणा

३ १र २र ३ १ २

शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥२॥ [७]

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे असंख्यकर्मा परमेश्वर ! विविधसृष्टिकर ! (ते) आप की (उभा) असंख्य होने पर भी बायें दाहिने [अनुकूल प्रतिकूल] भेद से दो प्रकार की (बाहू) भुजायें (वृषणा) कामनाओं को वर्षाने वाली हैं। (या) जो कि (वीर्याय) दुष्ट प्राणियों के निग्रहार्थ (वज्रम्) विविधशक्ति रूप आयुध को (नि—मिमिक्षतुः) धारण कर रही हैं। सो आप (प्रभङ्गी) प्रलय काल में सर्वसंहारकारक और (शूरः) अतिविक्रमी (मघवा) परोपकारे च्छा वाले और (तुवीमघः) अनन्तधन और (संमिश्लः) सब में रमे सर्वव्यापक (कम्) प्रजापति [शतपथ २ । ५ । २ ।१३] हैं ॥

इस में संस्कृतभाष्योक्त "सर्वेन्द्रियगु०" इत्यादि उपनिषदों और "विश्व तश्चक्षुरुत" इत्यादि वेदमन्त्रों के अनुसंधान से जानना चाहिये कि परमात्मा की अनन्तशक्ति ही रूपकालङ्कार से वर्णित है, न कि उस का मूर्तिमत्त्व, क्योंकि "न तस्य प्रतिमा अस्ति" यजुः ३२ । ३ इत्यादि अन्य श्रुतियों ने उस की प्रतिमा का निषेध कहा है ॥ ऋग्वेद ८ । ६१ । १८ में भी ॥ २ ॥

इति त्रयोदशाऽध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थे खण्डे प्रथमस्यैकर्चसूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । सरस्वान्देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४५८) जनीयन्तोन्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः ।
१ २
सरस्वन्तꣳ हवामहे ॥ १ ॥ [८]

भावार्थः-(जनीयन्तः) स्त्री चाहते हुवे (पुत्रीयन्तः) और पुत्र चाहते हुवे (सुदानवः) यज्ञादि परोपकार करने वाले (अग्रवः) उपासक हम (नु) आज (सरस्वन्तम्) सर्वज्ञ परमात्मा को (हवामहे) पुकारते हैं ॥

अर्थात् यज्ञादि परोपकार करने वालों को परमात्मा की यज्ञानुष्ठान-जनित कृपा से स्त्री पुत्र आदि सब ऐश्वर्य सुख भोग सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥

सामश्रमी जी कहते हैं कि "विवरण के मत में यह १ एक ऋचा का सूक्त नहीं है, किन्तु दो ऋचा का प्रगाथ है, । तथा च अगली " उत नः " यह ऋचा इसी सूक्त की द्वितीया ऋचा है, न कि अन्य सूक्त । और मूल पुस्तकस्थ पाठों के देखने से भी यह अनुकूल जान पड़ता है " परन्तु हमने ऊपर व्याख्या में सायणमत लेकर इस को एकर्च सूक्त कहा है ॥ ऋ० ७ । ९६ । ४ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयस्यैकर्चसूक्तस्य-भरद्वाजऋषिः । सरस्वती देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४५९) उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।
१ २ ३ १ २
सरस्वती स्तोम्याऽभूत् ॥ १ ॥ [९]

भावार्थः-(उत) और पूर्वोक्त सर्वज्ञ परमात्मा की स्तुति के लिये (नः) हमारी (प्रियासु) प्यारियों में (प्रिया) अतिप्यारी मधुरस्वरयुक्ता (सप्त

खसा) गायत्री आदि सात ७ छन्दोजातिरूप बहनों वाली (सुजुष्टा) भले प्रकार अभ्यास से सेवित (स्तोम्या) प्रशंसनीय (सरस्वती) वाणी [निघं० १ । ११] (भूत्) होवे ॥

अर्थात् जब हम वेदसूक्तों से परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करें तो हमारी वाणी अतिप्रिय मधुर गायत्री आदि सात ७ छन्दों में विभक्त अच्छे प्रकार अभ्यस्त और प्रशंसनीय हो ॥ ऋग्वेद ६ । ६१ । ११ में भी ॥ १ ॥

अथ तृतीयस्यैकर्चसूक्तस्य—विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । गायत्रीछन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(१४६०) तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि ।
२ ३ १ २ ३ १ २
धियोयोनः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ [१०]

भावार्थः—हम उपासक लोग उस (सवितुः) सर्वोत्पादक सर्वपिता (देवस्य) प्रकाशमान ज्योतिः स्वरूप परमेश्वर के (तत्) उस अनिर्वचनीय (वरेण्यम्) वरणीय भजनीय (भर्गः) तेज का (धीमहि) ध्यान करते हैं (यः) जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) अत्यन्त प्रेरित करे ॥

अर्थात् जो सर्वजगदुत्पादक सर्वपिता सविता देव ज्योतिःस्वरूप परमात्मा हमारी धर्मादिविषयक बुद्धियों को भले प्रकार प्रेरित करे उस जगदीश्वर के भजनीय और भर्गः=अविद्यादि दुःखदायक विघ्नों के भूनडालने वाले ज्ञानस्वरूप का हम ध्यान करते हैं ॥

अथवा (यः) जो सूर्य (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरित करता है उस (सवितुः) ओषधि वनस्पत्यादि सब प्राणी जगत् की उत्पत्ति के निमित्तभूत (देवस्य) प्रकाशमान सूर्य के (तत्) उस अनिर्वचनीय इयत्ता से जानने में न आने वाले (वरेण्यम्) सेवनीय (भर्गः) दुर्गन्धादि जनित दुष्ट जन्तु रोगकारकों के भून डालने वाले [धूप] को हम (धीमहि) धारण करते हैं ॥

सूर्य की धूप के सेवन से दुर्गन्धादि दोष दूर होकर नैरोग्यादि की वृद्धि होती है और उस की धूप तथा प्रकाश से निद्रा आलस्यादि तमोगुण के कार्यों का नाश होकर मनुष्यों की बुद्धियें फुरती हैं । हम को यह सब जान कर सूर्य की धूप का विधिवत् सेवन करके उपकार ग्रहण करना चाहिये ॥

यद्वा-भर्गः शब्द से अन्न का ग्रहण जानिये। सूर्यद्वारा वर्षा और यवगोधूमादि ओषधि और वट पिप्पलादि वनस्पति उगते हैं जिन से अन्न होता है। इस लिये भी सूर्यजनित अन्न का विधिपूर्वक धारण सेवन करना इस मन्त्र का उपदेश है। सायणाचार्य ने भर्गः पद से अन्न अर्थ लेने में एक आथर्वणिकों का मत उद्धृत किया है जो हमने संस्कृत भाष्य में लिख दिया है॥

ये ही तीनों अर्थ सायणाचार्य ने भी किये हैं। भर्गः, धीमहि और प्रचोदयात् पदों की सिद्धि में अष्टाध्यायी ६।४।४७, ६।१।३४, २।४।७३ और उणादि ४।१९९, ४।२१६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥

इस में भी सूक्तसंख्या में मतभेद है। सत्यव्रतसामश्रमी जी कहते हैं कि "विवरण के मत और समस्त मूलसंहिताग्रन्थों के देखने से ज्ञात होता है कि यह तीन ऋचा का सूक्त है। तथा च-इस से अगली "सोमानं स्व०" और "अग्न आयूं०ष०" ये दो ऋचायें इसी सूक्त की दूसरी और तीसरी ऋचा जाननी चाहियें, न कि अलग अन्य सूक्त। यह विवेक है।" हम ने जो ऊपर इस को एकर्चसूक्त लिखा है सो सायणाचार्य का मत है॥

ऋग्वेद ३।६२।१० में भी॥१॥

अथैकर्चस्य चतुर्थसूक्तस्य—मेधातिथिर्ऋषिः। (इन्द्राऽपरनामा) ब्रह्मणस्पतिर्देवता। गायत्री छन्दः॥

३ २३ १२ ३१ २
(१४६१) सोमानाᳬ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते।
३ १२३ १ २ ३ २
कक्षीवन्तं य औशिजः॥१॥[११]

इस की व्याख्या (१३९) में हो गई है॥१॥

अथैकर्चस्य पञ्चमसूक्तस्य—वैखानस ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३१ २
(१४६२) अग्न आयूᳬंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः।
३ १ २ ३ १ २
आ रे वाधस्व दुच्छुनाम्॥१॥[१२]

इस की व्याख्या (६२७) में हो चुकी है॥१॥

अथ तृचस्य षष्ठसूक्तस्य—यजत ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते।
गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २
(१४६३) ता नः शक्तं पार्थिवस्य महोरायोदिव्यस्य।
१ २ ३ २ ३ १ २
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (११४१) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१४६४) ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते।
३ १ २ ३ १ २
अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ २ ॥

भावार्थः—(ऋतेन) जल से (ऋतम्) यज्ञ को (सपन्ता) स्पर्श करते हुवे (इषिरम्) मन चाहे (दक्षम्) बल को (आशाते) प्राप्त होते और (अद्रुहा) द्रोहरहित (देवौ) दिव्य प्राण और अपान (वर्धेते) बढ़ते हैं॥ ऋ० ५ । ६८ । ४ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३क २र ३ २उ ३ १ २
(१४६५) वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः।
३ २ ३ १ २
बृहन्तं गर्त्तमाशाते ॥ ३ ॥ [१३]

भावार्थः—(वृष्टिद्यावा) जिन से द्युलोक वर्षा करने वाला होता है ऐसे (रीत्यापा) जिन से जलों की प्राप्ति होती है वे दोनों (दानुमत्याः इषः) देने योग्य अन्न के (पती) पालन करने वाले दोनों प्राण और अपान (बृहन्तं गर्त्तम्) बड़े गर्त्त=ब्रह्माण्ड को (आशाते) व्याप रहे हैं ॥

ऋ० ५ । ६८ । ५ में भी ॥ ३ ॥

अथ सप्तमस्य तृचसूक्तस्य—मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४६६) युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
१ २ ३ २ ३ २
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

भावार्थः—(परि) चारों ओर (तस्थुषः) स्थित (रोचनाः) प्रकाशमान लोक लोकान्तर (ब्रध्नम्) सूर्य और (अरुषम्) सूर्याश्रित अग्नि तथा (चरन्तम्) अग्न्याश्रित चलने-वाले वायु को (युञ्जन्ति) आपे में जोड़ते हैं, तब (दिवि) अन्तरिक्ष में (रोचन्ते) प्रकाशते हैं ॥

इन्द्र का इन्द्रत्व परमैश्वर्य के योग से है और सूर्य अग्नि वायु रूप से अवस्थान परमैश्वर्य है । इस लिये यहां इन्द्र की ही प्रशंसा है क्योंकि इन्द्र ही इस ऋचा का देवता है । इस लिये यहां ब्रध्न शब्द से सूर्य, अरुष् से अग्नि और चरन् से वायु का ग्रहण है । तथा च सायणाचार्य ने भी लिखा है कि "उक्तार्थपरक ही इस मन्त्र का व्याख्यान ब्राह्मणान्तर में भी है कि—'युञ्जन्ति ब्रध्नम्० से सूर्य को, अरुषम्० से अग्नि को, और चरन्तम्० से वायु को युक्त करना तात्पर्य है, परितस्थुषः—से इन गगनमण्डल में दृश्यमान लोकलोकान्तरों का तात्पर्य है । रोचन्ते रोचना दिवि—से नक्षत्रों के प्रकाशन का तात्पर्य है' ॥

भाव यह हुवा कि सूर्य के चारों ओर वर्त्तमान पृथिवी चन्द्रमा आदि लोक लोकान्तर सूर्य के तेज से चमकते हैं । ऐसा ही मन्त्र यजुर्वेद अ०२३ में ५ वां है, उस का भाष्य करते हुवे महीधर ने भी लिखा है कि "प्रकाशित चन्द्र ग्रह तारा आदि सूर्य के तेज से चमकते हैं" फिर महीधर अपने कथन की पुष्टि में कहते हैं कि ज्योतिःशास्त्र में भी कहा है कि "तेजों का गोला सूर्य है और अन्य नक्षत्रादि अम्बुगोलक हैं," [स्वयं प्रकाश नहीं है] ऋग्वेद १ । ६ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४६७) युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
१ २ ३ २ ३ १ २
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

भावार्थः—(अस्य) इस [अग्नि और उसके कार्य पदार्थों में उस उस रूप को प्राप्त] सूर्य के (रथे) रमणीय गोले में वर्त्तमान (काम्या) कामना करने योग्य (विपक्षसा) विविध ७ रंग पार्श्व जिन में हैं, तो भी (शोणा) रक्तवर्ण प्रतीत होने वाले (धृष्णू) न सहारे जाने वाले (नृवाहसा) मनुष्यादि प्राणियों के धारक होकर बहने वाले (हरी) शोषक होनेसे हरण करने वाले सीधे तिरछे दो प्रकार के किरणों को (युञ्जन्ति) पृथिव्यादि लोक जो सूर्य के चारों ओर वर्त्तमान हैं, अपने में युक्त करते हैं॥ ऋग्वेद १। ६। २ और यजुः २३। ६ में भी॥ २॥

अथ तृतीया—

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४६८) केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशोमर्या अपेशसे।
२ ३ १ २
समुषद्भिरजायथाः॥ ३॥ [१४]

भावार्थः—(मर्याः) हे मनुष्यो! (अकेतवे) प्रज्ञानरहित रात्रि में सोये हुवे प्राणिवर्ग के लिये (केतुम्) प्रज्ञान (कृण्वन्) करता हुवा और (अपेशसे) रूपरहित पदार्थ के लिये (पेशः) रूप करता हुवा यह सूर्य (उषद्भिः) दाहक किरणों से (सम् अजायथाः) उदय होता है॥

निघण्टु ३। ७ व ९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये। सूर्य से ही प्रज्ञा का उद्बोधन होता है और सूर्य से ही उस उस पदार्थ का रूपवान्पना है, सूर्य ही जब प्रातः उदय होता है तब प्रत्येक पदार्थ के रूप की भावना कराता है। वास्तव में सब रूप रङ्गों की उत्पत्ति ही सूर्य से है। यह मन्त्र में परमात्मा का मनुष्यों के प्रति उपदेश है॥ ऋ० १। ६। ३ और यजुः २९। ३७ में भी॥ ३॥

इति त्रयोदशाऽध्यायस्य चतुर्थः खण्डः॥ ४॥

अथ

पञ्चमे खण्डे प्रथमतृचस्य—उशनाऋषिः। सोमोदेवता। १—सतः पङ्क्तिः, २—विराट् त्रिष्टुप्, ३—निचृत् त्रिष्टुप् च छन्दः॥ तत्र प्रथमा—

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३
(१४६९) अयꣳ सोम इन्द्र तुभ्यꣳ सुन्वे, तुभ्यं पवते

१ २ २ ३ १ २ ३ १२ २२३२उ
त्वमस्य पाहि । त्वᳬ᳭ ह यं चकृषे त्वं ववृष,

३ १२३ १ २ ३ १ २
इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे राजन् । वा सूर्य । (अयम्) यह (सोमः) सोम (तुभ्यम्) तेरे लिये (सुन्वे) अभिषुत किया जाता है (तुभ्यम्) तेरे लिये (पवते) शोधा जाता है (त्वम्) तू (अस्य) इस सोम की (पाहि) रक्षा वा पान कर (त्वम्) तू (ह) प्रसिद्ध (यम्) जिस सोम को (चकृषे) उत्पन्न करता है (त्वम्) तू (मदाय) हर्ष और (युज्याय) सहाय के लिये उस (इन्दुम्) गीले (सोमम्) सोम को (ववृषे) अङ्गीकृत कर ॥

"इन्द्रानिलयमार्काणाम्०" इत्यादि मनुप्रोक्त रीति से यहां इन्द्र पद से राजा का भी ग्रहण है ॥ ऋग्वेद ९ । ८८ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
(१४७०) स ईᳬ᳭ रथो न भुरिषाडयोजि, महः पुरूणि

३ २३ १ २ २ ३ २ ३क २र
सातये वसूनि । आदीं विश्वा नहुष्याणि

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
जाता, स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥२॥

भावार्थः—(महः) महान् (रथः) रथ (न) सा, रक्षक (सः) वह (ईम्) ही, सोम (वने) संग्रामस्थल [मैदान] में (भूरिषाट्) बहुत सहन शक्तिदायक है, अतः (अयोजि) प्रयुक्त=सेवित किया जाता है । किस लिये ? उत्तर—(पुरूणि) बहुत (वसूनि) युद्धलभ्य धनों को (सातये) देने के लिये । (आत्, ईम्) अनन्तर (विश्वा) सब (नहुष्याणि) मानुष (जाता) उत्पन्न हुवे (ऊर्ध्वा) ऊंचे=भारी (स्वर्षाता) क्षात्रधर्मोचित युद्ध करने वाले योद्धाओं को स्वर्गप्रद संग्राम (नवन्त) संगत होते हैं ॥

पूर्व मन्त्र में राजा को सोम का उत्पादन, रक्षा, अभिषव और पान का उपदेश था; इस मन्त्र में उस का प्रयोजन वा फल कहा है कि सोम, संग्राम

में एक बड़े भारी रथ के समान रक्षक है, उस के प्रयोग (सेवन) से चोट के सहन की शक्ति बढ़ती है, जिस से संग्रामों में विजयपूर्वक बहुत धनों की प्राप्ति होती है और मनुष्यों के सब उत्पन्न हुवे संग्राम, जो क्षात्रधर्मानुसार हों तो स्वर्गदायक हैं, संगत=सार्थक होते हैं ॥

निघण्टु २ । ३, २ । १४ के प्रमाण और सायणाचार्य का संमतत्व संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ९ । ८८ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २उ ३ १र २र ३ १ २ ३ २उ
(१४७१) शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वा, ऽनभिशस्ता दिव्या
३ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यथा विट् । आपो न मक्षु सुमतिर्भवा नः,
३ १ २ ३ २उ ३ १
सहस्राप्साः पृतनाषाड् न यज्ञः ॥ ३ ॥ [१५]

भावार्थः—(शुष्मी) बलवान् सोम (मारुतं शर्धः न) वायुओं के बल= वेग के समान (पवस्व) शुद्धि करे (यथा) जिस से (दिव्या विट्) देवतों के वैश्य=मरुद्गण [सायणाचार्य कहते हैं कि "मरुत् देवों के वैश्य हैं" यह ब्राह्मण में लिखा है] (अनभिशस्ता) उत्तम अनिन्द्य प्रशस्त हो, (आपः न) जलों के समान (नः) हमारे लिये (मक्षु) शीघ्र (सुमतिः) सुन्दरबुद्धि तत्ववाला (भव) हो, (सहस्राप्साः) बहुतरूपों वाला (पृतनाषाड्) सेनाओं में सहनशक्ति का देने वाला (न) जैसे (यज्ञः) अनेक प्रकार से उपकारक है, वैसे अनेक प्रकार का उपकार करने वाला सोम भी हो ॥

सोम का सेवन करने वाले बलवान् हो जाते हैं इस से सोम का विशेषण (शुष्मी) बलवान् रक्खा है, सोमसेवी लोग बुद्धिमान् भी हो जाते हैं अतः उस को (सुमतिः) उत्तम बुद्धिमान् कहा है । जैसे जल से शीघ्र शान्ति प्राप्त होती है वैसे सोम का भी शान्तिदायक कहने के लिये जल का दृष्टान्त उपयोगी है । और जैसे अनुष्ठान किया हुवा यज्ञ अनेक प्रकार उपकारक है, वैसे ही सेवन और होम किया हुवा सोम भी अनेक रूप से उपकारक होता है । इस से यज्ञ की उपमा कही गई । विशेष कर क्षात्रधर्म का उपयोगी होने से सोम को (पृतनाषाड्) सेना की उपयुक्त सहनशक्ति

का दाता बताया गया है ॥ सायणाचार्योद्धृत ब्राह्मण का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ८८ । ७ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—भरद्वाजऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

(१४७२) त्वमग्ने यज्ञानाᳫं होता विश्वेषाᳫं हितः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (२) में हो गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

(१४७३) स नोमन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः ।

१ २ १ २ ३ १ २

आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ २ ॥

भावार्थः—(सः) वह अग्नि (नः) हमारे (अध्वरे) यज्ञ में (मन्द्राभिः) हव्य पदार्थों के संसर्ग से हर्षकरी (जिह्वाभिः) लपटों से (महः) बड़े भारी (देवान्) वायु आदि देवों का (यज) यजन करे क्योंकि अग्नि ही देवदूत होने से देवों का (आवक्षि) आवाहन करता (च) और (यक्षि) यजन करता है ॥

कोई लोग सूर्य के किरणों के ७ रङ्गों के समान अग्नि की लपटों में भी ७ अवस्था मान कर ७ नाम धरते हैं किः—

१—काली=श्याम । २—कराली=असह्यवर्णा ।

३—मनोजवा=मन के समान अत्यन्त चञ्चल ।

४—सुलोहिता=पूरी सुर्ख़ । ५—सुधूम्रवर्णा=धुंधली ।

६—स्फुलिङ्गिनी=चिनगारियों वाली ।

७—विश्वरूपा=सब रूपों वाली मिली हुई ॥

श्रीसत्यव्रतसामश्रमी अपनी टिप्पणी में " लोला " नाम आठवीं भी लिखते हैं ॥ ऋ० ६ । १६ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१४७४) वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा ।

१ २ ३ १ २

अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ ३ ॥ [१६]

भाषार्थः—(वेधः) यज्ञ के विधाता ! (सुक्रतो) सुकर्मन् ! (देव) प्रकाशमान ! (अग्ने) अग्ने ! तू (यज्ञेषु) दर्शपौर्णमासादि यज्ञों में (हि) निश्चय (अध्वनः) दूरमार्गों (च) और (पथः) समीपमार्गों को (अञ्जसा) अनायास शीघ्र (वेत्थ) जानता=पहुंचाता है ॥

अग्नि को यज्ञ का विधायक होने से विधाता, और यज्ञरूप शोभनकर्म का प्रधान साधन होने से सुकर्मा और प्रकाशमान होने से देव कहा गया। वह देवदूत अग्नि दूरस्थ तथा समीपस्थ सब देवों के मार्गों को पहचानता अर्थात् उस २ देवता को उस का भाग पहुंचाने में समर्थ है ॥ ऋ० ६ । १६ । ३ में भी ॥ ३ ॥

उक्तोविश्वजित् । इदानीं महाव्रते भवान्याज्यानि ।

इति विश्व० ॥

अथ तृतीयतृचस्य—देवश्रवा देववातोवा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

(१४७५) होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया ।

१ २ ३ ३ १ २

विदथानि प्रचोदयन् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(होता) होम का साधक (देवः) प्रकाशमान (अमर्त्यः) अमर अग्नि (मायया) बुद्धि से (विदथानि) ज्ञानेन्द्रियों को (प्रचोदयन्) प्रेरित करता हुवा (पुरस्तात्) आगे आकाश को (एति) जाता है ॥

अग्नि हमारे समान मरणधर्मा न होने से अमर, प्रकाशमान होने से देव, देवों को दूत होने से होता, और प्रकाश से बुद्धि का प्रेरक होने से ज्ञानेन्द्रियों का भी प्रेरक है ॥ ऋग्वेद ३ । २७ । ७ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १२ २२ ३२३ १२
(१४७६) वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्रणीयते।
१ २ ३२३ १२
विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ २ ॥

भावार्थः—(वाजी) बलवान् अग्नि (वाजेषु) बलसाध्यकार्यों=यानादिकों में (धीयते) रक्खा जाता है। (अध्वरेषु) यज्ञों में (प्रणीयते) अध्वर्यु आदिकों द्वारा अतिशयता से आहवनीयादि कुण्डस्थानों में ले जाया जाता है (विप्रः) वह बुद्धितत्वयुक्त अग्नि (यज्ञस्य) यज्ञ का (साधनः) साधक है॥ ऋग्वेद ३। २७। ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २३ १२ ३२३ २३ १२
(१४७७) धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमादधे।
१ २ ३२३ १२
दक्षस्य पितरं तना ॥ ३ ॥ [१७]

भावार्थः—अग्नि द्वारा इन्द्रियों की प्रेरणा से क्या फल होता है सो कहते हैं:—(वरेण्यः) वरणीय अग्नि (भूतानाम्) प्राणियों के (गर्भम्) गर्भ का (आदधे) आधान करता है अर्थात् गर्भरूप से स्वयं स्थित होता है और (धिया) बुद्धि तत्त्व से (दक्षस्य) बल के (पितरम्) पिता=जनक (तना) धन को (चक्रे) उत्पन्न कराता है॥

अग्नि इस लिये वरण करने योग्य है कि सब प्राणियों में जीवन रूप गर्भ बन कर स्वयं स्थित है और बुद्धितत्त्व की प्रेरणा करके बल के जनक धन को उत्पन्न कराता है॥ ऋग्वेद ३। २७। ९ में भी ॥ ३ ॥

इति त्रयोदशाऽध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठे खण्डे प्रथमतृचस्य—हर्यतऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः॥ तत्र प्रथमा—

२ ३१ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
(१४७८) आ सुते सिञ्चत श्रियꣳ रोदस्योरभिश्रियम्।
३ १ २ ३ २
रसा दधीत वृषभम् ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! (वृषभम्) वर्षा करने वाले होमाग्नि का (दधीत) आधान "अन्याधान" की रीति से करो और फिर (रसा) सोमरूप अन्न (सुते) अभिषुत होने पर (रोदस्योः) द्यावाभूमी का (अभिश्रियम्) अभ्याश्रय करने वाले (श्रियम्) तपे हुवे घृत=आज्य का (आ सिञ्चत) आसेचन करो ॥

यहां देवतानुक्रमणी के अनुसार इस ऋचा का अग्नि देवता पढ़ते हुवे सायणाचार्य ने और हम ने भी अग्निपरक व्याख्यान किया है। होमार्थ अग्नि के वृष्टिकारक होने से "वृषभम्" यह अग्नि का विशेषण अनुचित नहीं है ॥ ऋग्वेद ८। ७२। १३ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१४७९) ते जानत स्वमोक्या३ꣳ सं वत्सासो न मातृभिः ।
३ १ २ ३ १ २
मिथो नसन्त जामिभिः ॥ २ ॥

भावार्थः—(ते) जो सोमान्न से मिश्रित अग्नि में हुत अन्य भाग हैं, वे (स्वम्) अपने (ओक्यम्) स्थान को (जानते) जानते हुवे से (जामिभिः) मेघजलों से (मिथः) परस्पर (नसन्त) जा मिलते हैं । दृष्टान्त—(न) जैसे (वत्सासः) बछड़े (मातृभिः) गौवों से (सम्) जा मिलते हैं, तद्वत् ॥

निघण्टु १ । १२ में जामि=जलनाम है ॥ ऋ० ८ । ७२ । १४ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(१४८०) उपस्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि ।
१ २ ३ २उ ३ २
इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥ ३ ॥ [१८]

भावार्थः—(स्रक्वेषु) गलाफुवों के तुल्य लपटों में (बप्सतः) भक्षण करते=भस्म करते हुवे (अग्नौ) अग्नि में, (इन्द्रे) मध्यस्थान वायु में और (दिवि) द्युस्थान आदित्य में (स्वः) सुखदायक (धरुणम्) धारण करने वाले स्तम्भरूप (नमः) अन्न को (उप—कृण्वते) उपस्कृत करते हैं [ऋत्विज् लोग]

अर्थात् जब होता लोग अग्नि में हव्य छोड़ते हैं तब वे तीनों लोकों को उस से उपकृत करते हैं ॥ ऋ० ८ । ७२ । १५ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—बृहद्दिवऋषिः । इन्द्रोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१र २र३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१४८१) तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतोजज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः।
३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
सद्यो जज्ञानोनिरिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः १

भावार्थः—(तत्) वह प्रसिद्ध (भुवनेषु) सब भुवनों में (ज्येष्ठम्) अत्यन्त बड़ा ब्रह्म (इत्) ही (आस) था, (यतः) जिस निमित्तकारण से (उग्रः) तेजस्वी (त्वेषनृम्णः) प्रकाश बलवाला इन्द्र=सूर्यः (जज्ञे) उत्पन्न हुवा । (जज्ञानः) सो उत्पन्न हुवा सूर्य (सद्यः) शीघ्र (शत्रून्) मनुष्यों के शत्रु सूक्ष्म दुष्टजन्तुओं को (नि रिणाति) निरा नष्ट कर डालता है (यम्) जिस सूर्य के (अनु) उदय होने पश्चात् (विश्वे) सब (ऊमाः) प्राणी (मदन्ति) हृष्ट होते हैं ॥

ब्रह्म ही सब भुवनों से बड़ा है, यह बात अथर्व १० । ४ । ७ में कही गई है । उस ने तेजोरूप चक्षुःस्थानी सूर्य को उत्पन्न किया, यह भी ऋ० १० । ९० । १३, यजुः ३१ । १२, अथर्व १९ । १ । ६ और ऋ० १० । १९० । ३ में तथा अन्य बहुत स्थलों में प्रसिद्ध है, मूल मन्त्र और अष्टाध्यायी ७ । ४ । ११७, २ । ४ । ५२, ६ । ४ । ९८, १ । १ । ५९, ८ । १ । ६६, ७ । ३ । ८०, ६ । ४ । ८०, ३ । १ । ८५, २ । ३ । ८, १ । ४ । ८४ निघण्टु २ । ९ और सायणाचार्य के उद्धृत किये हुवे ब्राह्मण का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

ऋ० १० । १२० । १ में भी ॥ २ ॥ अथ द्वितीया—

३ १र २र३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४८२) वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
दधाति । अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त
१ २ ३ १ २
प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥

भावार्थः—(वावृधानः) उदय होकर बढ़ता हुआ, (भूर्योजाः) अति बली (शत्रुः) दुष्टजन्तुनाशक सूर्य (शवसा) बल से (दासाय) हानिकारक दुष्ट जन्तु के लिये (भियसम्) भय का (दधाति) धारण करता है (च) और (अव्यनत्) अप्राणी (च) तथा (व्यनत्) प्राणी ये सब (प्रभृता) पोषित वा धारित भूतमात्र (सस्नि) भले प्रकार शोधित हुवे (मदेषु) हर्षों में (ते) उस सूर्य के लिये (संनवन्त) संगत होते हैं ॥

सूर्य चराऽचरात्मा होने से सब का धारक पोषक और हानि वा रोगादि कारक वायु वा जल के विकार से उत्पन्न जन्तुओं का नाशक उन का शत्रु होकर जगत् का उपकार करता है ॥

निरुक्त ५ । १ निघण्टु २ । १४ अष्टाध्यायी ३ । २ । १७१, ६ । १ । ३७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १० । १२० । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ३ २उ ३ १ २
(१४८३) त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः।
३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः
३ १ २ ३ १ २
सुमधु मधुनाऽभियोधीः ॥ ३ ॥ [१९]

भावार्थः—(यत्) जब कि (एते) ये (ऊमाः) कर्मानुष्ठानी प्राणी मनुष्य (द्विः) पुत्र जन्म से दुहरे और (त्रिः) पौत्र जन्म से तीहरे (भवन्ति) होजाते हैं, (अपि) तौ भी (त्वे) उस सूर्य में ही (विश्वे) सब लोग (क्रतुम्) कर्म को (वृञ्जन्ति) समाप्त करते हैं । (स्वादोः) स्वादु से (स्वादीयः) अति स्वादु (अदः) इस रस को (स्वादुना) स्वादु रस से (संसृज) सूर्य मिलाता है और (सुमधु) उत्तम मधु को (मधुना) मधुर रस से (अभियोधीः) लड़ाता=जुटाता है ॥

सूर्य ही कर्मात्मा है, उसी के सहारे से सब लोग बेटे पोतों वाले बूढ़े होकर भी सब कर्म पूरे करते हैं । सूर्य ही उस २ रसाल पत्र पुष्प फलादि से स्वादु से स्वादु और मधुर से अति मधुर रस को जुटाता है ॥ सायणाचार्योक्तब्राह्मण

का पाठ और अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १० । १२० । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—गृत्समदऋषिः । इन्द्रो देवता । अष्टिश्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २र
(१४८४) त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपि
३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २
बद्विष्णुना सुतं यथावशम् । स ईं ममाद महि कर्म कर्त्तवे
३ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र
महामुरुꣳसैनꣳसश्चद्देवो देवꣳसत्यइन्दुःसत्यमिन्द्रम् १

इस की व्याख्या (४५७) में हो गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ १र २र ३ १र २र
(१४८५) साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ ।
३ २ ३ २ ३क २र ३ २उ ३ १ २
साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ॥
२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनꣳ
३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र
सश्चद्देवो देवꣳसत्यइन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(प्रचेतन) चेताने वाले ! सूर्य ! (क्रतुना) कर्म वा बुद्धि तत्त्व के (साकम्) साथ और (ओजसा) आकर्षण बल के (साकम्) साथ (जातः) उदय हुवा (वीर्यैः) बलवान् किरणों के (साकम्) साथ (वृद्धः) वृद्धि को प्राप्त हुवा (ववक्षिथ) पृथिव्यादि लोकों को ढो रहा है । (मृधः) दुष्ट जन्तुओं को (सासहिः) तिरस्कृत करने वाला (विचर्षणिः) विशेष कर वृष्टि पर अनुग्रह करने वाला (स्तुवते) यजमान जो प्रशंसा करता है

उस-के लिये (राधः) कार्यों के साधन (काम्यम्) चाहने योग्य (वसु) धन धान्य का (दाता) देने वाला है । (एनम्) इस (सत्यम्) सच्चे (देवम्) देव (इन्द्रम्) सूर्य को (सत्यः) सच्चा (देवः) देव (इन्दुः) चन्द्रलोक वा सोम ओषधिराज (सश्चत्) प्राप्त होता है ॥

यह सूर्य सब जगत् का जगाने वाला होने से प्रचेतन है, धारण और आकर्षण के बल से पृथिव्यादि लोकों का वोढा(ले चलने वाला) और धारक है, प्रातः उदय होते ही किरणों से बढ़ता हुवा सब दुष्ट जन्तुओं का नाश करता है, सब की आंखों का सहायक है, जो लोग इन सूर्य के गुणों को वेद सूक्तों द्वारा पढ़ते जानते और यज्ञ करते हैं उन की धन और धान्य की वृद्धि करता है । इस ऐसे सूर्य लोक को प्रकाशार्थ चन्द्रमा और होम किया हुवा सोम आश्रय करता है ॥ ऋ० २ । २२ । ३ का पाठभेद और अष्टाध्यायी २ । ३ । ६९ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१४८६) अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधा भवदा रोदसी

३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३
अपृणदस्य मज्मना प्रवावृधे । अधत्तान्यं जठरे

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १र
प्रेमरिच्यत प्रचेतय सैनꣳ सश्चद्देवो देवꣳ सत्य

२र ३ १र २र
इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ ३ ॥ [२०]

भावार्थः–(अध) सोमपान के पश्चात् (त्विषीमान्) तेजस्वी प्रकाशमान सूर्य (ओजसा) तेजोबल से (युधा) युद्ध से (क्रिविम्) कृमि कीटादि रूप वायुगत सूक्ष्म जन्तुरूप असुर को (अभि–अभवत्) तिरस्कृत करता है (अस्य) इस सोम के (मज्मना) बल से (प्रवावृधे) बढ़ता और (रोदसी) द्यावा भूमी को (आ–अपृणत्) आपूरित करता है (अन्यम्) सोम के एक

भाग को (जठरे) पेट=अन्तरिक्ष में (अधत्त) धरता और (ईम्) इस दूसरे भाग को (प्र-अरिच्यत) अन्य देवों के लिये बचा देता है (प्रचेतय) और चन्द्रादि लोकों को चेताता=प्रकाश पहुंचाता है (सः एनम्०) इत्यादि पूर्वमन्त्रवत् जानो ॥ ऋ० २। ५२। २ में " प्रचेतय " पाठ नहीं है। अन्य सब पूर्ववत् है ॥ ३ ॥

इति त्रयोदशाऽध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

इति षष्ठः प्रपाठकः ॥ ६ ॥

इति श्रीमत्कश्यपवंशावतंस श्रीयुत पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र परीक्षितगढ़ (ज़िला—मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

ओ३म्

अथ चतुर्दशाऽध्यायः

तत्र

प्रथमे खण्डे प्रथमतृचस्य—प्रियमेधऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १र २र ३ १ २ १ २ १ २ ३ २
(१४८७) अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथाविदे ।
३ २ ३ २ ३ १ २
सूनुꣳसत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१६८) में हो गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४८८) आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
२ ३ २ ३ १ २
यत्राभि सं नवामहे ॥ २ ॥

भावार्थः—(यत्र) जिस (बर्हिषि) कुशास्तीर्ण यज्ञ में (अरुषीः) प्रकाशमान सूर्य किरणों (अधि) पर (हरयः) हरित सोम (आ—ससृज्रिरे) अग्नि में चारों ओर से होमे जाते हैं, उस यज्ञ में (अभि—सं—नवामहे) हम चारों ओर से भले प्रकार इन्द्र=सूर्य की प्रशंसा करते हैं ॥ ऋग्वेद ८ । ६९ । ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१४८९) इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
१ २ ३ २ ३ २
यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥ [१]

भावार्थः-(वज्रिणे) विजुलीयुक्त (इन्द्राय) मेघ वर्षक सूर्य के लिये (गावः) उस की किरणें (मधु) मधुर (आशिरम्) दावने योग्य घृतादि को (दुदुह्रे) दुहती हैं (यत्) जिस से (उपह्वरे) समीप वा यज्ञ में (सीम्) सर्वतः (विदत्) पाता है ॥ ऋ० ८ । ६९ । ६ में भी ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथात्मक द्वितीयसूक्तस्य-नृमेधपुरुमेधावृषी । इन्द्रोदेवता । बृहतीछन्दः ॥

तत्र प्रथमा-

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३

(१४९०) आनो विश्वासु हव्यमिन्द्रᳬसमत्सु भूषत । उप

१ २ ३ १ २ २ ३ १ २

ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ॥१॥

इस की व्याख्या (२६१) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया-

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(१४९१) त्वं दाता प्रथमोराधसामस्यसि सत्यईशानकृत् ।

३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २

तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥२॥

भावार्थः-हे इन्द्र ! परमेश्वर ! (त्वम्) तू (प्रथमः) सब से पहला अनादि (राधसां दाता) विद्यादि धनों का देने वाला (असि) है और तू (सत्यः) सच्चा (ईशानकृत्) स्वभक्तों को ऐश्वर्यसंपन्न करने वाला (असि) है (महः) बड़े (शवसः) बल के (पुत्रस्य) पुत्र (तुविद्युम्नस्य) बहुत धन के (युज्या) योग्य कार्यों को (वृणीमहे) हम स्वीकार करें। यह हमारी प्रार्थना है ॥ ऋ० ८ । ९० । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयतृचस्य-त्रसदस्युर्ऋषिः । सोमोदेवता । विराड्बृहती, पाद-निचृद्बृहती, बृहती च क्रमेण छन्दांसि ॥ तत्र प्रथमा-

३ २ ३ १ २ ३२उ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १र २र

(१४९२) प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महोगाहाद्दिवआ निरधु-

१ २ ३ १र २र ३ १ २

क्षत । इन्द्रमभिजायमानᳬ समस्वरन् ॥ १ ॥

भावार्थः—(पूर्व्यम्) पूर्व उत्पन्न हुवे अतएव (प्रत्नम्) पुरातन कारण रूप (पीयूषम्) पीने योग्य (यत्) जिस (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय सोम को (महः) बड़े (गाहात्) अवगाहन (दिवः) द्युलोक से (आ-निरधुक्षत) सामने निरा दुहा था (जायमानम्) लतारूप से उत्पन्न हुवे उसी सोम को (इन्द्रम्) सूर्य को (अभि) लक्ष्य करके (समअस्वरन्) प्रशंसित करते हैं॥

वह अमृतसमान पीने योग्य प्राचीन सनातन कारणरूप सोम जो इस द्युलोक में भरा है और जिस को सामने करके निरन्तर प्राकृत रसायनी संयोग दुहते हैं उसी सोम को जब वह लता वल्ली पत्र रूप से उत्पन्न होता है तब अभिषुत करके सूर्यार्थ होम करने को लक्ष्य करके स्तुत करते हैं॥ ऋ० ९।११०।८ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये॥ १॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१४९३) आदीं केचित्पश्यमानास आप्यं वसु रुचो दिव्या
३क २र ३ १र २र ३ १ २
अभ्यऽनूषत। दिवो न वारꣳ सविता व्यूर्णुते ॥२॥

भावार्थः—(केचित्) कोई विद्वान् लोग (ईम्) इस (आप्यम्) जलोत्पन्न (वसु) धन=सोम को (आत्) दूर से (पश्यमानासः) देखते=जानते हुवे (दिव्याः) द्युलोक की (रुचः) दीप्तियों को (अभि) लक्ष्य करके (अनूषत) स्तुत करते हैं। (दिवः) अन्तरिक्ष के (वारम्) आवरण करने वाले (न) से, सोम को (सविता) सूर्य (व्यूर्णुते) विविध प्रकार फैलाता पूरता है॥ ऋग्वेद ९।११०।६ में भी॥ २॥

अथ तृतीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(१४९४) अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाऽभि
३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ १र २र
मज्मना। यूथे न निष्ठा वृषभो विराजसि ॥३॥ [३]

भावार्थः—(पवमान) सोम ! (अध) फिर (यत्) जब कि तू (इमे) इन दोनों (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोक को (च) और (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवना) भुवनों को (मज्मना) बल से (यूथे) झुंड

में (निष्ठाः) स्थित (वृषभः) बैल के (न) समान (अभि) अभिव्याप कर (विराजसि) विराजता है, तव स्तुत किया जाता है ॥ ऋग्वेद ९। ११०। ९ में भी॥६॥

अथ चतुर्थतृचस्य—शुनः शेप ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ २ उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ र २ र
(१४९५) इममू षु त्वमस्माकꣳ सनिं गायत्रं नव्याꣳसम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने देवेषु प्रवोचः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (२८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१४९६) विभक्ताऽसि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाकया ।
३ २ ३ १ २
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ २ ॥

भावार्थः—(चित्रभानो) हे विचित्र लपटों वाले ! अग्ने ! तू (विभक्ता) विभाग करने वाला भेदक है, (आ) जैसे (सिन्धोः) समुद्र वा नदी की (ऊर्मा) लहरी में (उपाके) समीप ही विभाग होता है तद्वत् । वह तू (दाशुषे) हव्य देने वाले यज्ञकर्त्ता के लिये (सद्यः) शीघ्र (क्षरसि) वर्षा करता है ॥

अग्नि द्वारा भेद को प्राप्त हुवा हव्य शीघ्र वृष्टिकारक होता है । यह तात्पर्य है ॥ ऋ० १ । २७ । ६ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ ३ १ र २ र ३ १ २
(१४९७) आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।
२ ३ २ ३ १ २
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ३ ॥ [४]

भावार्थः—अग्ने ! (परमेषु) द्युलोकस्थ परले (वाजेषु) अन्नों में (नः) हम को (आ भज) पहुंचा और (मध्यमेषु) अन्तरिक्षस्थ बीचले अन्नों में

(आ) हमें पहुंचा तथा (अन्तमस्य) वरले समीपस्थ भूलोक के (वस्वः) धन का (शिक्ष) हमें दान कर ॥

३ लोकों के धन धान्य होम किये अग्नि द्वारा हमें प्राप्त हों, यह भाव है ॥ ऋग्वेद १।२७।५ में भी ॥ ३ ॥

अथ पञ्चमतृचस्य—वत्सऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २उ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४९८) अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।
३ १२ २२
अहꣳसूर्य इवाजान ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१५२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१४९९) अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।
२उ ३ २ ३ २ ३ २
येनेन्द्रः शुष्मसिद्धे ॥ २ ॥

भाषार्थः—जीवात्मा कहता है कि—(अहम्) मैं निष्पाप (प्रत्नेन) पूर्वले (जन्मना) जन्म के संस्कारवल से (कण्ववत्) बुद्धिमानों के समान [विना पढ़े भी] (गिरः) वेदवाणियों को (शुम्भामि) अलंकृत करता हूं (येन) जिस से (इन्द्रः) परमेश्वर (इत्) अवश्य (शुष्मम्) बल को (दधे) मुझे धारित करे ॥ ऋ० ८।६।११ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१२ २२ ३ २ ३ १२ २२ २ १ २ ३ २
(१५००) ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुऋषयो ये च तुष्टुवुः ।
१२ २२ ३ १ २
ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥ [५]

भाषार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (ये) जो नास्तिक (त्वाम्) आप की (न तुष्टुवुः) स्तुति नहीं करते (च) और (ये) जो (ऋषयः) मन्त्रों के

द्रष्टा लोग (तुष्टुवुः) स्तुति करते हैं, उन दोनों में (तुष्टुतः) भले प्रकार स्तुत किये हुवे आप (मम) मेरी (इत्) अवश्य (वर्धस्व) वृद्धि कीजिये॥ ऋग्वेद ८। ६। १२ में भी ॥ ३ ॥

इति चतुर्दशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीये खण्डे प्रथमतृचस्य—अग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१५०१) अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥१॥

भावार्थः—(सहस्कृत) बल से अरणियों को रगड़ कर उत्पन्न किये ! (अग्ने) अग्ने ! तू (विश्वेभिः) सब (अग्निभिः) अग्नियों के साथ (ब्रह्म) हव्य अन्न को (जोषि) सेवन करता है (ये) जो अग्नि (देवत्रा) वायु आदि देवतों में हैं (ये) और जो (आयुषु) मनुष्यों में हैं (तेभिः) उन सब के साथ (नः) हमारी (गिरः) वाणियों को (महय) सत्कृत कर ॥

यज्ञ में बलपूर्वक अरणियों से उत्पादित हुत अग्नि मनुष्यों के देहस्थ और आकाश में वायु आदि स्थित में अग्नियों को अनुकूल बनाकर वाणी का सुधार करता है क्योंकि अन्यत्र भी कहा है कि "अग्नि वाणी होकर मुख में प्रवेश कर गया" ॥ ऋग्वेद ३। २४। ४ में केवल इस ऋचा का प्रथम पाद मिलता है, परन्तु अर्थ पूरे मन्त्र का लगभग इसी के है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१र २उ ३ १ २ ३ १र ६र ३ १ २
(१५०२) प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।
१ २ ३ २ ३ २र ३ २उ ३ १ २
तनये तोके अस्मदा सम्यङ् वाजैः परीवृतः ॥२॥

भावार्थः—(सः) पूर्वोक्त (अग्निः) अग्नि (यस्य) जिस अग्नि के (वाजिनः) हव्य वाले होता लोग हैं (सः) वह (विश्वेभिः) सब (अग्निभिः (जाठरादि अग्नियों के सहित (वाजैः) बलों वा अन्नों से (परीवृतः)

युक्त हुवा (अस्मत्) हम में (तनये) हमारे पुत्र में (तोके) हमारे पोते में (सम्यङ्) भले प्रकार वर्त्तने वाला (आ प्र) प्राप्त हो ॥
हमारे वंश में पुत्र पौत्रादि परंपरा अग्नि होत्र करने वाली हो, यह भाव है ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५०३) त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
१ २ ३ १ २ ३ १र २र
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥३॥ [६]

भावार्थः—(अग्ने) अग्नि ! (त्वम्) तू (अग्निभिः) अन्य अग्नियों सहित (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ (च) और (ब्रह्म) अन्न को (वर्धयः) बढ़ाता है (त्वम्) और तू ही (नः) हमारे (देवतातये) यज्ञ के लिये (रायः) धन के (दानायः) देने के लिये (चोदय) देवतों को प्रेरणा करता है ॥ ऋ० १० । १४१ । ६ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—ऋसद्दस्युर्ऋषिः । सोमोदेवता ।
ऊर्ध्वबृहतीछन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३
(१५०४) त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो, महे वाजाय श्रवसे
१ २ १र २ ३क २र
धियं दधुः । स त्वं नोवीर वीर्याय चोदय ॥१॥

भावार्थः—(वीर) वीर्ययुक्त ! वीर्यवर्धक ! (सोम) सोम ! (प्रथमाः) मुख्य (वृक्तबर्हिषः) यज्ञार्थ कुशा काटने वाले यजमान (महे) बड़े (वाजाय) बल के लिये (श्रवसे) और यश के लिये (त्वे) तुझ में (धियम्) बुद्धि को (दधुः) धारण करते हैं, (सः) वह (त्वम्) तू (वीर्याय) वीरों के लिये हित के अर्थ (चोदय) बड़े बल और यश को प्रेरित कर ॥ ऋ० ९ । ११० । ७ में भी ॥१॥

अथ द्वितीया—

३ २र ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १र २र ३
(१५०५) अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कंचिज्जन-
२ ३ १ २ १ २ ३ १र २र ३ १ २
पानमक्षितम् । शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥ २ ॥

भावार्थः—सोम ! तू (अवसा) अन्न से (गभस्त्योः) द्यावा भूमियों के बीच में (अभि, अभि) ऊपर ऊपर (उत्सम्) कुवा (न) सा (ततर्दिथ) तोड़ देता है (न) जैसे (भरमाणः) कुवा से पानी भरने वाला=कुवा चलाने वाला (कंचित्) किसी (जनपानम्) मनुष्यों के पीने के स्थान को जो (अक्षितम्) भरपूर हो उस को तोड़ता है तद्वत् ॥ ऋ० ९। ११०। ५ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
(१५०६) अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य
१ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
चारुणः । सदाऽसरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥३॥ [७]

भावार्थः—(अमृत) हे अमृत ! सोम ! तू (ऋतस्य) सच्चे (चारुणः) सुन्दर (अमृतस्य) जल के (धर्मन्) धारक अन्तरिक्ष में (कम्) सुख को (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (अजीजनः) उत्पन्न करता है तथा (वाजम्) अन्न को (सनिष्यदत्) बांटता और (अच्छ) अच्छे प्रकार (असरः) चलता है ॥ ऋग्वेद ९। ११०। ४ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—विश्वमना ऋषिः। इन्द्रो देवता।
उष्णिक् छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१५०७) एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
१र २र ३ २
प्र राधांꣳसि चोदयते महित्वना ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३८६) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५०८) उपो हरीणां पतिꣳराधः पृञ्चन्तमब्रवम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
नूनꣳश्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अश्वस्य) प्राण की (स्तुवतः) स्तुति प्रशंसा करने वाले मुक्त मनुष्य की (नूनम्) अवश्य (श्रुधि) सुनाई कीजिये। हे ईश्वर! इन्द्र! (हरीणाम्) प्राणों के (पतिम्) पालक (राधः) धन को (पृञ्चन्तम्) देने वाले आपसे (उप—उ—अब्रवम्) शरणागत हो कर जो कुछ कहता हूं ॥ ऋग्वेद ८। २४। १४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ २ ३२ ३२ ३२ ३१२३ २

(१५०९) नह्याऽ३ऽङ्ग पुराचन जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३१ २

नकीराया नैवथा न भन्दना ॥ ३ ॥ [८]

भाषार्थः—(अङ्ग) हे प्रिय! इन्द्र! परमेश्वर! (पुराचन) पूर्वकाल में भी और वर्त्तमान में भी (त्वत्) आप से अधिक (वीरतरः) अत्यन्त वीर पुरुष कोई (नहि) नहीं (जज्ञे) उत्पन्न हुवा, (न) न तो (राया) धन से, (न) न (एवथा) रक्षा से (न) और न (भन्दना) स्तुत्यपने से अर्थात् आप ही सर्वोपरि धनी, रक्षक और स्तुत्य हैं ॥ ऋ० ८। २४। १५ में भी ॥ ३ ॥

अथैकर्चस्य चतुर्थसूक्तस्य—प्रियमेधऋषिः। इन्द्रोदेवता।

अनुष्टुप्छन्दः ॥ सेयम्—

३ २ ३ १ २ ३१२ २२

(१५१०) नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।

१२ ३ १ २ ३ १ २

पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥१॥ [९]

भाषार्थः—(वः) तुम्हारी (ओदतीनाम्) उषाओं के (नदम्) प्रशंसक (योयुवतीनाम्) संयोजक चन्द्रकिरणों के (नदम्) प्रशंसक (अघ्न्यानां धेनूनाम्) न मारने योग्य गौवों के (पतिम्) पालक इन्द्र=परमेश्वर को (इषुध्यसि) प्रार्थित करता हूं ॥ ऋ० ८। ६९। २ में भी ॥ १ ॥

इति चतुर्दशाऽध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ तृतीये खण्डे—

प्रगाथस्य तृतीयसूक्तस्य—वसिष्ठऋषिः। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५११) देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ १र २र ३ १ २
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥१॥

इस की व्याख्या (५५) में हो गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५१२) तꣳ होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ७ १र २र ३ १ २
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥२॥[१०]

भावार्थः–(देवाः) देवतों ने (तम्) उस (अग्निम्) अग्नि को (अध्वरस्य) यज्ञ का (प्रचेतसम्) सचेत (होतारम्) होता (अकृण्वत) बनाया है । (अग्निः) वह अग्नि (विधते) अग्निपरिचर्या करने वाले (दाशुषे) दानी (जनाय) मनुष्य=यजमान के लिये (रत्नम्) रमणीय (वीर्यम्) बल को (दधाति) धारित करता है ॥ ऋ० ७ । १६ । १२ में भी ॥ २ ॥

अथ तृचस्य द्वितीयसूक्तस्य–सौभरिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २
(१५१३) अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः । उपो षु-
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४७) में हो गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
(१५१४) यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः । सहस्रसां
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मेधसाताविव त्मनाऽग्निं धीभिर्नमस्यत ॥ २ ॥

भावार्थः-(यस्मात्) जिस कारण (कृष्टयः) मनुष्य (चर्कृत्यानि) अग्नि से किये कामों को (कृण्वतः) करते हुये पुरुष से (रेजन्त) कांपते हैं, इस कारण हे याज्ञिको ! तुम (सहस्रसाम्) असंख्यदायक (अग्निम्), अग्नि की (त्मना) आत्मा के (इव) समान (नमस्यत) परिचर्या करो ॥

ऋ० ८ । १०३ । ३ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
(१५१५) प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३
अनु मातरं पृथिवीं विवावृते तस्थौ नाकस्य
१ २
शर्मणि ॥ ३ ॥ [११]

इस की व्याख्या (५१) में हो चुकी है ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—वैखानसऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१५१६) अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः ।
३ १ २ ३ १ २
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (६२७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५१७) अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
१ २ ३ २
तमीमहे महागयम् ॥ २ ॥

भावार्थः-(ऋषिः) दृष्टि का सहायक (पवमानः) शोधक (पाञ्चजन्यः) ब्रह्मा होता उद्गाता अध्वर्यु और यजमान इन ५ जनों का (पुरोहितः)

आगे स्थापन किया हुवा (अग्निः) अग्नि है (तम्) उस (महागयम्) महाप्राण वाले अग्नि को (ईमहे) हम परिचरित करते हैं ॥

ऋग्वेद ९ । ६६ । २० में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१५१८) अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
दधद्रयिं मयि पोषम् ॥ ३ ॥ [१२]

भावार्थः—(अग्ने) अग्ने ! (स्वपाः) उत्तम कर्मकाण्ड का साधन तू (अस्मे) हमारे लिये (सुवीर्यम्) शोभन वीर्यसहित (वर्चः) तेज को (पवस्व) प्राप्त करा, तथा (रयिम्) धन और (पोषम्) पुष्टि को (दधत्) धारण करा ॥ ऋग्वेद ९ । ६६ । २१ में तथा यजुः ८ । ३८ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थसूक्तस्य—वसूयव ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५१९) अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
२ ३ १ २ ३ १ २
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ १ ॥

भावार्थः—(अग्ने) अग्ने ! (पावक) पावन ! (देव) देव ! तू (मन्द्रया) सुखदायिनी (रोचिषा) दीप्ति वाली (जिह्वया) लपट से (देवान्) वायु आदि देवतों को (आ—वक्षि) बुलाता (च) और (यक्षि) उन का यजन करता है ॥ ऋ० ५ । २६ । १ यजुः १७ । ८ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५२०) तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् ।
३ २उ ३ १ २
देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥

भावार्थः—(चित्रभानो) हे विचित्र चिनगारी वा दीप्ति वाले (घृतस्नो) घृत को, जो होमा जाता है, देवों को पहुंचाने वाले ! (स्वर्दृशम्) सुख दिखाने

वाले (तम्) उस (त्वा) तुझ को (ईमहे) चाहते हैं कि (देवान्) वायु आदि देवों को (वीतये) हव्य भक्षण के लिये (आ-वह) बुला ॥

ऋग्वेद ५ । २६ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया-

३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१५२१) वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳसमिधीमहि ।

१ २ ३१ २ ३ २
अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥ [१६]

भावार्थः-(कवे) क्रान्तदर्शिन् (अग्ने) अग्ने ! (वीतिहोत्रम्) हव्य-भक्षक (द्युमन्तम्) दीप्ति वाले (बृहन्तम्) महान् (त्वा) तुझ को हम (अध्वरे) यज्ञ में (समिधीमहि) समिधाओं से संदीप्त करते हैं ॥

ऋग्वेद ५ । २६ । ३ यजुः ११ । ४ में भी ॥ ३ ॥

इति चतुर्दशाऽध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थे खण्डे प्रथमतृचस्य-गोतमऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा-

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१५२२) अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि ।

१ २ ३ १ २
विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ १ ॥

भावार्थः-(वन्द्य) हे वन्दनीय ! (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! परमेश्वर ! (गायत्रस्य) गीतियुक्त साम वा गायत्री छन्दोबद्धमन्त्र के (प्रभर्मणि) सम्पादन यज्ञ में (विश्वासु) सब (धीषु) कर्मों में (नः) हम को (अव) रक्षित कीजिये ॥ ऋ० १ । ७९ । ७ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया-

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१५२३) आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् ।

१ २ ३ २ ३१२
विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप ! (नः) हमारे लिये (सत्रासाहम्) एक साथ दारिद्र्य के नाशक अतएव (वरेण्यम्) वरणीय (विश्वासु पृत्सु) सब संग्रामो में (दुष्टरम्) दुस्तर (रयिम्) धन (आभर) प्राप्त कराइये ॥ ऋग्वेद १ । ७९ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१५२४) आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् ।
३ १ ३ ३ १ २
मार्डीकं धेहि जीवसे ॥ ३ ॥ [१४]

भावार्थः—(अग्ने) ज्ञानस्वरूप ! परमात्मन् ! (नः) हमारे लिये (जीवसे) आजीवनार्थ (सुचेतुना) अच्छी चेतना [होशियारी] के सहित, (मार्डीकम्) सुखहेतु, (विश्वायुपोषसम्) सर्व मनुष्यों के पालक पोषक, (रयिम्) धन को (आ—धेहि) सर्वतोभाव से धारित कीजिये॥ ऋ० १ । ७९ । ९ में भी॥३॥

अथ पञ्चर्चस्य द्वितीयसूक्तस्य—केतुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५२५) अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु ।
१ २ ३ १ २
तेन जेष्म धनं धनम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(नः) हमारी (धियः) बुद्धियें (अग्निम्) अग्नि को (हिन्वन्तु) प्रेरित करें (तेन) उस से हम (धनं धनम्) धन ही धन (जेष्म) कमासकें (इव) जैसे (आजिषु) संग्रामों में (आशुम्) शीघ्रगामी (सप्तिम्) तुरङ्ग को प्रेरित करते हैं, तद्वत् ॥

अर्थात् नाना प्रकार के यन्त्रों में स्थापित किया अग्नि चालाक घोड़े के समान बलवान् बलसाध्य कार्यों का साधक है, अतः हम चाहते हैं कि हमारी बुद्धियें चातुर्य से अग्नि को प्रेरित करना जानें ॥ ऋ० १० । १५६ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
(१५२६) यया गा आकरामहै सेनयाग्ने तवोत्या ।

१ २ ३ १ २
तां नो हिन्व मघत्तये ॥ १ ॥

भावार्थः—(अग्ने) अग्ने ! (सेनया) सूर्य सहित (यया) जिस (तव) तेरी की हुई (ऊत्या) रक्षा वा गति से (गाः) सूर्यकिरणों को (आकरामहै) हम खींच सकें (ताम्) उस गति वा रक्षा को (नः) हमारे लिये (मघत्तये) धनदानार्थ=धनलाभार्थ (हिन्व) प्रेरित कर ॥ जो लोग अग्नि से गति उत्पन्न करना जानते हैं वे सूर्य की किरणों में से अग्नि खींच कर सिद्ध करके अनेक धनलाभदायक कार्य कर सकते हैं ॥ ऋग्वेद १० । १५६ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३१र २र ३ १ २
(१५२७) आऽग्ने स्थूरꣳ रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ २
अङ्ग्धि खं वर्त्तया पविम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—(अग्ने) अग्ने ! (स्थूरम्) स्थूल बहुत (पृथुम्) विस्तृत (रयिम्) धन को (आ—भर) प्राप्त करा और (खम्) आकाश को (पविम्) स्वच्छ शुद्ध (गोमन्तम्) किरणों वाला (अङ्ग्धि) प्रकट कर और (अश्विनम्) प्राण वायु वाला (वर्त्तय) वर्त्ताव ॥

होम से सुसेवित अग्नि द्वारा पुष्कल धन धान्य की प्राप्ति, आकाश की स्वच्छता, धूप, वर्षा, प्राणवायु आदि का ठीक २ वर्त्ताव और प्रकाश होता है ॥ ऋग्वेद १० । १५६ । ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

२ ३ १ २ ३ २ ३१र २र ३ २
(१५२८) अग्ने नक्षत्रमजरमासूर्यꣳ रोहयो दिवि ।
२ ३ २ ३ १ २
दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥ ४ ॥

भावार्थः—(अग्ने) हे अग्ने ! (जनेभ्यः) प्राणियों के लिये (ज्योतिः) प्रकाश=रोशनी को (दधत्) धारित कराते हुवे पहुंचाते हुवे तूने (अजरम्) जरारहित (नक्षत्रम्) कृत्तिकादि २७ वा २८ नक्षत्रों के मण्डल और (सूर्यम्) सूर्य को (दिवि) आकाश में (आ—रोहयः) चढ़ाया है ॥

जगत्स्रष्टा वा भौतिकाग्निदेव ने सब लोगों को प्रकाश पहुंचे इस लिये नक्षत्र और सूर्य आकाश में ऊंचे टांगे हैं ॥ ऋ० १० । १५६ । ४ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(१५२९) अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
बोधा स्तोत्रे वयोदधत् ॥ २ ॥

भावार्थः—(अग्ने) अग्ने तू (विशाम्) प्रजाओं का (प्रेष्ठः) अतिप्यारा (श्रेष्ठः) अतिउत्तम (उपस्थसत्) यज्ञ में स्थित (केतुः) ज्ञानदाता (स्तोत्रे) वेदमन्त्रों से अग्निगुण वर्णन करने वाले यजमान के लिये (वयः) अन्न को (दधत्) धारण करता हुवा (असि) है । सो तू (बोध) चेताव ॥

भले प्रकार सेवित अग्नि वा परमेश्वर प्रजाओं को अतिप्रिय अत्युत्तम ज्ञानदाता अन्नदाता और चेताने वाला है ॥ ऋ० १० । १५६ । ५ में भी ॥ ५ ॥

अथ तृचस्य तृतीयसूक्तस्य—विरूपऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २ ३
(१५३०) अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
३ १२ २२
अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (२७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २२
(१५३१) ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वः पतिः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥ २ ॥

भावार्थः—(अग्ने) अग्ने ! तू (स्वः) सुख का (पतिः) स्वामी है और (वार्यस्य) वरणीय (दात्रस्य) दान करने योग्य धन धान्य का (ईशिषे) स्वामी है, अतः मैं (शर्मणि) सुख चाहूं तो (तव) तेरा (स्तोता) गुणवर्णनकर्त्ता (स्याम्) होऊं ॥

अग्निविद्या से मनुष्य उत्तम धन धान्यादि से जो दानादि में काम में लाये जावें उन के स्वामी हो सकते हैं अतः मनुष्यों को अग्निविषयक विज्ञान प्राप्त करने वाला होना चाहिये और वह तब होसकता है जब कि वे अग्नि के स्तोता=गुण खोजने में श्रम करने वाले हों ॥ ऋ० ८। ४४। १८ में भी ॥२॥

अथ तृतीया–

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१५३२) उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
२ ३ १ २ ३ १ २
तव ज्योतींष्यर्चयः ॥ ३ ॥ [१६]

भावार्थः–(अग्ने) अग्ने ! (तव) तेरी (शुचयः) शुद्ध (भ्राजन्तः) चमकती (शुक्राः) श्वेतवर्ण (अर्चयः) प्रभायें (तव) तेरे (ज्योतींषि) तेजों को (उत्) ऊपर को (ईरते) ले जाती हैं ॥ ऋ० ८। ४४। १७ में भी ॥३॥

इति चतुर्दशाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

इति सप्तमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धप्रपाठकः

इति श्रीमत्कण्ववंशावतंस श्रीमान् पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र परीक्षितगढ़ (ज़िला–मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में चौदहवां अध्याय समाप्त हुवा ॥ १४ ॥

ओ३म्

अथ पञ्चदशाऽध्यायः

तत्र

प्रथमे खण्डे प्रथमतृचस्य—गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १र २र३ २ ३ २ ३क २र

(१५३३) कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः ।

२ ३ १ २ ३ २

को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ १ ॥

भावार्थः—(अग्ने) परमेश्वर ! (ते) आप के (जनानाम्) प्रजाजनों का (जामिः) बन्धु (कः) कौन है ? (दाश्वध्वरः) दत्तयज्ञ (कः) कौन है ? (कः) कौन (ह) प्रसिद्ध (कस्मिन्) किस में (श्रितः) आश्रित (असि) है ? इन प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में हैं ॥

भौतिकपक्ष में—(अग्ने) अग्ने ! (ते) तुझ अग्नि तत्व से निविष्ट (जनानाम्) जनों=प्राणियों का (जामिः) बन्धु (कः) कौन है ? (दाश्वध्वरः) यज्ञ को जिस ने दिया, वह (कः) कौन है ? (कः) कौन प्रसिद्ध (कस्मिन्) किस में (श्रितः) आश्रित (असि) है ॥ ऋ० १ । ७५ । ३ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(१५३४) त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ २ ॥

भावार्थः—(अग्ने) हे परमेश्वर ! (त्वम्) तू (जनानाम्) प्रजाजनों का (जामिः) बन्धु, (प्रियः) प्यारा, (मित्रः) मित्र, (सखा) समाननामा [चेतन होने से] (सखिभ्यः) मित्रों से (ईड्यः) स्तुति किये जाने योग्य (असि) है ॥

भौतिकपक्ष में—(अग्ने) अग्ने ! (त्वम्) तू (जनानाम्) प्राणियों का (बन्धुः) भाई के समान सहज (प्रियः) प्रीतिकर (मित्रः) हितकर वा

स्नेहकर (सखा) मित्र के समान हित में रत (सखिभ्यः) अग्निहोत्रियों से (ईड्यः) कीर्त्तनीय (असि) है ॥ ऋ० १। ७५। ४ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
(१५३५) यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्।
२ ३ २ ३ १र २र
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ३ ॥ [१]

भावार्थः—(अग्ने) हे अग्ने! व परमेश्वर। (नः) हमारे हित के लिये (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान देवतों को (यज) संगत करो (देवान्) अन्य वायु आदि देवों को भी (यज) संगत करो (ऋतम्) सत्य फल वाले (बृहत्) बड़े (स्वम्) अपने (दमम्) घर रूप इस जगत् को (यक्षि) संगत करते हो ॥ ऋग्वेद १। ७५। ५ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीय तृचस्य—देवश्रवा देववातऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३क २र ३ १र २र ३ २
(१५३६) ईडेन्योनमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः।
२ ३ १ २ ३ १ २
समग्निरिध्यते वृषा ॥ ३ ॥

भावार्थः—(ईडेन्यः) वर्णनीय, (नमस्यः) नमने योग्य वा हव्य अन्न देने योग्य, (तमांसि) अंधियारों को (तिरः) तिरस्कृत करता हुवा, (दर्शतः) ज्ञान द्वारा वा प्रकाशद्वारा मार्गदर्शक, (वृषा) कामनाओं का वर्षाने वाला वा होम से वृष्टि का हेतु (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर वा भौतिक अग्नि (सम्) भले प्रकार (इध्यते) ध्यान किया जाता वा यज्ञकुण्ड में सुलगाया जाता है ॥ ऋ० ३। २७। १३ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५३७) वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः।
२ ३ १ २
तं हविष्मन्तः ईडते ॥ २ ॥

भाषार्थः-(वृषा) कामनाओं का वर्षक वा वृष्टि का हेतु (उ) निश्चय, (देववाहनः) पृथिव्यादि लोकों का आधार होने से वाहन, वा वाय्वादि देवों का योढा (अश्वः) प्राण के (न) समान वर्त्तमान (अग्निः) परमेश्वर वा भौतिक (समिध्यते) भले प्रकार हृदय वा यज्ञवेदि में प्रकाशित किया जाता है ॥ ऋ० ३ । २७ । १४ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१५३८) वृषण त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि ।

२ ३ १ २ ३ २

अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥

भाषार्थः-(वृषन्) हे कामनाओं के पूरक ! वा जलों के वर्षक ! (अग्ने) ज्ञानस्वरूप ! प्रकाशमान ! पावक ! (वृषणः) भक्ति से नम्र आर्द्रचित्त वा घृतादि के सेचक (वयम्) हम योगी वा याज्ञिक जन (बृहत्) बहुतायत से (दीद्यतम्) प्रकाशमान (वृषणम्) कामनाओं वा जलों के पूरक (त्वा) तुझ परमेश्वर वा अग्नि को (समिधीमहि) ध्यान करें वा सुलगावें ॥ ऋग्वेद ३ । २७ । १५ में भी ॥ ३ ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१५३९) उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः ।

१ २ ३ १ २

अग्ने शुक्रास ईरते ॥ १ ॥

भाषार्थः-(दीदिवः) हे प्रकाशवन् ! (अग्ने) परमेश्वर ! वा भौतिक अग्ने ! (समिधानस्य) प्रकाशमान (ते) तेरी (बृहन्तः) बड़ी (शुक्रासः) शुद्ध निर्मल (अर्चयः) किरणें (उत् ईरते) उत्कृष्ट भाव से वर्त्ततीं वा ऊपर को जाती हैं ॥ ऋ० ८ । ४४ । ४ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २ १ २ ३ २

(१५४०) उप त्वा जुह्वो मम घृताचीर्यन्तु हर्यत ।

१ २ ३ १ २
अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥ २ ॥

भावार्थः-(हर्यत) हे अभिगम्य ! (अग्ने) परमेश्वर ! वा पावक ! (मम) मुझ स्तोता की (घृताचीः) स्नेहभक्तिपूर्ण (जुह्वः) अन्तःकरण की वृत्तियें वा घृत भरे चमस जुहू वा स्रुच् को जिन से होम किया जाता है, (त्वा) तुझ को (उपयन्तु) प्राप्त हों, सो तू (नः) हम उपासकों वा अग्निहोत्रियों के (हव्या) होमयोग्य अन्तः करणों वा घृतादि हव्यों को (जुषस्व) स्वीकृत कर ॥ ऋ० ८ । ४४ । ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५४१) मन्द्रꣳहोतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् ।
३ १ २३ १ २
अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥ ३ ॥ [३]

भावार्थः-(मन्द्रम्) मोद=हर्षदायक (होतारम्) कर्मों के फलदाता वा देवों के दूत (ऋत्विजम्) प्रत्येक ऋतु में यजनीय (चित्रभानुम्) विचित्र प्रकाशों वाले (विभावसुम्) विविध प्रकाश के धनी (अग्निम्) ईश्वर वा अग्नि की (ईडे) स्तुति करता हूं, (सः) वह अग्नि (उ) अवश्य (श्रवत्) सुने=स्वीकृत करे ॥

"तस्य भासा०" उस (परमेश्वर) के प्रकाश से ही यह सब (सूर्यादि) प्रकाशता है, इत्यादि उपनिषदों में उसी के तेज से सूर्यादि तेजस्वियों में विविध तेज का होना पाया जाता है इस कारण चित्रभानु आदि विशेषण परमेश्वरपक्ष में सुघट हैं ॥ ऋ० ८ । ४४ । ६ में भी ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथात्मक चतुर्थसूक्तस्य–भर्गऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा–

३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २
(१५४२) पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २३ १ २
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो १

इस की व्याख्या (३६) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१५४३) पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु
१र २र ३ १ २ ३ १
नोऽव । त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं
२र ३ २
नक्षामहे वृधे ॥ २ ॥ [४]

भावार्थः—प्रकरण से हे अग्ने ! परमेश्वर ! वा पावक ! (त्वाम्) तुझ (इत्) ही (नेदिष्टम्) अत्यन्त समीपी (आपिम्) बन्धु को (वृधे) वृद्धि और (देवतातये) यज्ञ के लिये (हि) निश्चय (नक्षामहे) हम व्याप्त होते हैं [निघण्टु २ । १८] सो तू (विश्वस्मात्) सब (अराव्णः) दान न करने वाले= यज्ञविरोधी (रक्षसः) राक्षस से (पाहि) हम को बचा और (वाजेषु) कामादि वा शत्रु राजों से संग्रामों में (नः) हम को (प्राऽव स्म) रक्षित कर ॥ ऋग्वेद ८ । ६० । १० में भी ॥ २ ॥

इति पञ्चदशाऽध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीये खण्डे प्रथमतृचस्य—आप्त्यस्त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १
(१५४४) इनो राजन्नरतिः समिद्धो, रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ
२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
अदर्शि । चिकिद्विभाति भासा बृहता, ऽसिक्नी
३ १ २ ३ १ २
मेति रुशतीमपाजन् ॥ १ ॥

भावार्थः—सूर्यरूप अग्नि का वर्णन किया जाता है कि— (इनः) सूर्य (अरतिः) भ्रमणकर्त्ता (राजन्) प्रकाशमान (समिद्धः) दहकता हुवा (रौद्रः) [रुद्रों=प्राणों का निधानभूत (दक्षाय) बल की प्राप्ति के लिये (सुषुमान्) औषध्यादि का उत्पादक (अदर्शि) उदित हो दीखता है और (चिकित्) ज्ञान का फैलाने वाला (बृहता) बड़ी (भासा) दीप्ति [रौशनी]

से (विभाति) प्रकाशता है तथा (रुशतीम्) अरुणोदय काल के पीछे श्वेतवर्णप्राया (असिक्नीम्) रात्रि को (अपाऽजन्) दूर फैंकता हुवा (एति) प्राप्त होता है ॥ ऋग्वेद १० । ३ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र ३ १र २र ३ २ ३ १३ १ २ ३ २
(१५४५) कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाऽभूज्जनयन्योषां बृहतः

३ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र
पितुर्जाम् । ऊर्ध्वं भानुः सूर्यस्य स्तभायन्दिवो

२र ३ १र २र
वसुभिररतिर्विभाति ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यत्) जब कि (बृहतः) पृथिव्यादि की अपेक्षा बहुत बड़े (पितुः) पालक पितृरूप सूर्य से (जाम्) उत्पद्यमान (योषाम्) स्त्रीरूप उषा को (जनयन्) उत्पन्न करता हुवा अग्नि (कृष्णाम्) काली अन्धियारी (एनीम्) चलती जाती रात्रि को (अभि—भूत्) तिरस्कृत करता है तब (अरतिः) गमनस्वभाव अग्नि (दिवः) द्युलोक के (वसुभिः) बसाने वाले आच्छादित करने वाले अपने तेजों से (सूर्यस्य) सूर्य के (भानुम्) प्रकाश को (ऊर्ध्वम्) ऊपर (स्तभायन्) थांभता हुवा (विभाति) चमकता है ॥ ऋग्वेद १० । ३ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
(१५४६) भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति

३ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३
पश्चात् । सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्,

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥ ३ ॥ [५]

भाषार्थः—(भद्रः) शोभन तेजःस्वरूप तेजस्वी सूर्यरूप (अग्निः) अग्नि (भद्रया) शोभनरूपिणी उषा के साथ (सचमानः) मिला हुवा (आगात्)

आता=उदय होता है, सो यह (जारः) जार के समान रात्रि को बुड्ढी करने वाला सूर्य (स्वसारम्) स्वयं दौड़ने वाली उषा के (पश्चात्) पीछे (अभ्येति) दौड़ता है। (सुप्रकेतैः) सुन्दर ज्ञान के फैलाने वाले (द्युभिः) तेजों के साथ (वितिष्ठन्) अनेक प्रकार से स्थित हुवा (उशद्भिः) श्वेत (वर्णैः) वर्ण वाले तेजों से (रामम्) रात्रि के अन्धकार को (अभि अस्थात्) तिरस्कृत करके स्थित होता है॥

कितना आश्चर्य है कि ज्वालाप्रसाद जी ने इस मन्त्र का देवता " अग्नि " जानते हुवे भी और सायणाचार्य के अग्निपरक भाष्य के देखते हुवे भी इस में सीता राम और रावण की कथा बता कर सत्यानाश मारा है॥ ऋग्वेद १०। ३। ३ में भी॥ ३॥

अथ द्वितीयतृचस्य—उशना ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५४७) कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जोनपादुपस्तुतिम्।
१ २ ३ १ २
वराय देव मन्यवे॥ १॥

भावार्थः—(ऊर्जोनपात्) हे बल के न गिराने वाले! (अङ्गिरः) सर्वग! सर्वज्ञ! (अग्ने) परमेश्वर! (वराय) वरणीय श्रेष्ठ (मन्यवे) दुष्टों के दण्डार्थ क्रोध के धारण करने वाले (ते) तेरे लिये (कया) किस वाणी से (उपस्तुतिम्) उपासनापूर्वक स्तुति करें, ? अर्थात् तुम वाणी और मन से अतीत हो, इस लिये तुम्हारी स्तुति करने को हम समर्थ नहीं ऋ० ८। ८४। ४ में भी॥१॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५४८) दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो।
१ २ ३ १ २
कदु वोच इदं नमः॥ २॥

भावार्थः—(सहसः) बल के (यहो) सन्तान तुल्य! बल से अरणियों से उत्पन्न किया जाने से हे अग्ने! अथवा बल=योगबल से साक्षात् किया जाने से हे परमेश्वर! (कस्य) कैसे (यज्ञस्य) यज्ञ के हव्य वा शुद्ध

अन्तःकरण का (मनसा) हृदय वा ज्ञान से (दाशेम) हम दान करें (उ) और (कद्) कौन (इदं नमः) " यह हव्य है " वा " यह नमस्कार है " ऐसा (वोचः) कहे ? । ऋग्वेद ८ । ८४ । ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१५४९) अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः ।
१ २ ३ १ २
वाजद्रविणसोगिरः ॥ ३ ॥ [६]

भावार्थः—प्रथम मन्त्र से हे अग्ने ! वा परमेश्वर ! (अध) और (त्वम्) तू (हि) ही (नः) हमारी (विश्वाः) सब (गिरः) वाणियों को (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सुक्षितीः) सुज्ञान और (वाजद्रविणसः) अन्न और धन से युक्त (करः) करता है ॥

अर्थात् अग्निहोत्र करने वाले वा ईश्वर के उपासक लोग उस से धान्य बलादि युक्त होजाते हैं ॥ ऋ० ८ । ८४ । ६ में भी ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथात्मक द्वितीयसूक्तस्य—भर्गऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १र २र ३
(१५५०) अग्नआयाह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे । आ त्वामनक्तु
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ १ ॥

भावार्थः—(अग्ने) अग्ने ! (अग्निभिः) यजनीय वायु आदि देवों सहित (आयाहि) प्राप्त हो (होतारं त्वा) तुझ होमसाधक को (वृणीमहे) हम वरण करते हैं (प्रयता) अध्वर्यु से नियमित (हविष्मती) हविःपात्री (यजिष्ठम्) पूजनीय (बर्हिः) यज्ञ में (आसाद्य) विराजमान होकर स्थित (त्वाम्) तुझ को (आऽनक्तु) आसेचन करे ॥ ऋ० ८ । ६० । १ में भी ॥१॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(१५५१) अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ऊर्जो न पातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥२॥[७]

भावार्थः—(सहसः) बल के (सूनो) पुत्र । अग्नि ! [क्योंकि अरणियों में से बल से उत्पन्न किया जाता है] (अङ्गिरः) हे गतिमन् ! (हि) जिस कारण (त्वा) तुझ को (अध्वरे) यज्ञ में (स्रुचः) स्रुच् संज्ञक यज्ञपात्री जिन से होम करते हैं वे (चरन्ति) प्राप्त होती हैं अतः (ऊर्जः) अन्न वा बल के (न पातम्) न गिराने वाले=रक्षक (घृतकेशम्) घृत से जिस की ज्वाला बढ़ती हैं उस (पूर्व्यम्) पूरक (अग्निम्) अग्नि को (यज्ञेषु) ज्योतिष्टोमादि विविध यज्ञों में (ईमहे) हम प्रशंसित करते हैं ॥

ऋग्वेद ८ । ६० । २ में भी ॥ २ ॥

अथ प्रगाथात्मक चतुर्थसूक्तस्य—पुरुमीढऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृद् बृहती, बृहती च छन्दसी ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१५५२) अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥१॥

भावार्थः—(नः) हमारी (गिरः) वाणियें (दर्शतम्) ज्ञान से मार्ग-दर्शक, वा दृष्टि के सहायक=साधन (शीरशोचिषम्) शान्तप्रकाश ईश्वर वा महासर्प के तुल्य लपटों वाले अग्नि को (अच्छ) भले प्रकार (यन्तु) प्राप्त हों (यज्ञासः) हमारे ज्ञानयज्ञ, वा कर्मयज्ञ (नमसा) नमस्कार से वा हव्य अन्न से (ऊतये) रक्षा के लिये (पुरूवसुम्) बहुत धनप्रद (पुरु-प्रशस्तम्) बहुत प्रशंसित ईश्वर वा अग्नि को (अच्छ) भले प्रकार प्राप्त हों ॥

हमारी वाणी और ज्ञानयज्ञ वा कर्मयज्ञ ईश्वरविषयक वा अग्निविषयक सार्थक हों ॥ ऋ० ८ । ७१ । १० में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३
(१५५३) अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय
१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १र
वार्याणाम् । द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा
२र ३ १ २ ३ २
होता मन्द्रतमो विशि ॥ २ ॥ [८]

भावार्थः—(वार्याणाम्) वरणीय पदार्थों के (दानाय) दानद्वारा लाभार्थ (सहसः) बल के (सूनुम्) पुत्रतुल्य (जातवेदसम्) ज्ञानप्रसारक (अग्निम्) अग्नि को [हमारी, वाणियें, प्राप्त हों] यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है। (यः) जो (अमृतः) अमर अग्नि (मर्त्येषु) मरणधर्मा मनुष्यों में (द्विता) दो प्रकार से (अभूत) है। १–(आ, होता) सब ओर से, देवों का बुलाने वाला और २–(विक्षि) प्रजा में (मन्द्रतमः) भोजन पाकादि व्यवहार से अति सुखदायक है॥ ऋ० ८। ७१। ११ में भी॥ २॥

इति पञ्चदशाऽध्यायस्य द्वितीयः खण्डः॥ २॥

अथ

तृतीये खण्डे प्रथमतृचस्य—विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र

(१५५४) अदाभ्यः पुर एता विशामग्निर्मानुषीणाम्।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

तूर्णी रथः सदा नवः॥ १॥

भावार्थः—(मानुषीणाम्) मनुष्यों की (विशाम्) प्रजाओं के (पुरएता) आगे चलने वाला (तूर्णीः) शीघ्रगामी (रथः) रथ के समान हव्यों का ढोने वाला (सदा) सदा (नवः) नया (अग्निः) अग्नि (अदाभ्यः) किसी को तिरस्कृत न करना चाहिये किन्तु आदर पूर्वक निज २ होम में वर्त्तना चाहिये ऋ० ३। ११। ५ में भी॥ १॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१५५५) अभि प्रयांꣳसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः।

१ २ ३ १ २

क्षयं पावकशोचिषः॥ २॥

भावार्थः—(दाश्वान्) दानी यजमान (मर्त्यः) मनुष्य (पावकशोचिषः) शोधक किरणों वाले अग्नि से (क्षयम्) निवासगृह को और (प्रयांसि)

अन्नों को (अभि अश्नोति) सब ओर से पाता है ॥

अग्निहोत्र से उस के करने वाले यजमान को शुद्ध गृह और अन्न इन दो फलों की प्राप्ति होती है ॥ ऋ० ३ । ११ । ७ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

(१५५६) साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानामस्तृक्तः ।

३ २ ३ २

अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥ ३ ॥ [९]

भावार्थः—(अग्निः) अग्नि, (विश्वाः) सब (अभियुजः) शत्रुसेनाओं को (साह्वान्) तिरस्कृत करता हुवा (देवानाम्) वायु आदि देवों का (क्रतुः) यजन करने वाला (अस्तृक्तः) न नष्ट किया हुवा (तुविश्रवस्तमः) अतिशय से बहुविध अन्न वाला है ॥ ऋ० ३ । ११ । ६ में भी ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथात्मक द्वितीयसूक्तस्य—सौभरिः काण्वऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक् ककुप् निचृत्पङ्क्तिश्च क्रमेण छन्दसी ॥ तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १

(१५५७) भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभगभद्रो

२ ३ २ ३ २ ३ १र २र

अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१११) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१५५८) भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु

३ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सासहिः । अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां

३ १ २ ३ १ २

वनेमा ते अभिष्टये ॥ २ ॥ [१०]

भावार्थः—पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति लाकर हे " सुभग ! " (वृत्रतूर्ये) संग्राम में (मनः) हमारे मन को (भद्रम्) कल्याण=भला=धर्मानुकूलयुद्ध में तत्पर

(कृणुष्व) कर, (येन) जिस मन से (समत्सु) संग्रामों में (सासहिः) शत्रुओं का अभिभव=तिरस्कार करने में मनुष्य समर्थ होता है और (शर्धताम्) दबाते हुवे शत्रुओं की (भूरि) बहुत सी (स्थिरा) दृढ भी सेनाओं को (अव-तनुहि) अवनत कर, (ते) तुझ को (अभिष्टये) मनोवाञ्छित फलप्राप्ति के लिये (वनेम) हम भजते हैं ॥ निघण्टु २।१७ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।१९।२० और यजुः १५।४० में भी ॥ २ ॥

अथ तृचस्य तृतीयसूक्तस्य—गोतमऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५५९) अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (९९) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(१५६०) स इधानो वसुः कविरग्निरीडेन्यो गिरा ।
३ २ ३ १ २
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ २ ॥

भाषार्थः—(सः) वह (इधानः) प्रकाशशील (वसुः) ८ वसुओं में एक वसु (कविः) क्रान्तदर्शन वा बुद्धितत्त्वयुक्त (अग्निः) अग्नि (गिरा) वेद वाणी से (ईडेन्यः) प्रशंसनीय है सो (पुर्वणीक) हे बहुमुख ! बहुत लपटों वाले ! (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (रेवत) धनयुक्त पदार्थों को (दीदिहि) दे ॥ ऋग्वेद १।७९।५ और यजुर्वेद १५।३६ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १र २र
(१५६१) क्षपो राजन्नुत त्मनाऽग्ने वस्तोरुतोषसः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३ ॥ [११]

भावार्थः—(तिग्मजम्भ) हे तीक्ष्णज्वालारूपी डाढों वाले ! (राजन्) प्रकाशमान ! (अग्ने) अग्ने ! (रक्षसः) दुष्ट जन्तुओं को (वस्तोः) दिन में (उत) और (उषसः प्रति) उषःकालोपलक्षित रात्रियों में भी (सः) वह तू (क्षपः) निवृत्त कर (उत) और (त्मना) अपने तेज से (दह) भस्म कर ॥ ऋग्वेद १ । ७९ । ६ और यजुः १५ । ३७ में भी ॥ ३ ॥

इति पञ्चदशाऽध्याये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थे खण्डे प्रथमतृचस्य—गोपवनः सप्तवध्रिर्वा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप्, गायत्री, विराड् गायत्री च क्रमेण छन्दांसि ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१५६२) विशोविशोवो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
३ २ ३ २३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (८७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१र २र ३ १ २ ३ २र ३ १ २
(१५६३) यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।
२ ३ २ ३ १ २
प्रशꣳसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

भावार्थः—(सर्पिरासुतिम्) घृत की आहुति वाले (यम्) जिस अग्नि को (मित्रम्) मित्र के (न) समान (जनासः) यजमान लोग (प्रशस्तिभिः) स्तोत्रों से (प्रशंसन्ति) प्रशंसा करते हैं ॥ ऋ० ८ । ७४ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१५६४) पन्याꣳसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता ।
३ १र २र ३ २
हव्यान्यैरयद्दिवि ॥ ३ ॥ [१२]

भावार्थः—(पन्यांसम्) अतिप्रशंसनीय (जातवेदसम्) अग्नि की "हम प्रशंसा करते हैं" (यः) जो अग्नि (देवताति) यज्ञ में (उद्यता) उद्यत

(हव्यानि) हव्यों को (दिवि) आकाश में (ऐरयत्) देवतों के लिये पहुंचावे=भेजे ॥ ऋ० ८ । ७४ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीय तृचस्य—भरद्वाजो वीतहव्यो बार्हस्पत्यो वा ऋषिः । अग्निर्देवता। जगती, विराड् जगती, त्रिष्टुप् चेति क्रमेण छन्दांसि ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २३ १ २ ३ २
(१५६५) समिद्धमग्निꣳ समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं
३ १ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पुरो अध्वरे ध्रुवम् । विप्रꣳ होतारं पुरुवारमद्रुहं,
३ २ ३ १ २ ३ १ २
कविꣳ सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(समिधा) पलाशादि की समिध् से (समिद्धम्) सुलगे हुवे प्रदीप्त (अग्निम्) अग्नि को (गिरा) वेदवचन मन्त्र से (गृणे) वर्णन करता हूं और (शुचिम्) आप शुद्ध तथा (पावकम्) औरों के शुद्ध करने वाले (पुरः) आगे (अध्वरे) यज्ञ में (ध्रुवम्) निश्चल स्थिर स्थापित (विप्रम्) बुद्धितत्व वाले (होतारम्) देवों के बुलाने वाले (पुरुवारम्) बहुतों से वरण किये जाने योग्य (अद्रुहम्) किसी से द्रोह न करने वाले सब के अनुकूल-वर्त्ती (कविम्) क्रान्तदर्शी (जातवेदसम्) अग्नि को, हम (सुम्नैः) सुखों के साथ (ईमहे) मांगते=चाहते हैं ॥ ऋ० ६ । १५ । ७ में भी ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५६६) त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं
२ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३
दधिरे पायुमीड्यम् । देवासश्च मर्त्तासश्च
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे ॥२॥

भावार्थः—(अग्ने) अग्ने ! (देवासः) देवता (च) और (मर्त्तासः) मनुष्य (च) और अन्य सब (युगे युगे) समय २ पर (अमृतम्) सुखदायी

अमर (त्वाम्) तुझ को (हव्यवाहम्) हव्य लेजाने वाला (दूतम्) दूत (दधिरे) बनाते हैं, तथा (जागृविम्) जागने और जगाने चेताने वाले (विभुम्) काष्ठादि में व्यापे हुवे (पायुम्) रक्षा करने वाले (ईड्यम्) प्रशंसनीय (विश्पतिम्) प्रजापालक अग्नि को (नमसा) हव्य अन्न से (निषेदिरे) उपासना करते हैं ॥

सूर्यादि देव जैसे स्वाभाविक होम करते हैं तथा अन्य प्राणी करते हैं, वैसे मनुष्यों को भी करना चाहिये ॥ ऋ० ६ । १५ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३
(१५६७) विभूषन्नग्न उभयाँ अनुव्रता, दूतो देवानाॅं
१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र
रजसी समीयसे । यत्ते धीतिॅं सुमतिमावृणीमहे,
२र ३ १ २ ३ १ २
ऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवोभव ॥ ३ ॥ [१३]

भावार्थः–(अग्ने) अग्ने ! (देवानाम्) देवों का (दूतः) दूत तू (उभयान्) दोनों देवतों और मनुष्यों को (विभूषन्) विशेष कर भूषित करता हुवा (रजसी) द्युलोक और भूमिलोक को (समीयसे) भले प्रकार जाता है (यत्) जिस कारण (अनुव्रताः) अनुकूलवर्त्ती हम (सुमतिम्) सुन्दर मति वाले (धीतिम्) कर्म अनुष्ठान का (ते) तेरे लिये (आवृणीमहे) सेवन करते हैं (अध स्म) इस कारण (त्रिवरूथः) आहवनीयादि वा भूलोकादि तीन स्थानों वाला तू (नः) हमारे लिये (शिवः) सुखदायी (भव) हो ॥ ऋग्वेद ६ । १५ । ९ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य–प्रयोग ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा–

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३
(१५६८) उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।
३ १र २र
वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१३) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र
(१५६९) यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसंदिनम् ।
१ २ ३ १ २ ३ २
आपश्चिन्निदधा पदम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(यस्य) जिस अग्नि का (त्रिधातु) तीन जोड़ों वा गांठों वाला (अवृतम्) विना ढका (असंदिनम्) खुला (बर्हिः) कुशास्तरण (तस्थौ) रहता है (चित्) और (आपः) जल (पदम्) यथास्थान (निदधा) रक्खे रहते हैं । वह अग्नि सेवनीय अवश्य है ॥

अर्थात् अग्निहोत्र के समय कुशमुष्टि खोल कर खुले में बिछानी चाहिये जो अन्य समय बन्धी रक्खी रहती है, जिस में ३ पर्व वा गांठ होती हैं, और जल भी प्रणीतापात्रादि ठीक स्थान में रखना चाहिये ॥ ऋ० ८।१०२।१४ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

३ १ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१५७०) पदं देवस्य मीढुषो ऽनाधृष्टाभिरूतिभिः ।
३ १र २र ३ २
भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥ ३ ॥

इति सप्तम प्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धप्रपाठकः ॥

* इति सप्तमः प्रपाठकः ॥ ७ ॥ *

भावार्थः—(अनाधृष्टाभिः) न सताई हुई (ऊतिभिः) रक्षाओं से (मीढुषः) वर्षक (देवस्य) देव अग्नि का (पदम्) स्वरूप (सूर्यइव) सूर्य के समान आंखों का सहायक (भद्रा) शोभन उत्तम (उपदृक्) उपनेत्र होता है ॥

जब अग्नि के गुण भले प्रकार ज्ञात हो जावें तो रक्षापूर्वक उस से ऐसे उपनेत्र (दूरबीन और सूक्ष्मबीन आदि) बन सक्ते हैं कि जो सूर्य के समान आंख की सहायता करें कि जैसे सूर्य की सहायता से मनुष्य दूर और सूक्ष्म पदार्थों को देखता है ॥ ऋ० ८ । १०२ । १५ में भी ॥ ३ ॥

इति श्रीमत्कण्ववंशावतंस श्रीमान् पण्डित हजारीलाल स्वामी के पुत्र परीक्षितगढ़ (जिला—मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

ओ३म्

अथ षोडशाऽध्यायः

"इदानीं सर्वस्वारश्च पुनश्चातुर्मास्यानि" इति विव०

तत्र

प्रथमे खण्डे

प्रगाथात्मक प्रथम सूक्तस्य मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
(१५७१) अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः । समी-
१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
चीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥१॥

इस की व्याख्या (२५६) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१५७२) अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवोमदे सुतस्य विष्णवि ।
३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा ॥२॥[१]

भावार्थः—(विष्णवि) सर्वदेहव्यापी (मदे) हर्ष के निमित्त (सुतस्य) अभिषुत सोम के (वृष्ण्यम्) वीर्यवर्धकत्व (इत्) और (शवः) बल को (इन्द्रः) परमेश्वर (वावृधे) बढ़ाता है (अद्य) अब वर्त्तमान में (तम्) उस (अस्य) इस परमेश्वर की (महिमानम्) बड़ाई को (आयवः) मनुष्य लोग (पूर्वथा) पूर्ववत् (अनुष्टुवन्ति) स्तुत करते हैं ॥ ऋ० ८ । ३ । ८ में भी ॥२॥

अथ चतुर्ऋचस्य द्वितीयसूक्तस्य—विश्वामित्र ऋषिः ।
इन्द्राग्नी देवते । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५७३) प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी इष आवृणे ॥ १ ॥

भाषार्थः–(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र ! और अग्ने ! (उक्थिनः) उक्थ=शस्त्र=स्तोत्र वाले होता आदि और (नीथाविदः) स्तोत्र जानने वाले सामगान में चतुर उद्गाता आदि (जरितारः) स्तोता जन (वाम्) तुम दोनों का (अर्चन्ति) यजन करते हैं और मैं यजमान भी (इषे) अन्नाद्य के लिये तुम्हारा (प्र आ–वृणे) सर्वथा अतिशय यजन करता हूं ॥ इन्द्र और अग्नि का व्याख्यान बहुत वार कर चुके हैं, वही यहां जानो ॥ ऋ० ३ । १२ । ५ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

१ ३ ३ १२ ३२ ३ १ २
(१५७४) इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।
३ १२ ३२३ १ २
साकमेकेन कर्मणा ॥ २ ॥

भाषार्थः–(इन्द्राग्नी) इन्द्र ! मध्यस्थान देव ! और अग्ने ! पृथिवीस्थान देव ! तुम दोनों (साकम्) साथ (एकेन) अपने एक अभिन्न मिले हुवे (कर्मणा) दाहादि कर्म से (दासपत्नीः) उपक्षय करने वाले हमारे शत्रु जिन के पालक हैं, उन (नवतिम्) नव्वे ९० (पुरः) पुरियों को (अधूनुतम्) कम्पमान कर देते हो ॥

जिस प्रकार इस देह में १० प्राण १० इन्द्रियां, ६ रस ४ अन्तःकरण, ये ३० तीस पुरी ३ सत्व रज तम गुणों के भेद से भिन्न होकर ९० नव्वे हैं, इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड में भी ६ ऋतु–हिम, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा और शरद् । १० प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय, १० प्रसिद्ध इन्द्रियों और चार मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार रूप अन्तःकरण के कारण पदार्थ सर्वत्र फैले हैं, वे भी ३ गुणों के भेद से ९० प्रकार के होजाते हैं । वे ९० पुरी जब हमारे अनुकूल हों तब मित्रपुरी और

जब विरुद्ध वा प्रतिकूल हों तब शत्रुपुरी कहाती हैं, इन्द्र और अग्नि के यजन करने से ये दोनों उन ९० पुरियों के प्रतिकूल अंश वा प्रभाव को अपने दाह प्रकाश आदि मिश्रित कर्म से नष्ट कर डालते हैं ॥ ऋ० ३। १२। ६ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(१५७५) इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्रयन्ति धीतयः ।
३ १ २ ३ २ १ २
ऋतस्य पथ्याऽ३ऽअनु ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र ! और हे अग्ने ! (धीतयः) सोमादि को धारण करने वा पीने वाले होता अध्वर्यु उद्गाता और ब्रह्मा आदि ऋत्विज् लोग (ऋतस्य) कर्मफल के (पथ्याः) मार्गों को (अनु) लक्ष्य करके (अपसः) हमारे द्वारा किये जाते हुवे यज्ञकर्म के (परि, उप, प्र, यन्ति) चारों ओर, समीप, बहुतायत से, तुम को प्राप्त होते हैं ॥ ऋ० ३। १२। ७ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५७६) इन्द्राग्नी तविषाणि वाᳬं सधस्थानि प्रयाᳬंसि च ।
३ २ ३ १ २ ३ २
युवोरप्तूर्यᳬं हितम् ॥ ४ ॥ [२]

भाषार्थः—(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र ! और अग्ने ! (वाम्) तुम दोनों के (तविषाणि) बल (च) और (प्रयांसि) अन्न (सधस्थानि) साथ रहने वाले हैं और (अप्तूर्यम्) वर्षा की धाराओं का प्रेरकत्व भी (युवोः) तुम दोनों में (हितम्) स्थित है ॥ ऋग्वेद ३। १३। ८ में भी ॥ ४ ॥

अथ प्रगाथात्मक द्वितीय सूक्तस्य—भर्गऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
(१५७७) शग्ध्यू ऽ३ऽषु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
२ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (२४३) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

३ १र २र ३१र २र ३ १ २ ३ १ २

(१५७८) पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।

२ ३ १र २र३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १र २र

नकिर्हि दानं परि मर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदाभर ॥२॥ [३]

भाषार्थः–(देव) हे दिव्य ! (इन्द्र) परमेश्वर ! तू (अश्वस्य) प्राण वा घोड़ों का (पौरः) भरपूर करने वाला (असि) है और (गवाम्) इन्द्रियों वा गौवों का (पुरुकृत) बहुत करने वाला है अर्थात् तेरे प्रसाद से प्राण और इन्द्रियां अच्छे प्रकार मिलते और वर्त्तते हैं वा घोड़े गौ आदि उपयोगी धन धान्यादि की कमी नहीं रहती, सो तू (हिरण्ययः) ज्योतिस्स्वरूप और (उत्सः) कुवे के समान गम्भीर है (त्वे) तेरे (दानम्) दिये दान को कोई (हि) निश्चय (नकिः) नहीं (परिमर्धिषत्) लूट सक्ता=नष्ट कर सक्ता, अतः (यत् यत्) जो जो (यामि) मांगता हूं (तत्) वह वह (आभर) भरपूर करदे ॥ ऋग्वेद ८ । ५० । ६ में भी ॥ २ ॥

अथ प्रगाथात्मक चतुर्थसूक्तस्य–भर्गऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा–

१उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ १ २

(१५७९) त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये । उद्वावृषस्व

३ १ २ ३ २ ३ १ २

मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (२४०) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

१ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

(१५८०) त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे २ [४]

भाषार्थः–पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति लाकर हे मघवन् ! इन्द्र ! परमेश्वर ! (त्वम्) आप (पुरू) बहुत (सहस्राणि शतानि च) सैंकड़ों और सहस्रों

(यूथा) गौ धनादि के समूहों को (दानाय) दानकर्त्ता यजमान के लिये (मंहते) देते हैं, सो (विप्रवचसः) विविध उत्तम वचनों वाले और (गायन्तः) सामगानादि द्वारा आप की स्तुति गाते हुये हम (अवसे) रक्षा के लिये (पुरन्दरम्) कामादि शत्रुओं के पुरों को तोड़ने वाले (इन्द्रम्) तुम परमेश्वर को (आ चक्रम) साक्षात् करें ॥ ऋ० ८ । ६१ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ प्रगाथात्मक पञ्चम सूक्तस्य—सौभरिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२उ ३ १२३ २३ १ २ ३ १र २र २ ३ १र

(१५८१) यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् । मघोर्न

२र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

पात्रा प्रथमान्यस्मै प्रस्तोमा यन्त्वग्नये ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४४) में हो गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१५८२) अश्वं न गीर्भीरथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।

३ २ ३ १र २र ३ २ २ १ २ ३ १ २

उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् २[५]

भावार्थः—(दस्म) साक्षात् करने योग्य । (विश्पते) प्रजापते । परमात्मन् । (सुदानवः) जिन्हों ने अच्छे दान किये हैं वे भाग्यवान् (देवयवः) देवों को चाहने वाले जन (रथ्यम्) रथ के लेचलने वाले (अश्वम्) घोड़े (न) के समान कर्मफल के पहुंचाने वाले तुझ को (गीर्भिः) स्तोत्रों से (मर्मृज्यन्ते) स्तुत करते हैं क्योंकि तू (मघोनाम्) ज्ञानयज्ञाऽनुष्ठानियों के (तोके) पुत्र (तनये) और पौत्र (उभे) दोनों में (राधः) धन धान्यादि को (पर्षि) देता है ॥

परमात्मा की भले प्रकार उपासना प्रार्थना करने वाले भाग्यशाली जनों के पुत्र पौत्रादि सन्तति पर्यन्त को धन धान्यादि की कमी नहीं रहती, इस लिये वह कर्मफलदाता सदा स्तुति के योग्य है ॥

भौतिक पक्ष में—(दस्म) देखने योग्य । (विश्पते) यज्ञ द्वारा अन्नादि उत्पन्न करके प्रजा का पालन करने वाले । अग्ने । (सुदानवः) अच्छा दान

करने वाले (देवयवः) देवों को चाहने वाले यजमान लोग (रथ्यम्) रथ वाहने वाले (अश्वम्) घोड़े (न) के समान हव्य वाहने वाले तुझ को (गीर्भिः) वचनों से (मर्मृज्यन्ते) परिचरित करते हैं क्योंकि (मघोनाम्) यज्ञ वालों के (तोके) पुत्र और (तनये) पौत्र (उभे) दोनों में (राधः) धन धान्यादि को (पर्षि) तू देता है ॥

भले प्रकार यज्ञद्वारा अग्नि की परिचर्या करने वालों के पुत्र पौत्रादि सन्तति पर्यन्त धन धान्यादि की समृद्धि होती है, इस लिये रथ्य अश्व के तुल्य हव्यों के वोढा अग्नि की वचनों से प्रशंसा करनी चाहिये ॥ ऋग्वेद ८ । १०३ । ७ में भी ॥ २ ॥

इति षोडशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीये खण्डे एकर्चस्य प्रथमसूक्तस्य शुनःशेप ऋषिः ।
वरुणोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ सेयम्—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५८३) इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ।
१ २ ३ १र २र
त्वामवस्युराचके ॥ १ ॥ [६]

भावार्थः—(वरुण) हे वरणीय ! परमेश्वर ! (मे) मेरे (इमम्) इस (हवम्) पुकारने को (श्रुधि) सुन कर स्वीकार करो, (च) और (अद्य) आज (मृडय) मुझे सुख दो, (अवस्युः) रक्षा चाहता हुवा मैं (त्वाम्) तुम्हारी (आ चके) सर्वतः स्तुति करता हूं ॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३७, ६ । ३ । १३६, ३ । १ । ८, ३ । २ । १७०, ६ । १ । ४५, ६ । ४ । ६४ और ८ । १ । २८ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १ । २५ । १९ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयैकर्चसूक्तस्य—सुकक्षऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १र २र
(१५८४) कया त्वं न ऊत्याऽभि प्रमन्दसे वृषन् ।
३ १ २ ३ २ १ २
कया स्तोतृभ्य आभर ॥ १ ॥ [७]

भावार्थः—(वृषन्) हे कामनापूरक ! परमेश्वर ! (त्वम्) तुम (कया) अपनी अकथनीय अलौकिक (ऊत्या) रक्षा से (नः) हम भक्तों के लिये (अभि प्र मन्दसे) सर्वतः बहुत आनन्द देते हो, सो (स्तोतृभ्यः) स्तुति प्रार्थना करने वालों के लिये (कया) साधारण पुरुष की समझ में न आने वाली रक्षा वा कृपा से (आभर) सुखभोग की सामग्री भरपूर करो ॥ ऋग्वेद ८ । ९३ । १९ में भी ॥ १ ॥

अथ प्रगाथात्मक तृतीयसूक्तस्य—मेधातिथिर्ऋषिः। इन्द्रोदेवता। बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २ १ २
(१५८५) इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रꣳ
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥१॥

इस की व्याख्या (२४९) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३
(१५८६) इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः
१ २ १ २ ३ २ ३ १ २
सूर्यमरोचयत्। इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि
३ १ २ ३ २ ३ १ २
येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥२॥ [८]

भावार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वर ने (मह्ना) महत्त्व से (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी के बीच में (शवः) अपने अनन्त बल को (पप्रथत्) फैलाया हुवा है (इन्द्रः) परमेश्वर ने (सूर्यम्) सूर्यलोक को (अरोचयत्) प्रकाशित किया है (इन्द्रे) परमेश्वर में (ह) ही (विश्वा) सब (भुवनानि) भुवन (येमिरे) नियम से घूम रहे हैं, (इन्द्रे) उसी ईश्वर में (स्वानासः) अभिपूयमाण (इन्दवः) सोम वर्त्तमान हैं ॥ ऋ० ८ । ३ । ६ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथैकर्चचतुर्थसूक्तस्य—विश्वकर्मा भौवनऋषिः। विश्वकर्मा देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१५८७) विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः, स्वयं यजस्व
३ २ १र २र १ २ ३ २ ३ २ ३
तन्वा३ऽ३ऽ स्वाहिते। मुह्यन्त्वन्ये अभितो
१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
जनास, इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥१॥ [९]

भावार्थः—(विश्वकर्मन्) हे विश्वस्रष्टः! परमेश्वर! (वावृधानः) जगत् की वृद्धि करते हुवे आप (स्वाहिते) अपने आप आधान किये हुवे (तन्वाम्) विस्तृत अग्निकुण्ड में (हविषा) हव्य से (स्वयम्) अपने आप (यजस्व) यजन करते हैं, (अन्ये) साधारण अन्य अज्ञानी (जनासः) मनुष्य (इह) इस विषय में (अभितः) सर्वतः (मुह्यन्तु) भूलते हैं तो भूलो परन्तु (अस्माकम्) हम में (मघवा) यज्ञवाला पुरुष (सूरिः) पण्डित जानने वाला और आप के यज्ञ को देखकर स्वयं यज्ञ करने वाला (अस्तु) होवे॥

जगत् को धन, धान्य आरोग्यादि से बढ़ाते हुवे परमात्मा ने स्वयं सूर्यादि लोकरूप बड़े विस्तृत यज्ञकुण्डों में अग्न्याधान करके उन में ओषधि वनस्पति आदि का होम कर रक्खा है जिस को प्रायः अज्ञानी लोग नहीं जानते सो मत जानो परन्तु इस में से याज्ञिक लोग इस रहस्य को जानने वाला और आप के यज्ञ को देखकर स्वयं यज्ञानुष्ठान करने वाला होवे॥

निरुक्त १०। २५, १०। २६, १०। २७, सायणाचार्य इत्यादि प्रमाण और ऋ० १०। ८१। ६ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ १॥

अथ तृतीयस्य तृच सूक्तस्य—अनानतः पारुच्छेपिर्ऋषिः। सोमो देवता। अत्यष्टिश्छन्दः॥ तत्र प्रथमा—

३ २ ३ १र २र ३ २उ ३ २
(१५८८) अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २
तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः। धारा
३ १ २ ३ १ २ ३ १र २ २ ३
पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः। विश्वा

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
यद्रूपा परियास्यद्भिः सप्तास्येभिऋक्भिः ॥१॥

इस की व्याख्या (४६३) में हो चुकी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३
(१५८९) प्राचीमनु प्र दिशं याति चेकितत्सꣳ रश्मिभिर्य-
३ २उ ३ १ २ ३ १र २र १ २ ३ २ ३
तते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतोरथः। अग्मन्नुक्थानि
२उ ३ १ २ १ २ ३ १र २र ३
पौꣳस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्, वज्रश्च यद्भवथो
१ २ ३ १र २र
अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे (चेकितत्) चेताता हुवा (दैव्यः) दिव्य (दर्शतः) दिखाने वाला और स्वयं दर्शनीय (रथः) सूर्य का रमणीय गोला (रश्मिभिः) किरणों के (सम्) साथ (प्राचीं दिशम्) पूर्व दिशा को (अनु) आनुपूर्व्य से (प्रयाति) परिक्रमा करता हुवा जाता है, (यतते) और धारण आकर्षणादि यत्न भी करता है, तद्वत् (दर्शतः) दर्शनीय (रथः) विजयी महारथी इन्द्र राजा का रथ रमणीय यान होता है। और (पौंस्या) लोगों के कहे (उक्थानि) स्तोत्र (इन्द्रम्) उस राजा को (जैत्राय) विजय के लिये (हर्षयन्) हर्ष दिलाते हुवे (अग्मन्) प्राप्त होते हैं (यत्) जिस से (वज्रः) वज्र (च) और अन्य आयुध (समत्सु) संग्रामों में (अनऽपच्युता) ख़ाली न जाने वाले= अकुण्ठित (भवथः) होते हैं। (अनपच्युता) यह दूसरी बार आदरार्था वीप्सा का पाठ है ॥

जिस प्रकार रमणीय सूर्य का गोला रथ के समान पूर्व दिशा से क्रमपूर्वक अपनी किरण रूप शस्त्रास्त्रों सहित मानो रोग शोक अन्धकारादि शत्रुओं के नाशार्थ और पृथिव्यादि लोकों के धारणाऽऽकर्षणादि के लिये जाता है, इसी प्रकार राजा को भी दिग्विजयार्थ दुष्ट शत्रुओं के निवारण और धर्मात्माओं के धारण पालन पोषण के लिये वज्रादि शस्त्रास्त्रों सहित गमन करना चाहिये जिस से हर्ष दिलाने वाले वा बढ़ाने वाले स्तुतिवचनों द्वारा

प्रोत्साहित राजा के शस्त्रास्त्र संग्रामों में व्यर्थ न जांय=कुण्ठित न रहें॥

ऋग्वेद ९।१११।३ में भी॥२॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
(१५९०) त्वंꣳ ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३
स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे। परावतो न साम

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तद्यत्रारणन्ति धीतयः। त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो

३ १ २ ३ १ २
दधे रोचमानो वयो दधे॥३॥[१०]

भाषार्थः—सोम! (त्वम्) तू (त्यत्) उस (पणीनाम्) व्यापारियों के (वसु) धन को (विदः) लब्ध करता है (ह) प्रसिद्ध है कि (ऋतस्य) यज्ञ की (धीतिभिः) धारने वाली (मातृभिः) माता के समान पोषण करने वाली सूर्य की किरणों से (स्वे) अपने (दमे दमे) घर घर में (आ सं मर्जयसि) चारों ओर से भले प्रकार शुद्धि करता है (यत्र) जिस यज्ञ में (धीतयः) कर्म के धारण करने वाले यजमान लोग (आ रणन्ति) आराम करते हैं (तत्) वह (साम) सामवेदगान (न) जैसे (परावतः) दूर से सुनाई देता है, इसी प्रकार दूर से तेरी किरणें भी शुद्धि करती हैं। तू (त्रिधातुभिः) तीनों लोकों को धारण करने वाली (अरुषीभिः) प्रकाशमान किरणों से (वयः) अन्न को (दधे) धारित कराता है, तू (रोचमानः) प्रकाशमान हुवा (वयः) अन्न को (दधे) धारित कराता है। द्विरुक्ति अतिशयार्थ है॥ ऋग्वेद ९।१११।२ में भी॥३॥

इति षोडशाऽध्यायस्य द्वितीयः खण्डः॥२॥

अथ तृतीये खण्डे

प्रथमैकर्चसूक्तस्य—भरद्वाजऋषिः। पूषा देवता। गायत्री छन्दः॥ सैषा—

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
(१५९१) उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।

३ १ २ ३ १ २
नृवत्कृणुह्यूतये॥१॥[११]

भावार्थः—हे सकलजगत्पोषक ! पूषन् ! परमेश्वर ! (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (गोषणिम्) गौ देने वाली (उत) और (अश्वसाम्) घोड़े देने वाली (उत) और (वाजसाम्) अन्न वा बल देने वाली (धियम्) बुद्धि को (कृणुहि) कीजिये ॥

संपूर्ण जगत् के पालक पोषक परमेश्वर वा सूर्यकिरण समूह के प्रसाद से मनुष्यों को वैसी बुद्धि प्राप्त होती है जिस से गौ, अश्व, अन्न, बल आदि सब सुख भोग की सामग्री सुलभ हो ॥ ऋग्वेद ६ । ५३ । १० का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथैकर्चस्य द्वितीय सूक्तस्य—गोतमऋषिः । मरुतोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ सेयं-

३ १ २ ३ १ २
(१५९२) शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः ।
३ १र २र ३ १ २
विदा कामस्य वेनतः ॥ १ ॥ [१२]

भावार्थः—(सत्यशवसः) हे सत्य बल से बलिष्ठो ! (नरः) मरुतो ! ऋत्विजो ! मनुष्यो ! (शशमानस्य) स्तुति से तुम्हारी सेवा करने वाले (स्वेदस्य) स्तुति के मन्त्रोच्चारण में जिस को पसीना आगया उस (वेनतः) स्तोता यजमान के (कामस्य) काम को (विदा) लब्ध कराओ ॥

निघण्टु ३ । १८ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये । भाव यह है कि श्रम से यज्ञ करने और याज्ञिक ऋत्विजों की प्रशंसा करने वाले श्रद्धालु यजमान के यज्ञ में वरण किये ऋत्विजों को वैसा यत्न करना चाहिये जिस से यजमान की कामना पूरी हो ॥ ऋग्वेद १ । ८६ । ८ में भी ॥ १ ॥

अथैकर्चस्य तृतीयसूक्तस्य—ऋजिश्वा ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । गायत्री छन्दः ॥ सेयम्—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(१५९३) उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।
३ १ २
सुमृडीका भवन्तु नः ॥ १ ॥ [१३]

भावार्थः—(ये) जो (अमृतस्य) अमर ईश्वर के (सूनवः) पुत्र हैं, वे (नः) हमारी (गिरः) वाणियों को (शृण्वन्तु) सुनें और (नः) हमारे लिये (सुमृडीकाः) सुन्दर सुखदायक (भवन्तु) हों ॥ ऋ० ६ । ५२ । ९ में भी ॥ १ ॥

अथ तृचस्य चतुर्थसूक्तस्य—पुरुमीढोऽजमीढोवा ऋषिः। द्यावाभूमी देवते। गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५९४) प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे।
२ ३ २ ३ १ २
शुची उपप्रशस्तये ॥ १ ॥

भावार्थः—हे (द्यवी) प्रकाशमान (शुची) शुद्ध पवित्र दोनों द्युलोक और पृथिवी लोको! (वाम्) तुम दोनों की (उपप्रशस्तये) उपप्रशंसा के लिये (महि) बाहुल्य से (उपस्तुतिम्) उपप्रशंसा को, हम (अभि प्र भरामहे) सर्वतः उत्कर्ष से सम्पादन करते हैं ॥

द्यावाभूमी पद से द्युलोक और पृथिवी लोक में स्थित चराऽचर प्रजा की स्तुति की जाती है ॥ ऋग्वेद ४। ५६। ५ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३क २र ३ २उ ३ १ २
(१५९५) पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः।
३ १ २ ३ २ ३ २
ऊह्याथे सनादृतम् ॥ २ ॥

भावार्थः—हे द्यौः! और हे पृथिवि! तुम दोनों (मिथः) एक दूसरे को (तन्वा) अपने देह पिण्ड से (पुनाने) पवित्र करती हुईं (स्वेन) अपने (दक्षेण) बल से (राजथः) विराजमान हो, तथा (सनात्) सदा (ऋतम्) यज्ञ को (ऊह्याथे) ले चलती हो ॥

द्युलोक वृष्ट्यादि से भूमि को और भूमिलोक यज्ञयोग्य औषधि वनस्पत्यादि की उत्पत्ति और उस के द्वारा हुवे यज्ञों से द्युलोक को पवित्र करता है, इस प्रकार दोनों लोक एक दूसरे के पावन हैं ॥ ऋ० ४। ५६। ५ में भी ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१५९६) मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम्।
१ २ ३ १र २र
परि यज्ञं निषेदथुः ॥ ३ ॥ [१४]

भाषार्थः-(मही) महती द्यावाभूमि (मित्रस्य) प्राण को (साधयः) साधती हैं और (अतम्) अन्न को (तरन्ती) तिराती और (बिभ्रती) भरती और (यज्ञम्) यज्ञ को (परि-नि-षेदथुः) सर्वतः आश्रय करती हैं ॥

ऋग्वेद ४ । ५६ । ७ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृचस्य पञ्चमसूक्तस्य—शुनःशेप ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(१५९७) अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।

२ ३ १ २

वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१८३) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ ३ १ २ ३ १ २

(१५९८) स्तोत्रꣳ राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।

१ २ ३ १ २

विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २ ॥

भाषार्थः—(वीर) हे शूरवीर ! (राधानां पते) धनों के पति ! राजन् ! वा परमेश्वर ! (यस्य) जिस (गिर्वाहः) स्तुतिरूप वाणियों से वहन किये हुवे (ते) तेरी (स्तोत्रम्) स्तुति की जाती है । उस तेरी (विभूतिः) विभूति (सूनृता) प्यारी और सच्ची (अस्तु) होवे ॥

'परमेश्वर की विभूति प्यारी सच्ची होवे, कहने से यह तात्पर्य नहीं कि परमेश्वर के प्रति आशिष् हो किन्तु लोक में परमेश्वर की सच्ची और प्यारी विभूति विश्वास में आवे, यह लोक के प्रति आशिष् है ॥ ऋ० १ । ३० । ५ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ २ ३ १२ २र

(१५९९) ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो ।

२ ३ १ २

समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥ [१५]

भाषार्थः—(शतक्रतो) हे बहुकर्मन् ! इन्द्र ! राजन् ! वा परमेश्वर आप (अस्मिन्) इस (वाजे) संग्राम में वा कामक्रोधादिशत्रुओं के संग्राम में (नः) हमारे (ऊर्ध्वः) ऊपर (तिष्ठ) रहें, जिस से (समन्येषु) संग्राम के सम्बन्धी कार्यों में (ब्रवावहै) मैं और आप सम्मति कर सकें। अर्थात् राजा की सम्मति से तदनुकूल योद्धा लड़ें और ईश्वरपक्ष में परमेश्वर की सम्मति वेदद्वारा लेकर कामादि शत्रुगण का सामना करें, यह तात्पर्य है॥ निघण्टु २। १७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ३॥

अथ षष्ठतृचस्य—हर्यत ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १२ ३२ ३२ ३१२ ३१२
(१६००) गाव उपवदाऽवटे मही यज्ञस्य रप्सुदा।
३ १२ २ ३१२
उभा कर्णा हिरण्यया॥ १॥

इस की व्याख्या (११७) में होगई है॥ १॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ १२ २२ ३ १२ ३ १२ ३ १२
(१६०१) अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु।
३ १२ ३ १२
अवटस्य विसर्जने॥ २॥

भाषार्थः—(अवटस्य) यज्ञकुण्ड रूप गर्त्त के (विसर्जने) विसर्जन करने पर (पुष्करे) आकाश में (निषिक्तम्) निषेक किये हुवे (मधु) रस को (अद्रयः) मेघ (अभि, आरम्, इत्) सर्वतः वर्षाते हैं॥

यज्ञ से मेघ होता है, ऐसा कृष्णभगवद्वचन भी एतन्मूलक है॥ ऋग्वेद ८। ७२। ११ में भी॥ २॥

अथ तृतीया—

३ २ ३ १२ ३२३ १ २ ३ १२
(१६०२) सिञ्चन्ति नमसाऽवटमुच्चाचक्रं परिज्मानम्।
३ १ २ ३ १ २
नीचीनबारमक्षितम्॥ ३॥ [१६]

भाषार्थः—(उच्चाचक्रम्) ऊंचे चक्र वाले (परिज्मानम्) चारों ओर से गये हुवे (नीचीनवारम्) नीचे किनारों के (अक्षितम्) अखण्ड (अवटम्) यज्ञकुण्ड वा महावीर पात्र को (नमसा) नम्रता से (सिञ्चन्ति) जल से धोते हैं॥

यज्ञान्त में ऋत्विज्लोग यज्ञकुण्ड को वा महावीरोपलक्षित पात्रों को जल से अभ्युक्षण करके रखते हैं॥ ऋ० ८। ७२। १० में भी॥ ३॥

इति षोडशोऽध्यायस्य तृतीयः खण्डः॥ ३॥

अथ चतुर्थे खण्डे प्रथमस्य प्रगाथात्मक सूक्तस्य—काण्वोदेवातिथिर्ऋषिः। इन्द्रोदेवता। अनुष्टुप्, निचृत् पङ्क्तिश्च क्रमेण छन्दसी॥ तत्र प्रथमा—

१ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३

(१६०३) मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव। महत्ते

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम्॥१॥

भाषार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर! (उग्रस्य) अतिबलवान् (तव) तेरी (सख्ये) मित्रता में (मा भेम) हम किसी से न डरें (मा श्रमिष्म) न थकें (ते) तेरा (वृष्णः) कामना पूरक का (महत्) बहुत (अभिचक्ष्यम्) सर्वतः स्तुतियोग्य (कृतम्) कर्म है। हम (तुर्वशम्) समीपस्थ (यदुम्) मनुष्य को (पश्येम) देखें॥

निघण्टु २। ३॥ २। १६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥

ऋग्वेद ८। ४। ७ में भी॥ १॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र ३ २र ३ २३ २ ३ १

(१६०४) सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो

२ २ ३ १ २ ३ ३ १ २

अस्य रोषति। मध्वा संपृक्ताः सारघेण

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब॥ २॥ [१७]

भाषार्थः—हे मनुष्य! (वृषा) वृष्टिकर्ता इन्द्र देव वा परमात्मा (सव्याम्) सीधी अनुकूल (स्फिग्यम्) करवट (अनु) को (वावसे) वर्तमान है

और (धेनवः) पानयोग्य सोम (सारघेण) माक्षिक (मध्वा) मिठाई शहद से (संपृक्ताः) सने हुवे संस्कृत तयार हैं (अस्य) इस इन्द्र वा परमेश्वर का (दानः) दान (न) नहीं मारता किन्तु सुखदायक ही होता है, (द्रव) दौड़ (गहि) आव और (तूयम्) सोमरस को (पिब) पी ॥

जब परमेश्वर वा इन्द्रदेव की अनुकूलता हो, सुन्दर वर्षा से पानयोग्य सोम उत्पन्न होकर मधु मिला तैयार हो तो ऐसे उत्तम अवसर पर सौभाग्य जानकर मनुष्य को आलस्य त्याग कर सोमरस पान में चूक न करनी चाहिये॥

अमरकोष ३ । १ । ८४ ॥ २ । ५ । २६ उणादिकोष ३ । ३२ ॥ ३ । ३४ निघण्टु १ । १२ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ४ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ द्वितीयप्रगाथ सूक्तस्य—मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१६०५) इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत॥१॥

इस की व्याख्या (२५०) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १
(१६०६) अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र
२ ३ १र २र ३ १ २ ३
इव पप्रथे । सत्यः सो अस्य महिमा गृणे
१ २ ३ १ २ ३ १ ३
शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २ ॥ [१८]

भावार्थः—(अयम्) यह परमेश्वर इन्द्र (सहस्रम्) बहुत (ऋषिभिः) ऋषियों ने (सहस्कृतः) अपना बल बनाया है (सः) वह (अस्य) इस का (महिमा) बड़प्पन (सत्यः) सत्य है (विप्रराज्ये) विद्वानों ब्राह्मणों के राज्य में (यज्ञेषु) अग्निष्टोमादि यज्ञों में (शवः) उस बल की (गृणे) स्तुति करता हूं ॥

परमेश्वर को असंख्य ऋषियों ने अपना बल बनाया है इस लिये उस आत्मिक बल की प्रशंसा स्तुति प्रार्थना प्रत्येक यज्ञ में जहां ब्राह्मणों की आज्ञा चलती है, करनी योग्य है ॥ ऋ० ८ । ३ । ४ में भी ॥ २ ॥

अथ प्रगाथात्मक तृतीयसूक्तस्य--पुष्टिगुः काण्वऋषिः । इन्द्रोदेवता । विराड्बृहती छन्दः ॥ तत्र प्रथमा--

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
(१६०७) यस्याऽयं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥१॥

भावार्थः--(यस्य) जिस परमेश्वर का (अयम्) यह (विश्वः) सब (आर्यः) आर्यगण (शेवधिपाः) वेदविद्यारूप कोष का रक्षक (दासः) भृत्य वा सेवक वा भक्त और (अरिः) प्रापक है, उस (अर्ये) स्वामी (रुशमे) नियन्ता (पीवरवि) वाणी के पिता परमेश्वर में (तिरः) छिपा हुवा (चित्) भी (सः) वह (रयिः) वेद कोष का धन (तुभ्य) तुझ भक्त के लिये (इत्) अवश्य (अज्यते) प्रकट किया जाता है ॥

निरुक्त २ । ४ उणादि ४ । १३९ और सायणाचार्य के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८ । ५१ । ९ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया--

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६०८) तुरण्यवोमधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यंशवोस्मे स्वानास इन्दवः ॥ २ ॥ [१९]

भावार्थः--(तुरण्यवः) फुरतीले (विप्रासः) बुद्धिमान् ऋत्विज् (मधुमन्तम्) मधुक्षीरादि वाले (घृतश्चुतम्) जल वर्षाने वाले (अर्कम्) अर्चनीय वा यजनीय परमेश्वर वा इन्द्र को (आनृचुः) पूजते वा यजन करते हैं और चाहते हैं कि (अस्मे) हमारे लिये (रयिः) धन (पप्रथे) विस्तृत हो (वृष्ण्यं शवः) वीर्यवर्धक बल विस्तृत हो (अस्मे) हमारे लिये (स्वा-

नासः) अभिपूयमाण (इन्दवः) सोमरस विस्तृत हों ॥ ऋग्वेद ८ । ५१ । १० का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृचस्य चतुर्थसूक्तस्य—पर्वतनारदावृषी । सोमोदेवता । उष्णिक् छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६०९) गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव: ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५७४) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६१०) स नो हरीणां पत इन्दो देव प्सरस्तमः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सखेव सख्ये नर्योरुचे भव ॥ २ ॥

भावार्थः—(हरीणाम्) हरने से चलने वाली किरणों वा आत्माओं के (पते) स्वामिन् ! (इन्दो) गीले सोम ! वा परमेश्वर ! (देव) देव ! (प्सरस्तमः) अत्यन्त प्रकाशमान (नर्यः) नरों के हितकारी (सः) सो आप (नः) हमारे लिये (रुचे) प्रकाशार्थ (भव) हों । (इव) जैसे (सख्ये) मित्र के लिये (सखा) मित्र होता है तद्वत् ॥ ऋ० ९ । १०५ । ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(१६११) सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कंचिदत्रिणम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
साह्वाँ इन्दो परिबाधो अपद्वयुम् ॥ ३ ॥ [२०]

भावार्थः—(इन्दो) हे सोम ! वा परमेश्वर ! (त्वम्) तू (सनेमि) सनातन पुरानी मित्रता को (आ) कर और (अदेवम्) देवविरोधी (कश्चित) किसी (अत्रिणम्) भक्षक राक्षस को (अस्मत) हम से (अप) दूर कर (बाधः) बाधकों को (साह्वान्) तिरस्कृत करता हुवा तू (परि) हटा और (द्वयुम्) भीतर बाहर २ भेद रखने वाले कपटी को वर्जित कर ॥

परमेश्वर की उपासना वा सोमयाग करने वाले मनुष्यों में इस प्रकार का बल उत्पन्न होता है जिस से वे अपने विरोधी सब अनिष्टों के निवारण में समर्थ होते हैं ॥ ऋग्वेद ९ । १०५ । ६ में भी ॥ ३ ॥

अथ पञ्चमस्य तृचसूक्तस्य—अत्रिर्ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ २३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क

(१६१२) अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वा-

२र १ २ ३ २ ३१२ ३१ २

ऽभ्यञ्जते । सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं

३ २ ३२३१ २

हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (५६४) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ १ २ ३ १र

(१६१३) विपश्चिते पवमानाय गायत महो न धारा-

२र २ ३ २ ३ १ २र ३

ऽत्यन्धो अर्षति । अहिर्न जूर्णामति सर्पति

२ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २

त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! (विपश्चिते) मेधा तत्त्व वाले (पवमानाय) शुद्धिकारक सोम के लिये (गायत) गानकरो=उस के गुणों का कीर्त्तन करो। वह सोम (महो) बड़ी (धारा) वृष्टिधारा के (इव) समान (अन्धः) अन्न को (अति) बहुत (अर्षति) वर्षाता है । (अहिः) सर्प (न) सा (जूर्णाम्) पुरानी (त्वचम्) कांचली को (अतिसर्पति) त्याग जाता है (वृषा) वृष्टिकारक (हरिः) हरा सोम (अत्यः) अश्व (न) सा शीघ्रगामी (असरत) दौड़ता=वेगवान् होता और वेग उत्पन्न करता है ॥

भारी वृष्टि जैसे अन्न उत्पन्न करती है, तद्वत् सोम भी वर्षा द्वारा अन्न को उत्पन्न करता है, शुद्धिकारक है, सर्वत्र जीर्णता को नष्ट कर यौवन उत्पन्न-

करता है, फुरती को फैलाता है, इस प्रकार के गुणों से सोम की प्रशंसा वा कीर्त्तन करना चाहिये ॥ ऋ० ९। ८६। ४४ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया-

३ १२ २२ ३ २ ३ २ ३
(१६१४) अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां
१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
भुवनेष्वर्पितः। हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो
३ १ २ ३ २ ३क २२
ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥ ३ ॥ [२१]

इति सप्तमः प्रपाठकः ॥७॥

इति षोडशाऽध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

भाषार्थः-(अग्रेगः) नव ग्रहों में सब से अग्रगामी (राजा) प्रकाशमान (अप्यः) जलमय सोम चन्द्रलोक (तविष्यते) वर्णित किया जाता है (अन्हाम्) तिथियों का (विमानः) बनाने वाला है क्योंकि चन्द्रमा की कलाओं के घटने बढ़ने के अधीन सब तिथि हैं। (भुवनेषु) लोकों में (अर्पितः) परमेश्वर ने रक्खा है (घृतस्नुः) जल का टपकाने वाला है (हरिः) हरने वाला है (सुदृशीकः) उत्तम दर्शनीय है इसी से लोक में भी दर्शनीय मुखों को चन्द्रमा की उपमा दी जाती है। (अर्णवः) गीली किरणों वाला होने से जलवान् है (ज्योतीरथः) सूर्य की ज्योति जिस का रमणीय रथ वा मार्ग है। (रायः) धनों को (पवते) वर्षाता है (ओक्यः) रहने योग्य है ॥ ऋग्वेद ९। ८६। ४५ में भी ॥ ३ ॥

इति श्रीमत्कण्ववंशावतंस श्रीमान् पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र परीक्षितगढ़ (ज़िला-मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में सोलहवां अध्याय समाप्त हुवा ॥ १६ ॥

ओ३म्

अथ सप्तदशोऽध्यायः

तत्र प्रथमे खण्डे प्रथमतृचस्य—शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३१ २ ३ २ ३२३१र २र

(१६१५) विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।

१ २

चनो धाः सहसो यहो ॥ १ ॥

भावार्थः—(सहसः) बल के (यहो) पुत्र ! (अग्ने) अग्ने (विश्वेभिः) सब (अग्निभिः) आहवनीयादि अग्नियों के साथ (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ को (इदम्) और इस (वचः) वेद पाठ को सङ्गत वा स्वीकृत कर और (चनः) अन्न को (धाः) धारित करा ॥ ऋ० १ । २६ । १० में भी ॥१॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १र २र३ १ २ ३ १ २३ १ २

(१६१६) यच्चिद्धि शश्वता तना देवं देवं यजामहे ।

१र २र ३ २

त्वे इद्धूयते हविः ॥ २ ॥

भावार्थः—पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति लेकर—अग्ने ! (यत् चित् हि) यद्यपि (शश्वता) सनातन (तना) विस्तृत यज्ञ से, हम (देवम् देवम्) प्रत्येक देवता का (यजामहे) यजन करते हैं, परन्तु (हविः) हव्य को (त्वे) तुझ में (इत्) ही (हूयते) होमाजाता है । अर्थात् अग्नि देवता में ही होम करके सब देवों का यजन होता है ॥ ऋ० १ । २६ । ६ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र

(१६१७) प्रियोनो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।

३ २ ३ १ २ ३ २

प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ३ ॥ [१]

भावार्थः—(विश्पतिः) प्रजापालक (होता) होम का साधक (मन्द्रः) दीप्त (वरेण्यः) वरणीय अग्नि (नः) हमारा (प्रियः) प्यारा (अस्तु) हो, तथा (वयम्) हम याज्ञिक लोग भी (स्वग्नयः) उत्तम अग्नि के आधान करने वाले (प्रियाः) परस्पर प्यार करने वाले हों ॥

ऋग्वेद १ । २६ । ७ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१६१८) इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।

३ १ २ ३ १ २

अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥

भावार्थः—(जनेभ्यः) मनुष्योपलक्षित प्राणिमात्र के लिये (वः) तुम्हारे लिये (विश्वतः) सब से (परि) ऊपर विराजमान (इन्द्रम्) इन्द्र देव को (हवामहे) हम याज्ञिक लोग अग्नि दूत द्वारा बुलाते हैं जिस से (अस्माकम्) हमारा (केवल) असाधारण वह इन्द्र (अस्तु) हो जावे ॥

ऋग्वेद १ । ७ । १० में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २

(१६१९) स नो वृषन्नमुं चरुꣳ सत्रादावन्नपावृधि ।

३ २ ३ १ २

अस्मभ्यमऽप्रतिष्कुतः ॥ २ ॥

भावार्थः—(सत्रादावन्) हे एक साथ दान करने वाले ! (वृषन्) वृष्टि करने वाले ! इन्द्र ! (अप्रतिष्कुतः) अप्रधृष्य (सः) वह तू (नः) हमारे (अमुम्) इस (चरुम्) अन्न को (अस्मभ्यम्) हम याज्ञिकों के लिये (अपावृधि) उघाड़ ॥ ऋ० १ । ७ । ६ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६२०) वृषा यूथेव वंᳬसगः कृष्टीरियर्त्योजसा ।
१ २ ३ १ २
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ३ ॥ [२]

भावार्थः—(ईशानः) शक्तिमान् (अप्रतिष्कुतः) जिस को रोकने को कोई बोल नहीं सक्ता (वृषा) वृष्टि करने वाला इन्द्र (कृष्टीः) मनुष्यों और तदुपलक्षित अन्य प्राणियों को (ओजसा) बल वा विद्युतरूप से (इयर्त्ति) प्राप्त होता है (इव) जैसे (वंसगः) उत्तम गति वाला सांड (यूथा) गौवों के यूथों को प्राप्त होता है तद्वत् ॥

जैसे गौवों को बिजार अत्यन्त वीर्यप्रद है, वैसे इन्द्रदेव भी मनुष्यादि प्राणियों में बलवीर्यरूप से भीतर विराजमान रहता है ॥

ऋग्वेद १ । ७ । ८ में भी ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथस्य तृतीयसूक्तस्य-तृणपाणिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
(१६२१) त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधाᳬसि चोदय ।
३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः १

इस की व्याख्या (४१) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २
(१६२२) पर्षि तोकं तनयं पर्त्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वाभिः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
अग्ने हेडाᳬसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि
१ २
ह्वराᳬसि च ॥ २ ॥ [३]

भावार्थः—(अग्ने) हे प्रकाशात्मक ! परमेश्वर ! वा अग्ने ! (त्वम्) तू (अदब्धैः) अनिवार्य (अप्रयुत्वभिः) अनेक साथ साथ वर्त्तमान (पर्तृभिः) पालन के साधनों से (नः) हमारे (तोकम्) पुत्र (तनयम्) पौत्र को (पर्षि) पालित करता है (दैव्या) दैवी (हेडांसि) कोपों (च) और (अदेवानि) आसुरी (ह्वरांसि) कुटिलताओं को (ययोधि) हम से वर्जता है॥

ऋग्वेद ६ । ४८ । १० में भी ॥ २ ॥

अथ चतुर्थस्य तृचसूक्तस्य—वसिष्ठऋषिः । विष्णुर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१र २र ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १
(१६२३) किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्रयद्ववक्षे
२ ३ १ २ १र २र ३ १र २र
शिपिविष्टो अस्मि । मा वर्पो अस्मदपगूह
३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
एतद् यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ १ ॥

भावार्थः—(विष्णो) हे यज्ञ ! (ते) तेरा (परिचक्षि) सर्वत्र विख्यात (नाम) नाम (किम्) क्या (इत्) ही कहा जावे वह तो वर्णन से बाहर है । (यत्) जो कि तू (प्रववक्षे) कहता है कि मैं (शिपिविष्टः) किरणों में प्रविष्ट (अस्मि) हूं । (एतत्) इस किरणगत (वर्पः) रूप को (अस्मत्) हम याज्ञिकों से (मा) मत (अपगूह) छिपा (यत्) जोकि तू (समिथे) दुष्टशत्रुसमान नाना रोगों के साथ संग्राम में (अन्यरूपः) विलक्षण रूप वाला (बभूथ) होता है ॥

यज्ञ जब सूर्यकिरणों में जाता है तो शत्रुतुल्य नाना रोगों से संग्राम करता है और ऐसा भिन्न विलक्षण रूप धारण करता है जो छिप नहीं सका और मानो यज्ञ कहने लगता है कि मैं सूर्य किरणों में प्रविष्ट हूं । ऐसे यज्ञ के स्वरूप और फल का क्या वर्णन किया जावे ॥ निघण्टु ३ । १७ ॥ ३ । ७ ॥ २ । १७ निरुक्त ५ । ८ अष्टाध्यायी ७ । २ । ६४ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥

ऋग्वेद ७ । १०० । ६ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१६२४) प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शंसामि
३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १
वयुनानि विद्वान्। तं त्वा गृणामि तवसम-
२ ३ १ २ ३ १र ३ २र ३ २
तव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ २ ॥

भावार्थः—(तत्) इस कारण (शिपिविष्ट) हे किरणव्याप्त यज्ञ। (ते) तेरे (वयुनानि) प्रशंसनीय गुणों को (विद्वान्) जानता हुवा मैं (अर्यः) हव्यों का स्वामी यजमान (अद्य) आज यज्ञ के दिन (हव्यम्) हव्य पदार्थ को (प्र—शंसामि) प्रशंसापूर्वक होमता हूं (तम्) उस प्रसिद्ध (तवसम्) बलवान् (अस्य) इस (रजसः) लोक=पृथिवी के (पराके) दूर (क्षयन्तम्) रहते हुवे (त्वा) तुझ यज्ञ की (अतव्यान्) निर्बल वा कृश मैं (गृणामि) प्रशंसा करता हूं ॥ ऋ० ७ । १०० । ५ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १र २र ३ १ २
(१६२५) वषट् ते विष्णवास आकृणोमि—तन्मे जुषस्व शिपि-
३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
विष्ट हव्यम् । वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे—यूयं
२ ३ २ ३ १ २
पात स्वस्तिभिः सदाः नः ॥ ३ ॥ [४]

भावार्थः—(शिपिविष्ट) हे सूर्यकिरणों में व्याप्त ! (विष्णो) यज्ञ ! (ते) तेरे (आस) मुख में (वषट्) वषट्कारपूर्विका आहुति (आकृणोमि) करता हूं (तत्) उस वषट्पूर्वक (मे) मेरे (हव्यम्) घृतादि को (जुषस्व) तू सेवित=स्वीकृत कर (मे) मेरी (सुष्टुतयः) सुन्दर स्तुतियुक्त (वाचः) वाणियें (त्वा) तुझ यज्ञ को (वर्धन्तु) बढ़ावें (यूयम्) तू (स्वस्तिभिः) कल्याणों भलाइयों से (सदा) सर्वदा (नः) हमारी (पात) रक्षा कर॥

जो लोग यज्ञानुष्ठान करते, स्वाहा स्वधा वषट् औषट् वौषट् इत्यादि यथाविनियोग शब्दों के द्वारा उस यज्ञ के प्रचार तथा अनुष्ठान से लोक में यज्ञ को बढ़ाते हैं, यज्ञदेव सदा सब भलाइयों द्वारा उन की रक्षा करता है। यह भाव है ॥ ऋग्वेद ७ । १०० । ७ में भी ॥ ३ ॥

इति उत्तरार्चिके सप्तदशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

उक्तो वाजपेयः । इन्दानीं राजसूय उच्यते इति विव०

अथ द्वितीये खण्डे

प्रथमतृचस्य—वामदेवऋषिः । इन्द्रवायू देवते । अनुष्टुप् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१६२६) वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आयाहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ १ ॥

भावार्थः—(देव) दिव्यगुणयुक्त ! (वायो) पवन ! (दिविष्टिषु) देव यजनों में (अग्रम्) मुख्य (मध्वः) मधुर हव्य को (ते) तेरे लिये (अयामि) पहुंचाता हूं (शुक्रः) वीर्यवान् (स्पार्हः) स्पृहणीय तू (सोमपीतये) सोमपानार्थ (नियुत्वता) वेगरूपी अश्व से (आयाहि) आ ॥

ऋग्वेद ४ । ४७ । १ अपि ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १
(१६२७) इन्द्रश्च वायवेषाᳪ सोमानां पीतिमर्हथः ।
३ १र २र ३ २उ ३ २ ३ २
युवाᳪ हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२॥

भावार्थः—(वायो) हे वायु ! तू (च) और (इन्द्रः) विजुली, दोनों (एषाम्) इन (सोमानाम्) सोमरसों के (पीतिम्) पान का (अर्हथः) योग्य हो (इन्दवः) सोम (युवाम्) तुम दोनों को (यन्ति) प्राप्त होते हैं (हि) निश्चय (न) जैसे (निम्नम्) नीचे स्थान को (आपः) जल (सध्र्यक्) साथ जाते हैं ॥ ऋग्वेद ४ । ४७ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१६२८) वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथꣳ शवसस्पती ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

नियुत्वन्ता न ऊतय आयातꣳ सोमपीतये ॥३॥ [५]

भावार्थः—(वायो) हे वायु ! तू (च) और (इन्द्रः) इन्द्र=बिजुली दोनों (शवसः) बल के (पती) २ पति (शुष्मिणा) २ बलवान् (नियुत्वन्ता) अपने नियुत्वत् संज्ञक वेगरूप अश्व वाले दोनों (सरथम्) समान= एक ही वेगरूप रथ पर [चढ़ कर] (नः) हमारी (ऊतये) रक्षार्थ (सोमपीतये) सोमपानार्थ (आयातम्) आओ ॥ ऋ० ४ । ४७ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—सूनुर्रेभो वा ऋषिः । सोमोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र

(१६२९) अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्रगाहसे ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

यदी विवस्वतो धियो हरिꣳ हिन्वन्ति यातवे ॥१॥

भावार्थः—(क्षपा) रात्रि से (अध) पश्चात् प्रातःसवन में (परिष्कृतः) अभिषुत सोम (वाजान्) बलों को (अभि—प्र—गाहसे) व्यापता है (यदि) जब कि (विवस्वतः) सूर्य की (धियः) प्रेरणादि क्रियायें (हरिम्) हरे सोम को (यातवे) जाने को (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं तब ॥ ऋग्वेद ९ । ९९ । २ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१६३०) तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥२॥

भावार्थः—(अस्य) इस सोम के (तम्) उस रस को (मर्जयामसि) हम शोधते हैं (यः) जो रस (मदः) हृष्टिपुष्टिकारक (इन्द्रपातमः) इन्द्र से

अत्यन्त पिया जाता है। और (गावः) सूर्य किरणें (च) और (सूरयः) विद्वान् ऋत्विज् लोग (यम्) जिस रस को (नूनम्) निश्चय (पुरा) पूर्व काल में और अब भी (आसभिः) मुखों से (दधुः) धारते हैं=पीते हैं॥ ऋग्वेद ९। ९९। ३ में भी ॥ २॥

अथ तृतीया-

१र २र ३ १ २ ३ २३क २र
(१६३१) तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः॥३॥ [६]

भावार्थः-(पुनानम्) शोधे गये हुवे (तम्) उस सोमरस को (पुराण्या) पुराणी सनातनी (गाथया) गीतरूप वेदवाणी से (अभि-अनूषत) चारों ओर बैठे ऋत्विज् स्तुत वा प्रशंसित करते हैं (उतो) और (देवानाम्) वायु, सूर्य, पूषा, अर्यमा आदि देवतों के (नाम) नामों को (बिभ्रतीः) धारती हुईं (धीतयः) ऋत्विजों के हाथों की अङ्गुलियें (कृपन्त) समर्थ करती हैं॥ ऋग्वेद ९। ९९। ४ में भी ॥ ३॥

अथ तृतीयतृचस्य-शुनःशेपऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। तत्र प्रथमा-

२ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १र
(१६३२) अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं
२र ३ १ २ ३ १ २
नमोभिः। सम्राजन्तमध्वराणाम्॥ १॥

इस की व्याख्या (१७) में होगई है॥ १॥

अथ द्वितीया-

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(१६३३) स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः।
३ २ ३ १ २
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात्॥ २॥

भावार्थः-(शवसा) बल वेग से (पृथुप्रगामा) विस्तृत और उत्कृष्ट गति वाला, (मीढ्वान्) वृष्टिकारक (अस्माकं सूनुः) हमारा पुत्र तुल्य

अरणियों में उत्पादित (सः च) वही होम किया हुआ अग्नि (नः) हमारे लिये (सुशेवः) सुसुख (बभूयात्) होवे ॥ ऋ० १ । २७ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ ३ २ ३ १ २र ३ २
(१६३४) स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥ ३ ॥ [७]

भावार्थः—(विश्वायुः) सर्वत्र गमन वाला (सः) वह होम किया हुआ अग्नि (आसात्) समीपस्थ (च) और (दूरात् च) दूरस्थ भी (अघायोः) पापी दुष्ट शत्रु (मर्त्यात्) मनुष्यादि प्राणी से (नः) हम को (सदम्, इत्) सदैव (नि पाहि) नितरां रक्षा करता है ॥ ऋ० १ । २७ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथात्मक तृतीयसूक्तस्य—नृमेध ऋषिः । इन्द्रोदेवता बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१६३५) त्वमिन्द्र प्रतूर्त्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३११) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २
(१६३६) अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न
३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मातरा । विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे
३ १र २ ३ १ २
वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ २ ॥ [८]

भावार्थः—(इन्द्र) विद्युत् वा वायु विशेष । (क्षोणी) द्युलोक और पृथिवी (ते) तेरे (तुरयन्तम्) वेगवान् (शुष्मम्) बल को (अनु—ईयतुः) अनुकूल चलती हैं, (न) जैसे (मातरा) २ मातायें (शिशुम्) बच्चे का

अनुगमन करती हैं। (यत्) जिस कारण (वृत्रम्) मेघ को (तूर्वसि) तू मार गिराता है इस कारण (ते) तेरे (मन्यवे) कोप के सामने (विश्वाः) सब (स्पृधः) स्पर्धा करने वाली मेघसेनायें (श्नथयन्त) शिथिल पड़जाती हैं॥ ऋग्वेद ८। ९९। ६ में भी॥ २॥

इति सप्तदशाऽध्यायस्य द्वितीयः खण्डः॥ २॥

अथ तृतीये खण्डे-

प्रथम तृचस्य-गोषूक्तिरश्वसूक्तिर्वा ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

तत्र प्रथमा-

२ १र २र ३ २उ ३ १ २
(१६३७) यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्त्तयत्।
३ १ २ ३ २ ३ २
चक्राण ओपशं दिवि॥ १॥

इस की व्याख्या (१२१) में हो चुकी है॥ १॥

अथ द्वितीया-

२ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(१६३८) व्यान्तरिक्षमतिरन् मदे सोमस्य रोचना।
२ ३ १ २र ३ २
इन्द्रो यदभिनद्वलम्॥ २॥

भावार्थः-(यत्) जब कि (इन्द्रः) इन्द्र (सोमस्य) सोमरस के (मदे) हर्ष में (रोचना) प्रकाशमान (अन्तरिक्षम्) आकाश को (वि-अतिरत्) पतरता है, तब (वलम्) मेघसैन्य को (अभिनत्) भिन्न करता है॥

ऋग्वेद ८। १४। ७ में भी॥ २॥

अथ तृतीया-

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
(१६३९) उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः।
३ १ २ ३ २
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम्॥ ३॥ [९]

भावार्थः-पूर्व से अनुवृत्ति लाकर-इन्द्र (अङ्गिरोभ्यः) अङ्गाराकार सूर्यादि पिण्डों से (गुहा) छिपी (सतीः) हुई (गाः) किरणों को (आविष्कृण्वन्) प्रकट करता हुवा (उद्-आजत्) उद्गत करता है और (वलम्) मेघ की सेना को (अर्वाञ्चम्) नीचे (नुनुदे) गिराता है ॥

मध्यस्थान इन्द्रदेव वायुविशेष के सहारे सूर्यादि उत्तम पिण्डों से हम तक प्रकाश और किरणें आती हैं और इन्द्र से ही मेघ वर्षता है ॥

ऋग्वेद ८ । १४ । ८ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य-श्रुतकक्षः सुकक्षोवा ऋषिः। इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा-

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६४०) त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।
१ २ ३ १ २
आच्यावयस्यूतये ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१७०) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया-

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १२ २२
(१६४१) युध्मꣳसन्तमनर्वाणꣳ सोमपामनपच्युतम् ।
१२ ३ १ २
नरमवार्यक्रतुम् ॥ २ ॥

भावार्थः-(युध्मम्) युद्धकुशल, (अनर्वाणम्) जिस के सामने कोई न चढ़े, (सोमपाम्) सोम पीने वाले, (सन्तम्) होते हुवे, अतएव (अनपच्युतम्) शत्रुओं से अजित, (नरम्) सेना के नेता, (अवार्यक्रतुम्) जिस का कर्म रोका न जासके, ऐसे [इन्द्र=राजा का आह्वान करो] इतना पूर्व मन्त्रों से अन्वय है ॥ ऋ० ८ । ९२ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया-

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
(१६४२) शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरुविद्वाँ ऋचीषम ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अवा नः पार्ये धने ॥ ३ ॥ [१०]

भावार्थः—(ऋचीषम) हे ऋचा में वर्णित स्तुति के अनुरूप ! (इन्द्र) राजन् ! (नः) हमारे लिये (रायः) धनों को (आ) लाकर (पुरु) बहुत (शिक्ष) दो तथा (पार्ये) शत्रुओं से लाये (धने) रत्नादि धन में (नः) हमें (अव) रक्षित करो ॥ ऋग्वेद ८ । ९२ । ९ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—गोषूक्तिरश्वसूक्तिर्वा ऋषिः । इन्द्रोदेवता । उष्णिक् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ २ ३२उ ३ १ २ ३ १२ २२

(१६४३) तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव दक्षमुत क्रतुम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २

वज्रꣳशिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥

भावार्थः—हे इन्द्र ! ईश्वर ! वा राजन् ! वा भौतिकेन्द्र देव ! (तव) तेरा (त्यत्) वह प्रसिद्ध (बृहत्) भारी (इन्द्रियम्) तुझ ईश्वर से सेवित, वा तुझ राजा के चिन्ह, वा तुझ इन्द्रदेव के दिये (दक्षम्) बल (उत) और (क्रतुम्) कर्म वा पुरुषार्थ को और (तव) तेरे (वरेण्यम्) उत्तम (वज्रम्) प्रहरणसाधन शस्त्रास्त्रादि को (धिषणा) धारणावती बुद्धि (शिशाति) पैनाती हैं ॥

ईश्वर पक्ष और राजा पक्ष में उस ईश्वरीय वा राजकीय शक्ति के बुद्धिपूर्वक ज्ञान से पैनाना संगत है और भौतिक पक्ष में बुद्धितत्त्व से बल पौरुष आदि की विवक्षा ठीक है ॥ ऋग्वेद ८ । १५ । ७ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१६४४) तव द्यौरिन्द्र पौꣳस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।

२उ ३ १ २

त्वामाप पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥

भावार्थः—हे (इन्द्र) राजन् ! वा ईश्वर ! वा भौतिकेन्द्रदेव ! (तव) तेरे (पौंस्यम्) पुरुषार्थ और (श्रवः) यश को (द्यौः) द्युलोक और (पृथिवी) पृथिवी लोक (वर्धति) बढ़ाता है (त्वाम्) तुझ को (आपः) नदी समुद्रादि के जल (च) और (पर्वतासः) पर्वत (हिन्विरे) प्रसन्न करते हैं—स्वामिभाव से प्राप्त होते हैं ॥ ऋग्वेद ८ । १५ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१र २र३१र २र ३ १ २ ३ १२
(१६४५) त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
१र २र ३ २ ३ १ २
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥ [११]

भापार्थः—पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति लाकर हे इन्द्र ! (विष्णुः, मित्र, वरुणः) विष्णुनामक, मित्रसंज्ञक और वरुणाख्य देव जो वायुभेद हैं (बृहत्) महान् (क्षयः) प्राणियों के निवास का हेतु (त्वाम्) तुझ इन्द्र की (गृणाति) प्रशंसा करता है (मारुतम्) मरुद्गणों का (शर्धः) बल भी (त्वाम्) तेरे (अनु) पीछे (मदति) हृष्टि करता है ॥ ऋग्वेद ८ । १५ । ९ में भी ॥ ३ ॥

इति सप्तदशाऽध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थे खण्डे प्रथम तृचस्य—विरूपऋषिः । अग्निर्देवता ।
गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६४६) नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।
१ २ ३ १ २
अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (११) में हो गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१६४७) कुवित्सु नो गविष्टयेग्ने संवेषिषोरयिम् ।
१ २ ३ १ २
उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ २ ॥

भापार्थः—(अग्ने) हे अग्ने ! (नः) हमारे लिये (गविष्टये) गौवें ढूंढने को (कुवित्) बहुत (रयिम्) धन को (सु—सं—वेषिषः) भले प्रकार परोसते पहुंचाते हो सो तुम (उरुकृत्) बाहुल्य करने वाले (नः) हमारे लिये भी (उरु) बाहुल्य (कृधि) करो ॥ यजुः ५ । ४१ तथा ऋग्वेद ८ । ७५ । ११ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३१र २र ३ १ २
(१६४८) मा नो अग्ने महाधने परावर्ग्भारभृद्यथा।
३ २३ २ ३ १ २
सं वर्गं सं रयिं जय ॥ ३ ॥ [१२]

भावार्थः—(अग्ने) हे अग्ने ! (नः) हम को (महाधने) संग्राम के बीच में (मा) मत (परावर्क्) छोड़ें (यथा) जैसे (भारभृत्) भार ले चलने वाला भार को निर्दिष्ट स्थान से बीच में ही नहीं छोड़ देता तद्वत्। (वर्गम्) शत्रुसमूह को (सं—जय) भले प्रकार जीत और (रयिम्) धन को (सम्) भले प्रकार जीत ॥ ऋग्वेद ८। ७५। १२ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—वत्सऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१२ ३ २३ २३ १ २ ३१२
(१६४९) समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः।
३ १ २३ १ २
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१३७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६५०) वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना।
१ २ ३ १ २
वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥

भावार्थः—प्रकरण से इन्द्र=विद्युत् रूप वृष्टिदेव (दोधतः) गर्जने से जगत् को कम्पाने वाले (वृत्रस्य) मेघमण्डल के (शिरः) उच्चभागरूप शिर को (वृष्णिना) वृष्टिकारक (शतपर्वणा) बहुत धार वाले (वज्रेण) प्रहार से (वि-चित्-विभेद) अनेक प्रकार भी छिन्न भिन्न करता है ॥

ऋग्वेद ८। ६। ६ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
(१६५१) ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्त्तयत्।

२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ३ ॥ [१३]

भावार्थः—(इन्द्रः) इन्द्रदेव (यत्) जिस बल से (उभे) दोनों लोक (रोदसी) द्यौ और पृथिवी को (समवर्त्तयत्) मसलता है, (चर्मेव) जैसे चमड़े को मसलते हैं, (तत्) वह (अस्य) इस इन्द्र का (ओजः) बल (तित्विषे) चमक रहा है ॥ ऋग्वेद ८। ६। ५ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीय तृचस्य—शुनः शेपऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६५२) सुन्मना वस्वी रन्ती सूनरी ॥ १ ॥

भावार्थः—(सुमन्मा) सुन्दर ज्ञानवती (वस्वी) धनवती (रन्ती) रमणीय (सूनरी) सूनृता सच्ची वाणी प्रवृत्त हुई यह अध्याहार शेष है ॥ यह एकपदा गायत्री छन्द है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
(१६५३) सरूप वृषन्नागहीमौ भद्रौ धुर्यावभि ।
२ ३ १र २र
ताविमाउपसर्पतः ॥ २ ॥

भावार्थः—(सरूप) हे प्रत्येक वस्तु में समानरूप से वर्तमान। (वृषन्) वर्षाकारक ! सूर्य ! (इमौ) इन (भद्रौ) सुखदायक (धुर्यौ) धुरे में जुड़ने योग्य घोड़ों के समान सीधी और तिरछी किरणों को (अभि) व्यापकर, (आगहि) प्राप्त हो (तौ) वे (इमौ) ये दोनों प्रकार की किरणें (उप सर्पतः) पास जाती हैं ॥

सीधी तिरछी के भेद से दो प्रकार की किरणें सूर्य से सङ्गत हैं, उन दोनों से सूर्य की धूप हमें प्राप्त होती रहे, यह भाव है ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१६५४) नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्ये आपस्य तिष्ठति ।

१ २ ३ १ २ ३ २
शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥ ३ ॥ [१४]

इति अष्टमप्रपाठकस्य-प्रथमाऽर्धः ॥

भाषार्थः—हे मनुष्यो ! (दशभिः) दश (शृङ्गेभिः) अङ्गुलियों से (दिशन्) बताता हुवा (इव) सा, सूर्य इन्द्र (आपस्य) जल भरे आकाश के (मध्ये) बीच में (तिष्ठति) स्थित है, सो तुम (शीर्षाणि) शिर ढकने के छत्रों को (निमृढ्वम्) रचलो ॥ ३ ॥

इति सप्तदशाऽध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

इति श्रीमत्कण्ववंशावतंस श्रीमान् पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र परीक्षितगढ़ (ज़िला-मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में सत्रहवां अध्याय समाप्त हुवा ॥ १७ ॥

ओ३म्

अथाऽष्टादशोऽध्यायः

तत्र प्रथमे खण्डे

प्रथमसूक्तस्य—मेधातिथिराङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६५५) पन्यं पन्यमित्स्तोतार आधावत मद्याय ।
१ २ ३ २ ३ १ २
सोमं वीराय शूराय ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१२३) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २र ३१र २ ३ १ २ ३ १ २
(१६५६) एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
१ २ ३ १र २र
इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥ २ ॥ [१]

भावार्थः—(ब्रह्मयुजा) परमेश्वर के जोते हुवे (शग्मा) सुखदायक (हरी) दो घोड़ों के समान दो प्रकार के सूर्यकिरण (गिर्वणसम्) वेदमन्त्रप्रतिपादनानुकूलवर्त्ती (सखायम्) हितकारी (इन्द्रम्) देवराज इन्द्र को (गीर्भिः) वेदमन्त्रों से (इह) यहां यज्ञ में (आ—वक्षत) बुलावें ॥

सूर्य की सीधी तिरछी दो प्रकार की किरणें जो सूर्य के घोड़े हैं सूर्य को हमारे किये यज्ञ तक पहुंचाती हैं जो कि वेदमन्त्रों में वैसा वर्णन है, अतः उन मन्त्रों को यज्ञ में उस समय पढ़ा जाता है और इन्द्र=सूर्य उन वेदवाणियों का संविभागपूर्वक सेवक=अनुकूलवर्त्ती है । ऋ० ८ । २ । २७ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ २र ३ २

(१६५७) पाता वृत्रहा सुतमा घागमन्नारे अस्मत् ।

१ २ ३ १ २

नियमते शतमूतिः ॥ ३ ॥

भावार्थः—(सुतम्) अभिषुत सोम को (पाता) पीने वाला (वृत्रहा) मेघ का मारने गिराने वाला (शतमूतिः) असंख्य प्रकार रक्षा वाला इन्द्र (अस्मत्) हम से (आरे) दूर (घ) ही (न) न (आ—गमत्) आवे किन्तु समीप आवे (नियमते) और नियम में रक्खे ॥ ऋ० ८ । २ । २६ में भी ॥३॥

अथ द्वितीयतृचस्य—सुकक्षः श्रुतकक्षोवर्षिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१६५८) आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।

२उ ३ १ २

न त्वामिन्द्राऽतिरिच्यते ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१९७) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

(१६५९) विव्यक्थ महिना वृषन् भक्षं सोमस्य जागृवे ।

१ २ ३ १ २

य इन्द्र जठरेषु ते ॥ २ ॥

भावार्थः—(वृषन्) हे वृष्टिकर ! (जागृवे) जागरूक ! (इन्द्र) इन्द्र ! तू (महिना) बड़प्पन से (सोमस्य) सोम के (भक्षम्) भोजन को (विव्यक्थ) सर्वतः व्याप कर वर्त्तमान है (यः) जो सोम (ते) तेरे (जठरेषु) उदरों में है ॥ ऋग्वेद ८ । ९२ । २३ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ १ १ २ ३ १ २

(१६६०) अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।

२ ३ १ २ ३ १ २
अरं धामस्य इन्दवः ॥ ३ ॥ [२]

भाषार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते) तेरी (कुक्षये) कुक्षि वा पेट के लिये (सोमः) सोमरस (अरम्) पर्याप्त (भवतु) हो, (वृत्रहन्) हे मेघनाशक ! (इन्दवः) सोम (धामभ्यः) तीनों लोकों के लिये (अरम्) पर्याप्त हों ॥ ऋग्वेद ८ । ९२ । २४ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—शुनःशेपऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ १ २
(१६६१) जराबोध तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय ।
१ २ ३ १ २ ३ २
स्तोमꣳरुद्राय दृशीकम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१५) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(१६६२) स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः ।
३ १२ २र
धिये वाजाय हिन्वतु ॥ २ ॥

भाषार्थः—(महान्) गुणों में बड़ा (अनिमानः) जो तोला नहीं जा सका (धूमकेतुः) धुवां जिस की ध्वजा है (पुरुश्चन्द्रः) बहुत आह्लादकारक (सः) वह अग्नि (धिये) बुद्धि और (वाजाय) बल के लिये (नः) हम को (हिन्वतु) उभारे=प्रेरित करे ॥ ऋ० १ । २७ । ११ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
(१६६३) स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥ ३ ॥ [३]

भावार्थः—(रेवान्) धनवान् (इव) सा (विश्पतिः) प्रजापालक (दैव्यः केतुः) देवतों का ध्वजा वा दूत के समान व्यापक (बृहद्भानुः) बड़ी भारी तेज़ किरणों वाला (सः) वह (अग्निः) अग्नि (नः) हमारे (उक्थैः) स्तोत्रों को (शृणोतु) सुने=स्वीकारे ॥

यद्यपि जड़ अग्नि में श्रवण नहीं हो सक्ता, परन्तु वैदिक गुणवर्णन (स्तुति) के समान अग्नि की अनुकूलता होना ही श्रवण समझना चाहिये ॥ ऋग्वेद १ । २७ । १२ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थे तृचस्य—शंयुर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
(१६६४) तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
२उ ३ २ ३ १ २
शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (११५) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१६६५) न घा वसुर्नियमते दानं वाजस्य गोमतः ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
यत्सीमुपश्रवद्गिरः ॥ २ ॥

भावार्थः—(वसुः) ८ वसुओं में एक इन्द्र=सूर्य (गोमतः) इन्द्रियों को जगाने की शक्तिवाले (वाजस्य) बल के (दानम्) दान को (न घ) नहीं (नियमते) रोकता (यत् सीम्) जब कि (गिरः) वेदमन्त्रोक्त स्तुतियों को (उपश्रवत्) स्वीकार करे ॥

जब कि सूर्य हमारी चाही बातों के अनुकूलवर्ती हो तो वह सब इन्द्रियों की शक्ति रूप बल प्रदान में कमी नहीं करता ॥ ऋ० ६ । ४५ । २३ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ २उ ३ १र २र ३ १र २र
(१६६६) कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहाऽगमत् ।

१ २ ३ १ २
शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ॥ [४]

भावार्थः—(कुविल्लस्य) बहुत हिंसा करने वाले अयाज्ञिक पुरुष के (गोमन्तम्) गौवों भरे (व्रजम्) खरक को (दस्युहा) दुष्टशत्रुविनाशक इन्द्र (हि) निश्चय (प्रागमत्) प्रकर्ष से जावे और (शचीभिः) प्रजा वा बुद्धियों को (अप वरत्) रोक देवे ॥

जो पौराणिक मानते हैं कि १४ इन्द्र के समय तक एक इन्द्राणी रहती है, उन को इस मन्त्र के शचीभिः इस बहुवचन से विरोध आता है ॥

ऋग्वेद ६ । ४५ । २४ में भी ॥ ३ ॥

इत्यष्टादशाऽध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीये खण्डे

षड्ऋचस्य प्रथम सूक्तस्य—मेधातिथिः । काण्वऋषिः । विष्णुर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २उ ३ २ ३ १र २र ३ २
(१६६७) इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
१ २ ३ २
समूढमस्य पांसुले ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (२२२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
(१६६८) त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अतो धर्माणि धारयन् ॥ २ ॥

भावार्थः—(अदाभ्यः) जो किसी से मारा नहीं जा सकता, (गोपाः) जो सब लोक लोकान्तरों का रक्षक है, उस (विष्णुः) व्यापक ईश्वर ने (त्रीणि) तीन (पदा) स्थानों=तीनों लोकों को (विचक्रमे) विक्रान्त

किया हुवा है (अतः) इस कारण (धर्माणि) अग्निहोत्रादि धर्म कर्मों को वेद द्वारा (धारयन्) पोषण करा रहा है ॥ ऋग्वेद १ । २२ । १८ में तथा यजुर्वेद ३४ । ४३ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१६६९) विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! (विष्णोः) व्यापक अदृश्य भी परमेश्वर के (कर्माणि) कर्मों को (पश्यत) देखो (यतः) जिन कर्मों की सहायता से (व्रतानि) मनुष्य धर्मकर्मों को (पस्पशे) अनुष्ठान की रीति से करता है वह विष्णु (इन्द्रस्य) जीवात्मा का (युज्यः) योग्य (सखा) हितकारी मित्र है ॥

ऋग्वेद १ । २२ । १९ में और यजुः ६—४ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

१र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २
(१६७०) तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—(सूरयः) विद्वान् ज्ञानी लोग (विष्णोः) विष्णु व्यापक अदृश्य परमात्मा के भी (तत्) उस (परमम्) अति सूक्ष्मतम (पदम्) स्वरूप को [जिस स्वरूप से उस ने तीनों लोकों को व्याप रक्खा है] (सदा) सदा (पश्यन्ति) देखते हैं अनुभव करते हैं (इव) जैसे (आततम्) पसारी हुई (चक्षुः) आंख (दिवि) आकाश में सब कुछ देखने योग्य दृश्य को देखती है तद्वत् ॥

अर्थात् जैसे हमारी आंख दृश्य पदार्थों को साक्षात् देखती हैं वैसे ही ज्ञानियों के आत्मा अदृश्य परमात्मा के स्वरूप का भी साक्षात् अनुभव करते हैं । इस में आंख का दृष्टान्त ही दार्ष्टान्त की भिन्नता प्रतिपादन करके परमेश्वर के स्वरूप की अतीन्द्रियता वा अदृश्यता का बोध कराता है । इस दशा में वामनाऽवतार की शङ्का मात्र को भी अवकाश नहीं है ॥

ऋग्वेद १ । २२ । २० में तथा यजुः ६—५ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१६७१) तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाꣳसः समिन्धते ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—(यत्) जो पूर्वोक्त (विष्णोः) विष्णु का (परमम्) सूक्ष्मतम (पदम्) स्वरूप है (तत्) उस को (विप्रासः) ऋतंभरा प्रज्ञा वाले (विपन्यवः) विशेष करके स्तुतिपूर्वक भजन में तत्पर (जागृवांसः) स्तुति के शब्द और अर्थ ज्ञान में प्रमाद न करके जागने वाले योगी जन (समिन्धते) दूसरों के लिये प्रकाश करते=उपदेश द्वारा जताते हैं ॥

इस में भी अयोगिगम्य न होने, योगिगम्य होने और योगियों द्वारा अन्यों के प्रति जताने योग्य विष्णुपद का वर्णन अवतारवाद का विरोध करता है । अवतारवादानुसार तो विष्णुपद आंख का विषय ही कहा जाता, जिस का मन्त्र से विरोध है ॥ ऋ० १ । २२ । २१ यजुः ३४ । ४४ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(१६७२) अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
३ २उ ३ १ २
पृथिव्या अधि सानवि ॥ ६ ॥ [५]

भावार्थः—(विष्णुः) परमेश्वर ने (यत्) जिस कारण (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (सानवि) उच्च प्रदेश में भी (विचक्रमे) विशेष करके व्याप्त किया हुवा है (अतः) इस कारण परमेश्वराऽधिष्ठितता से (देवाः) पृथिवी आदि लोकलोकान्तर (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥

ऋग्वेद १ । २२ । १६ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ६ ॥

अथ प्रगाथस्य द्वितीय सूक्तस्य—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १र २र ३ १ २
(१६७३) मो षु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्निरीरमन् । आरात्ताद्वा

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२
सधमादं न आगहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (२८४) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १२ २२ ३ १ २ ३२उ ३ २ ३ २उ ३ १ २
(१६७४) इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमादधुः ॥२॥ [६]

भावार्थः—हे इन्द्र ! (इमे) ये (ब्रह्मकृतः) वेदोक्त कर्मकाण्डी(जरितारः) स्तोता आदि ऋत्विज् लोग (वसूयवः) धान्यादि धन चाहते हुवे (ते) तेरे लिये (सुते) सोम अभिषुत होजाने पर (हि) ही (सचा) साथ (आसते) बैठते हैं (न) जैसे (मधौ) शहद के निमित्त (मक्षः) मक्खियें (इन्द्रे) तुझ इन्द्र आश्रय में (कामम्) अपनी कामना को (आदधुः) समर्पित कर देते हैं (न) जैसे (रथे) रथ में (पादम्) पांव रखते हैं ॥

ऋग्वेद ७ । ३२ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ प्रगाथस्य तृतीयसूक्तस्य—श्रुतः काण्वऋषिः । इन्द्रो देवता
विराड्बृहती, निचृत्पङ्क्तिश्चेति क्रमेण छन्दसी ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १२ २२
(१६७५) अस्तावि मन्म पूर्व्यं, ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत, स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! (इन्द्राय) वृष्टिकारक वायुभेद के लिये (पूर्व्यम्) सनातन (मन्म) मननयोग्य (ब्रह्म) वेदमन्त्र को (वोचत) बोलो (अस्तावि) इस से उस की स्तुति होती है (ऋतस्य) सत्य वेद की (पूर्वीः) सनातन (बृहतीः) बृहतीछन्द की ऋचाओं को (अनूषत) स्तुत करो=पढ़ो। इस से (स्तोतुः) तुम में से स्तुति करने वाले की (मेधाः) धारणावती बुद्धियें (असृक्षत) इन्द्र से रची जाती हैं ॥ ऋ० ८ । ५२ । ८ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ
(१६७६) समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत—सं क्षोणीः
३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
समु सूर्यम् । सꣳ शुक्रासः शुचयः सं
२र ३ २ ३ १ २
गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥२॥ [७]

भावार्थः—(इन्द्रः) वृष्टि का हेतु वायुदेव (बृहतीः) बहुत (रायः) धान्यादि धनों को (सम्—अधूनुत) भले प्रकार प्राप्त करावे (क्षोणीः) भूमियों वा खेतों को (सम्) भले प्रकार प्राप्त करावे (उ) और (सूर्यम्) सूर्य के प्रकाश को (सम्) भले प्रकार प्राप्त करावे (शुचयः) पवित्र निर्मल (शुक्रासः) वीर्यकारक पदार्थ (सम्) भले प्रकार प्राप्त करावें (गवाशिरः) दुग्ध घृतादि गौ के पदार्थों सहित (सोमाः) सोमरस (इन्द्रम्) इन्द्रदेव को (सम—अमन्दिषुः) भले प्रकार हृष्टपुष्ट करते हैं ॥ ऋ० ८ । ५२ । १० में भी ॥२॥

अथ तृतीय तृचसूक्तस्य—अम्बरीष ऋजिश्वा वा ऋषिः । सोमोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ १ ३ १र २र
(१६७७) इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परिषिच्यसे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१३३१) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६७८) तꣳ सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अश्याम वाजगन्ध्यꣳ सनेम वाजपस्त्यम् ॥२॥

भावार्थः—(सूरयः) हे विद्वानो ! (सखायः) मित्रो ! (पुरूरुचम्) बहुत दीप्तिमान् (वाजगन्ध्यम्) बलदायक सुगन्धयुक्त (वाजपस्त्यम्) बल-

दायक गृहयुक्त (तम्) उस सोम को (यूयम्) तुम (च) और (वयम्) हम सब (अश्याम) पीवें (सनेम) संभजन करें ॥ भाव यह है कि सोम से होम और पीने से बल अन्न गृहादि सुख होते हैं ॥ ऋ० ९ । ९८ । १२ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ २
(१६७९) परि त्यꣳ हर्यतꣳ हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण । यो
३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
देवान् विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ ३॥ [८]

इस की व्याख्या (५५२) में होगई है ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथस्य—पञ्चमसूक्तस्य—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २र ३ १ २र ३ १ २र
(१६८०) कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति । श्रद्धा हि ते
३ १ २ ३ २ ३ १ २र
मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजꣳ सिषासति ॥१॥

इस की व्याख्या (२८०) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २ ३ १र २र २ ३
(१६८१) मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु । तव
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥२॥ [९]

भाषार्थः—(हर्यश्व) हे हरणशीलव्याप्तिवाले इन्द्र परमेश्वर! (ये) जो लोग (प्रिया) प्यारे (वसु) धनों को (ददति) दान करते हैं, उन (मघोनः) धनवान् यजमानों को (वृत्रहत्येषु) दुष्टजन्तुविनाशक यज्ञों में (चोदय) प्रेरित करो, और हम (तव) तुम्हारे (प्रणीती) प्रणीत वेद से (सूरिभिः) विद्वानों के सङ्गपूर्वक उन के साथ (विश्वा) सब (दुरिता) पापों को (तरेम-स्म) पार हो जावें ॥ ऋग्वेद ७ । ३२ । १५ में भी ॥ २ ॥

इत्यष्टादशाऽध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ तृतीये खण्डे

प्रथम तृचस्य—विश्वमना ऋषिः इन्द्रो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६८२) एदु मधोर्मदिन्तरꣳ सिञ्चाऽध्वर्यो अन्धसः ।
१ २उ ३ १र २र ३ १ २
एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥ २ ॥

इस की व्याख्या (३८५) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६८३) इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उदानꣳश शवसा न भन्दना ॥ २ ॥

भावार्थः—हे (हरीणाम् स्थातः) सूर्यकिरणादि तेजों को स्थापक ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (ते) तुम्हारी (पूर्व्यस्तुतिम्) सनातन वेदोक्त स्तुति को, कोई (नकिः) नहीं (उदानंश) पाता (शवसा) न तो बल से और (न) न (भन्दना) तेज से ॥

निघण्टु १ । १६ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८ । २४ । १७ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६८४) तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ३ ॥ [१०]

भावार्थः—(श्रवस्यवः) यश वा अन्न चाहने वाले हम (वाजानाम्) बलों वा अन्नों के (पतिम्) पालक वा स्वामी, (अप्रायुभिः) निरन्तर होने वाले (यज्ञेभिः) यज्ञों से (वावृधेन्यम्) हम को बहुत बढ़ाने वाले (तम्) उस (वः) तुम परमेश्वर इन्द्र को (अहूमहि) पुकारते हैं ॥

ऋग्वेद ८ । २४ । १८ में भी ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथस्य द्वितीयसूक्तस्य-सौभरिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक्, विराट् पङ्क्तिश्च छन्दसी ॥

तत्र प्रथमा-

१ २ ३क ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६८५) तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।
३ २ ३ १ २
देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१०९) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया-

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६८६) विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व
३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
यन्तुरम् । अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेम-
३ १ २ ३ २
ध्वराय पूर्व्यम् ॥ २ ॥ [११]

भाषार्थः-(सोभरे) हे भले प्रकार से भरण करने वाले (विप्र) ब्राह्मण ! विद्वन् ! तू (अस्य) इस (सोम्यस्य) सोमरस से साध्य (मेधस्य) यज्ञ के (यन्तुरम्) ले जाने वाले, (विभूतरातिम्) बड़े दाता (चित्रशोचिषम्) विचित्रप्रकाशवान्, (पूर्व्यम्) सनातन (ईम्) इस (अग्निम्) अग्नि वा परमेश्वर को (अध्वराय) यज्ञ के लिये (प्र ईडिष्व) प्रकर्ष से स्तुत कर॥

ऋग्वेद ८ । १९ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ प्रगाथस्य तृतीयसूक्तस्य-अग्निर्ऋषिः । सोमोदेवता । उष्णिक् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा-

१ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
(१६८७) आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया
२ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥१॥

इस की व्याख्या (५१३) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १र २र ३क २र ३ २उ ३ १
(१६८८) स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
वाजयुः । अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः
२ ३ १ २ ३ १ २
सोमोविप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥ २ ॥ [१२]

भावार्थः—(वाजयुः) बल चाहने वाले (मीढ्वान्) सांड (सप्तिः) घोड़े के (न) समान वीर्यवान् (अनुमाद्यः) हर्षकारक (सः) वह (पवमानः) सोमरस, (मनीषिभिः) मेधावी (विप्रेभिः) ब्राह्मण (ऋक्वभिः) ऋत्विजों से, (अण्वानि) सूक्ष्म=बारीक (मेष्यः) मेषरोम से बने दशापवित्रों को (तिरः) तिरछा करता हुवा (मामृजे) शोधा=छाना जाता है ॥

ऋग्वेद ९ । १०६ । ११ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ प्रगाथस्य चतुर्थसूक्तस्य—कलिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । पादनिचृद् बृहती, निचृत्पङ्क्तिश्च क्रमेण छन्दसी ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
(१६८९) वयमेनमिदाह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
१ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (२७२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१६९०) वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
२उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आगहीन्द्र प्र चित्रया धिया २ [१३]

भावार्थः—(अस्य) इस परमेश्वर के (वयुनेषु) प्रज्ञानों में (उरामथिः) हृदयदुःखदायक (वारणः) मार्ग रोकने वाला लुटेरा (वृकः) चोर (चित्) भी (आ—भूषति) सीधा हो जाता है (सः) वह सर्वशक्तिमान् (इन्द्र) परमेश्वर ।

तू (नः) हमारे (इमम्) इस (स्तोमम्) स्तोत्र को (जुजुषाणः) स्वीकृत करता हुवा (चित्रया) विचित्र (धिया) बुद्धि वा कर्म से (आगहि) प्राप्त हो ॥

क्रूरकर्मी चोर डाकू लुटेरे भी जिस परमेश्वर के सामने सीधे होकर निजकर्मफल भोग में परतन्त्र हो जाते हैं, वह सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर हमारी पुकार सुने और हम को विचित्र बुद्धि वा कर्म करने का पुरुषार्थ देवे ॥

ऋग्वेद ८ । ६६ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ पञ्चमस्य तृचसूक्तस्य—विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
(१६९१) इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः ।
१ २ ३ २ ३क २र
तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(दिवः) आकाश के (रोचना) प्रकाशक (इन्द्राग्नी) बिजुली और अग्नि ! (वाजेषु) बलों वा संग्रामों में (परिभूषथः) सब को हरा सकते हो और पराजित करते हो, (तत्) इस बात को (वाम्) तुम्हारा (वीर्यम्) बल वीर्य (प्र—चेति) उत्कृष्टता से बतलाता है ॥

ऋग्वेद ३ । १२ । ९ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(१६९२) इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः ।
३ १ २ ३ २ १ २
ऋतस्य पथ्या अनु ॥ २ ॥

इस की व्याख्या (१५७५) में हो चुकी है ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१६९३) इन्द्राग्नी तविषाणि वाᳬसधस्थानि प्रयाᳬसि च ।
३ २ ३ १ २ ३ २
युवोरप्तूर्यᳬहितम् ॥ ३ ॥ [१४]

इस की व्याख्या (१५७६) में हो चुकी है ॥ ३ ॥

अथ षष्ठस्य—मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १र २र
(१६९४) कईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयोदधे ।
३ १र २र ३१र २र ३ २ ३ १ २
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः१

इस की व्याख्या (२९७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१६९५) दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
नकिष्ट्वा नियमदासुते गमो महाँश्चरस्योजसा ॥ २ ॥

भावार्थः—(न) जैसे (मृगः) वनचर (वारणः) हाथी (पुरुत्रा) बहुत स्थलों पर (चरथम्) चरणशील (दाना) निज मद को (दधे) धारण करता फिरता है, वैसे ही (ओजसा) बल से (महान्) महान् इन्द्र भी (चरसि) विचरता है (त्वा) उस को (न किः) कोई नहीं (नियमत्) निगृहीत करता, वह (सुते) सोम अभिषुत होने पर (आगमः) हमें प्राप्त हुवे ॥

जैसे जङ्गली हाथी मदमाता निरङ्कुश स्वेच्छाचारी मद चुवाता घूमता है, उसे कोई निगृहीत नहीं करता, इसी प्रकार बल से अति बली इन्द्र जो वायु विशेष वर्षा करता हुवा स्वतन्त्र घूमता है, हम चाहते हैं कि हमारे सोमयज्ञ में प्राप्त होकर वह सोमाहुति ग्रहण करे ॥ ऋ० ८ । ३३ । ८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
(१६९६) य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्यागमत्३[१५]

भावार्थः—(यः) जो (उग्रः) उद्गीर्ण बल वाला (अनिष्टृतः) मेघरूपी शत्रुओं से न पार पाया (सन्) हुवा (रणाय) मेघों से युद्ध के लिये (संस्कृतः)

समृद्ध और (स्थिरः) दृढ़ होता है, वह (मघवा) यज्ञभागग्राही (इन्द्रः) इन्द्र (यदि) यदि (स्तोतुः) स्तुति प्रशंसा करने वाले की (हवम्) पुकार को (शृणवत्) सुने अर्थात् स्तुति के अनुकूलवर्त्ती हो जावे तौ (न) नहीं (योषति) जावे, किन्तु (आगमत्) आवे ॥

ऋग्वेद ८ । ३३ । ९ में भी यही पाठ है, परन्तु मूल में स्पष्ट शृणवत् पाठ देखते लिखते हुवे भी पं० ज्वालाप्रसाद भाष्यकार ने कलकत्ता एशियाटिक सोसाइटी के छपे पुस्तकस्थ सायणभाष्य में अशुद्ध छपे शृणवन् पाठ को ही उद्धृत कर लिया है ॥ ३ ॥

इत्यष्टादशाऽध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थे खण्डे प्रथमतृचस्य—निध्रुविर्ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१६९७) पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः ।
३ १र २र ३ १ २
अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥

भाषार्थः—(शुक्रासः) शुक्र=वीर्य वाले (इन्दवः) गीले वा तर (पवमानाः) शोधे हुवे (सोमाः) सोम (विश्वानि) सब (काव्या) काव्यों=वेदवचनों को (अभि) आनुकूल्य करके (असृक्षत) अग्नि में छोड़े जाते हैं ॥

ऋग्वेद ९ । ६३ । २५ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २उ ३ १ २
(१६९८) पवमाना दिवस्पर्य्यन्तरिक्षादसृक्षत ।
३ २उ ३ १ २
पृथिव्या अधि सानवि ॥ २ ॥

भाषार्थः—(पवमानाः) सोम (दिवः) प्रकाशमान (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (परि) सब ओर (पृथिव्याः) भूमि से (अधि) ऊपर (सानवि) पर्वतों के शिखर पर (असृक्षत) वर्षते हैं, मेघ के साथ ॥

ऋग्वेद ९ । ६३ । २६ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
(१६९९) पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥ [१६]

भावार्थः—(आशवः) वेगवान् (शुभ्राः) श्वेतवर्ण शुभ्र उज्ज्वल (पवमानासः) शोध्यमान (इन्दवः) सोम (विश्वाः) सब (द्विषः) हानिकारकों को (अप-घ्नतः) नाशते हुवे (असृग्रम्) अग्नि में छोड़े होमे जाते हैं ॥ ऋग्वेद ९ । ६३ । २७ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—विश्वामित्रऋषिः । इन्द्राग्नीदेवते । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१७००) तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानाऽपराजिता ।
२ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ १ ॥

भावार्थः—(तोशा) दुष्टों के बाधक (वृत्रहणा) पाप के नाशक (सजित्वाना) समान जयशील (अपराजिता) न हारने वाले (वाजसातमा) अन्न वा बल के अत्यन्त देने वाले (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि को (हुवे) होम वा तदर्थ आह्वान करता हूं ॥ ऋग्वेद ३ । १२ । ४ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१७०१) प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी इष आवृणे ॥ २ ॥

इस की व्याख्या (१५९३) में होगई है ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २र ३ १ २
(१७०२) इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।

३ १ २र३ १ २
साकमेकेन कर्मणा ॥ ३ ॥ [१७]

इस की व्याख्या (१५७४) में होगई है ॥ १ ॥

अथ तृतीय तृचस्य—भरद्वाजऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(१७०३) उप त्वा रणवसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।
१ २ ३. २ ३ १ २
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ १ ॥

भावार्थः—(सहस्कृत) बल से मथकर उत्पन्न किये हुवे (अग्ने) हे अग्ने ! (रणव—संदृशम्) रमणीय दर्शनीय (त्वा) तेरे प्रति (प्रयस्वन्तः) हव्यरूप अन्न वाले हम यजमान (गिरः) वेदमन्त्रों को (उप ससृज्महे) वेदी के समीप बैठ कर उच्चारण करते हैं ॥ ऋग्वेद ६ । १६ । ३७ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१७०४) उप छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
२ ३ १ २
अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥ २ ॥

भावार्थः—(अग्ने) हे पावक ! (हिरण्यसंदृशः) सुवर्णतुल्य तेज वाले (घृणेः) प्रदीप्त (ते) तेरे (शर्म) सुख को (वयम्) हम यजमान लोग (उप—अगन्म) उपासित करें=भोगें । दृष्टान्त—(छायामिव) जैसे सन्तप्त लोग छाया के पास जाते हैं, तद्वत् ॥ ऋग्वेद ६ । १६ । ३८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१७०५) य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३ ॥ [१८]

भावार्थः—(अग्ने) पावक ! तू (पुरः) आगे आये हुवे दुष्ट जन्तु वा अन्य जो हो उस को (रुरोजिथ) भग्न और भस्म कर देता है । (यः) जो तू (शर्यहा) शलों के नाशक (उग्रः) उद्गीर्णबल धनुर्धारी (इव) सा, और (तिग्मशृङ्गः) तीक्ष्णशृङ्ग वाले (वंसगः) बैल (न) सा, वर्त्तमान है, कि जिस के सामने कोई ठहर नहीं सकता ॥ ऋ० ६ । १६ । ३९ में भी ॥३॥

अथ पञ्चमतृचस्य—भरद्वाजऋषिः । वैश्वानरोऽग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१७०६) ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।
१ २ ३ १ २
अजस्रं घर्ममीमहे ॥ १ ॥

भावार्थः—(ऋतावानम्) यज्ञवान् (वैश्वानरम्) सब के नेता (ऋतस्य) सच्चे (ज्योतिषः) तेज के (पतिम्) स्वामी (अजस्रम्) निरन्तर (घर्मम्) गर्म अग्नि को (ईमहे) हम चाहते हैं ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २
(१७०७) य इदं प्रति पप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन् ।
३ २ १ २र ३ २
ऋतूनुत्सृजते वशी ॥ २ ॥

भावार्थः—(यः) जो अग्नि (इदम्) इस (स्व) आकाश को (उत्तिरन्) तिरता हुवा (प्रति पप्रथे) सब ओर फैलता है और (वशी) बल से वश करने वाला (ऋतून्) वसन्तादि ऋतुओं को (उत्सृजते) उत्तम बनाता है । अर्थात् उस २ ऋतु में अग्न्याधान करने से अग्नि उस २ ऋतु को सुधारता है । यही अभिप्राय सायणाचार्य निकालते हैं ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१७०८) अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।

३ २उ ३ १ २
सम्राडेको वि राजति ॥ ३ ॥ [१९]

भावार्थः—(भूतस्य) पूर्वकालस्थ और (भव्यस्य) भविष्यत् प्राणी अप्राणियों का (कामः) चाहा हुवा (सम्राट्) सम्यक् प्रकाशमान (एकः) अद्वितीय (अग्निः) अग्नि (प्रियेषु) प्यारे (धामसु) तीनों लोकों में (वि राजति) विराजता है ॥ ३ ॥

इत्यष्टादशाऽध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

इत्यष्टमस्य द्वितीयोऽर्धप्रपाठकः

इति श्रीमत्कण्ववंशावतंस श्रीमान् पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र परीक्षितगढ़ (ज़िला—मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में अठरहवां अध्याय समाप्त हुवा ॥ १८ ॥

ओ३म्

अथैकोनविंशोऽध्यायः

तत्र प्रथमे खण्डे

प्रथम तृचस्य—विरूपऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३२३ १ २ ३ १ २ ३ २ २
(१७०९) अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वाᳬ३स्वाम् ।
३ १र २र
कविर्विप्रेण वावृधे ॥ १ ॥

भावार्थः—(कविः) क्रान्तकर्मा (अग्निः) अग्नि (प्रत्नेन) पुराणे (जन्मना) जन्म से=सनातन स्वरूप से (स्वाम्) अपने (तन्वम्) तेजः स्वरूप को (शुम्भानः) शोभित करता हुवा (विप्रेण) ब्राह्मण ऋत्विज् से (वावृधे) बढ़ाया जाता ॥ ऋ० ८ । ४४ । १२ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र३ १२३ १ २३१२
(१७१०) ऊर्जो नपातमाहुवेऽग्निं पावकशोचिषम् ।
३ २ ३१ २ ३२
अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥ २ ॥

भावार्थः—(ऊर्जोनपातम्) बल को न गिराने वाले बलरक्षक बलवर्धक बलवान् (पावकशोचिषम्) शुद्धिकारक लपटों वा तेजों वाले (अग्निम्) अग्नि को (अस्मिन्) इस (स्वध्वरे) शोभन और हिंसारहित (यज्ञे) यज्ञ में (आहुवे) बुलाता=आधान करता हूं ॥ ऋ० ८ । ४४ । १३ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १र २र ३१३ ३ १ २
(१७११) स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा ।

३१र २र ३ १ २
देवैरासत्सि बर्हिषि ॥ ३ ॥ [१]

भावार्थः—(अग्ने) हे अग्ने ! (सः) वह (त्वम्) तू (मित्रमहः) मित्रों से सत्कार पाने योग्य (शुक्रेण) शुद्ध (तेजसा) तेज से (नः) हमारे (बर्हिषि) यज्ञ में (देवैः) अन्य देवों वायु आदि के सहित (आसत्सि) विराजमान होता है ॥ ऋग्वेद ८ । ४४ । १४ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयसूक्तस्य चतुर्ऋचस्य—अवत्सारऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः

तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१७१२) उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षोभिन्दन्तो अद्रिवः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥

भावार्थः—(अद्रिवः) हे मेघ वाले ! सोम ! (ते) तेरे (शुष्मासः) वेग (रक्षः) दुष्ट प्राणी को (भिन्दन्तः) नष्ट करते हुवे (उत् अस्थुः) उठते हैं और (याः) जो (स्पृधः) स्पर्धा करने वाली शत्रुसेना हम से द्वेषपूर्वक बाधा करती हैं उन को (परि नुदस्व) बाधा करके हटा ॥

ऋग्वेद ९ । ५३ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ २
(१७१३) अया निजघ्निरोजसा रथसंगे धने हिते ।
२ ३ १ २ ३ २
स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥ २ ॥

भावार्थः—(अया) इस तेरे सेवन से आप्यायित (ओजसा) बलवान् (अबिभ्युषा) निर्भय (हृदा) हृदय से (निजघ्निः) निरा शत्रुसंहारी मैं (रथसंगे) रथ फंसने वाले संग्राम में और (धने) धन (हिते) जहां निहित हो वहां (स्तवै) तेरी प्रशंसा करता हूं ॥ ऋ० ९ । ५३ । २ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३क २र
(१७१४) अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या ।

३ १२ २२ ३ १ २
रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अस्य) इस हमारे वर्त्ताव में आने वाले (पवमानस्य) सोम के (व्रतानि) कर्म (दूढ्या) दुर्बुद्धि दुष्ट मनुष्य से (नाधृषे) धर्षणा नहीं किये जा सकते, अतः (यः) जो दुर्बुद्धि (त्वा) उस सोम को (पृतन्यति) द्वेष करता है, उस को (रुज) बाधता है ॥ ऋ० ९ । ५३ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

१ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१७१५) तꣳ हिन्वन्ति मदच्युतꣳ हरिं नदीषु वाजिनम् ।
२ ३ १ २ ३ २
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥ [२]

भाषार्थः-(तम्) उस (मत्सरम्) हर्षकारक (मदच्युतम्) हर्ष के बर्षाने वाले (हरिम्) हरे (वाजिनम्) बलवान् (इन्दुम्) सोम को (नदीषु) प्रवाहों के निमित्त (इन्द्राय) वर्षा करने वाले वायुविशेष=इन्द्र के लिये (हिन्वन्ति) होमद्वारा भेजते हैं ॥ ऋ० ९ । ५३ । ४ में भी ॥ ४ ॥

अथ तृचस्य तृतीयसूक्तस्य—विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१७१६) आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३
मा त्वा केचिन्नियेमु रिन्न पाशिनोऽति-
१ २३ १ २
धन्वेव ताँ इहि ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (२४६) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
(१७१७) वृत्रखादो बलꣳ रुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
२ ३ १२ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ २
स्थाता रथस्य हर्यो रभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ॥२॥

भावार्थः-सूर्य की शक्ति का वर्णन करते हैं कि-(वृत्रखादः) मेघ का भक्षक हिंसक है, (वलंरुजः) चराचर के वल का भङ्ग करने वाला है, (पुरां दर्मः) ग्रामनगरादि और देहों को पुराना करने वाला विदीर्ण करने वाला है, (अपामजः) आकाशमण्डल में मेघस्थ जलों का प्रेरक है (हर्योः) सीधी तिरछी दो प्रकार की किरणों रूपी घोड़ों के (रथस्य) रथ का (स्थाता) बैठने वाला है, (इन्द्रः) वो इन्द्र (अभिस्वरे) अपने सर्वतोव्यापी उपताप वा गरमी में (दृढा) दृढ पदार्थों को (चित्) भी (आरुजः) भग्न कर देता है ॥ ऋग्वेद ३ । ४५ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २३ १२३ १२ ३ १ २
(१७१८) गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गाइव ।
१ २ ३ १र २र ३१ २ ३२ ३ १
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या
२
इवाशत ॥ ३ ॥ [३]

भावार्थः- फिर सूर्य की ही शक्ति कहते हैं—सूर्य (इव) जैसे (गम्भीरान्) गहरे (समुद्रान्) समुद्रों को (पुष्यसि) पुष्ट करता भरता है, वैसे ही (क्रतुम्) यज्ञ को पुष्ट करता है (सुगोपाः) अच्छा गोपालक (इव) जैसे (गाः) गौवों को पुष्ट करता है, वैसे सूर्य भूमियों का पोषण करता है, (यथा) जैसे (धेनवः) गौवें (यवसम्) तृणादि भक्ष वा चारे को (प्र) प्राप्त होती हैं, वैसे सूर्यकिरणें यज्ञ से भाग लेती हैं, (इव) और जैसे (कुल्याः) छोटी नदियें (ह्रदम्) गहरे जलाशय को (आशत) प्राप्त होती हैं, वैसे सूर्यकिरण-गत सोमादि ओषधियों के रस आकाश समुद्र को व्यापते हैं ॥ ऋ० ३ । ४५ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथस्य चतुर्थे सूक्तस्य—देवातिथिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १र २र
(१७१९) यथा गौरो अपाकृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमागहि कण्वेषु सु सचा पिब १

इस की व्याख्या (२५२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१७२०) मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः
॥ २ ॥ [४]

भावार्थः—(मघवन्) हे यज्ञ वाले कर्मकर्त्ता ! (इन्द्र) इन्द्रियाधिष्ठातः जीवात्मन् ! (सुन्वते) सोम अभिषुत करके सोमयाग करने वाले यजमान के लिये (राधः) धन के (देयाय) देने को (त्वा) तुझे (इन्दवः) सोमरस (मन्दन्तु) तृप्त करें (अमुष्य) इस यजमान के (चमू) अधिषवण फलकों वा चमसों में (सुतम्) अभिषुत किये हुवे (सोमम्) सोमरस को (आ अपिबः) तू पीता है और (तद्) उस सोमरसोत्पन्न (ज्येष्ठम्) बड़े (सहः) बल को (दधिषे) धारता है ॥ ऋग्वेद ८ । ४ । ४ में भी ॥ २ ॥

अथ प्रगाथात्मकपञ्चमसूक्तस्य—गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(१७२१) त्वमङ्ग प्रशंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः॥१॥

इस की व्याख्या (२४७) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र
(१७२२) मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्

२र ३ १ २ १ २ ३ १
कदाचना दभन्। विश्वा च न उप मिमीहि
२ ३ १ २ ३ २ ३ २
मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २ ॥ [५]

भापार्थः-(मानुष) हे मनुष्यमात्र के हितकारी ! (वसो) बसाने वाले ! इन्द्र=परमेश्वर ! (ते) तेरे (राधांसि) उत्पन्न किये अन्न गेहूं आदि (अस्मान्) हम को (कदाचन) कभी (मा आदभन्) दुःख न दें न मारें (ते) तेरी की हुई (ऊतयः) रक्षायें (मा) दुःख न दें (च) और (विश्वा) सब (वसूनि) विद्यादिधन (नः) हम (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों के लिये (आ-उप-मिमीहि) सर्वतः दीजिये ॥ ऋग्वेद १ । ८४ । २० में भी ॥ २ ॥

इत्यनविंशाऽध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीये खण्डे-

प्रथम तृचस्य-पुरुमीढोऽजमीढो वा ऋषिः । उषा देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा-

२ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१७२३) प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः ।
३ १ २ ३ २
दिवो अदर्शि दुहिता ॥ १ ॥

भापार्थः-(स्या) वह प्रकट होती हुई, (सूनरी) मनुष्यों को सुमार्ग पर ले चलने वाली, (जनी) फलों की जनने वाली, (स्वसुः) अपनी बहिन रात्रि के (परि) अन्त में (व्युच्छन्ती) अन्धकार को निवारती और प्रकाश को फैलाती हुई, (दिवः) सूर्य वा द्युलोक की (दुहिता) पुत्री के तुल्य उषा (अदर्शि) दीख रही है ॥ ऋग्वेद ४ । ५२ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया-

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१७२४) अश्वेव चित्राऽरुषी माता गवामृतावरी ।
१ २ ३ १ २ ३ २
सखाऽभूदश्विनोरुषा ॥ २ ॥

भावार्थः—(उषा) प्रातर्वेला, (अश्वा इव) बिजली सी (चित्रा) चमत्कार वाली, (अरुषी) अरुण वर्ण से उदय होने वाली, (गवां माता) किरणों की जननी, (ऋतावरी) हितकारिणी, (अश्विनोः सखा) प्राण अपान की सखी (अभूत्) है ॥ ऋ० ४ । ५२ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र

(१७२५) उत सखाऽस्यश्विनोरुत माता गवामसि ।

३ २ ३ १ २

उतोषो वस्व ईशिषे ॥ ३ ॥ [६]

भावार्थः—हे (उषः) उषा ! तू (उत) और भी (अश्विनोः) प्राणाऽपानों की (सखा) सहचरी (असि) है, (उत) और (गवाम्) किरणों की (माता) जननी (असि) है (उत) और (वस्वः) विद्यादि धन की (ईशिषे) स्वामिनी है ॥ ऋग्वेद ४ । ५२ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचस्य—प्रस्कण्वऋषिः । अश्विनौ देवते । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ १र २र ३क २र ३ २ ३ २

(१७२६) एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।

३ १ २ ३ २

स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१७८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ २

(१७२७) या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥

भावार्थः—(या) जो, (सिन्धुमातरा) जिन की माता समुद्र है वे, (रयीणाम्) धनों के (मनोतरा) मन से तिराने वाले (धिया) कर्म से (वसुविदा) धन के लभाने वाले (दस्रा) प्राण अपान वा सूर्य चन्द्रमा

(देवा) दो देवता हैं [उन की स्तुति=प्रशंसा करता हूं-] यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है ॥ ऋग्वेद १ । ४६ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया-

३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१७२८) वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि ।

२ ३   २ ३ २ ३ १ २

यद्वाᳲ रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥ [७]

भावार्थः-(वाम्) तुम दोनों प्राणाऽपानों का (रथः) रमणीय वेग (यत्) जिस कारण (जूर्णायाम्) गर्म (विष्टपि) आकाश में (अधि) ऊपर (विभिः) पक्षिगणों के साथ (पतात्) जाता है अतः (वाम्) तुम्हारे (ककुहासः) महत्व (वच्यन्ते) मन्त्रों द्वारा कहे जाते हैं ॥

ऋग्वेद १ । ४६ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य-गोतमऋषिः । उषा देवता । उष्णिक् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा-

२ ३ २ ३ १र २र ३ १ २

(१७२९) उषस्तच्चित्रमाभराऽस्मभ्यं वाजिनीवति ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १ ॥

भावार्थः-(वाजिनीवति) हे हव्यान्नयुक्ते ! (उषः) उषा ! (अस्मभ्यम्) प्रातः उठकर तेरा सेवन और याग करने वाले हम लोगों के लिये (चित्रम्) आदरणीय (तत) उस धन को (आभर) ला (येन) जिस से हम (तोकं च) पुत्र और (तनयं च) पौत्र का (धामहे) धारण करें ॥ निरुक्तस्त व्याख्यान संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १ । ९२ । १३ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया-

१ २ ३ १र २र ३ १ २

(१७३०) उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि ।

३ २ ३ १ २

रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ २ ॥

भावार्थः—(गोमति) हे गौवों वा किरणों वाली ! (अश्वावति) घोड़ों वा प्राणों वाली ! (विभावरि) प्रकाश वाली ! (सूनृतावति) प्रिय सत्य वाणी वाली ! (उषः) प्रभातवेला ! तू (अस्मे) हम तेरे यजन करने वालों के लिये (अद्य) अब (इह) यहां (रेवत्) धनयुक्त अन्य भोग्य पदार्थ हों, ऐसा (व्युच्छ) अन्धकार को निवृत्त कर ॥

उषः काल में उत्तमसुन्दर गौवें वा किरणें हों, उत्तम घोड़े वा प्राण हों, सुन्दर प्रकाश हो, प्यारीवाणी को मनुष्य पशु पक्षी आदि बोल रहे हों, उषा का यज्ञ हो रहा हो, ऐसी उषा=प्रभात वेला हम को हों, जिस से धान्य धन आदि सुखवृद्धिपूर्वक अन्धकार का निवारण नित्य हुवा करे ॥

ऋग्वेद १ । ९२ । १४ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

(१७३१) युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अथा नो विश्वा सौभगान्यावह ॥ ३ ॥ [८]

भावार्थः—(वाजिनीवति) हे हव्य अन्न पाई हुई ! (उषः) प्रातर्वेला ! तू अपने (अरुणान्) लाल (अश्वान्) घोड़ों=किरणों को (हि) निश्चय (युङ्क्ष्व) जोत (अथ) फिर (नः) हमारे लिये (विश्वा) सब (सौभगा) सौभाग्यों को (आवह) पहुंचा ॥

जो लोग उषः काल में उठ कर यज्ञ करते हैं और उस यज्ञ द्वारा उषा को हव्यान्नवती बनाते हैं, वे अरुणोदय के उस उत्तम प्रभाव से सब सौभाग्य पाते हैं ॥ ऋग्वेद १ । ९२ । १५ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीय तृचस्य—गोतमऋषिः । अश्विनौ देवते । उष्णिक्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २

(१७३२) अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।

३ २र ३ १ २ ३ १ २

अर्वाग्रथꣳसमनसा नियच्छतम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(अश्विनौ) व्यापनशील (दस्रा) वातपित्तादि दोषों के नाशक

(समनसा) समान मन रखने वाले प्राणाऽपान ! दोनों (गोमत्) इन्द्रिय सामर्थ्यसहित (हिरण्यवत्) तेजोयुक्त (वर्त्तिः) परिवर्त्ती (रथम्) अपने गमनागमन को (अस्मत्) हम युक्ताऽऽहार विहार वालों से (अर्वाक्) अनुकूल (आ–नि–यच्छतम्) वर्त्तावो ॥ ऋ० १ । ९२ । १६ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१७३३) एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्त्तनी ।
३ १ २ ३ १ २
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ २ ॥

भावार्थः–(उषर्बुधः) प्रभात समय जाग उठने वाले मनुष्य (इह) इस लोक में (मयोभुवा) सुखदायी (दस्रा) दोष शमन करने वाले (हिरण्य वर्त्तनी) तेजस्वि मार्गवाले (देवा) प्राणाऽपान वा प्राण उदान वायु देवों को (सोमपीतये) सोमादि उत्तम ओषधिरस पानार्थ (आ-वहन्तु) आवाहन करके सेवन करें ॥ ऋ० १ । ९२ । १८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

२ ३ २उ ३ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
(१७३४) यावित्था श्लोकमादिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
२ ३ १ २ ३ २
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ ३ ॥ [९]

भावार्थः–(अश्विना) हे अश्विनौ देवौ ! (यौ) जो तुम दोनों (दिवः आ) द्युलोक से आरम्भ करके (जनाय) मनुष्यादि प्राणिवर्ग के लिये (ज्योतिः) प्रकाश को (इत्था) इस प्रकार हमारे अनुभव में आई रीति से (चक्रथुः) करते हो, वे (युवम्) तुम दोनों (श्लोकम्) प्रशंसनीय (ऊर्जम्) बलदायक अन्नरस को (नः) हमारे लिये (आ–वहतम्) लाते हो ॥

अश्विनौ का अर्थ निरुक्त १२ । १ में बहुत प्रकार से किया है । यथा— कोई द्युलोक पृथिवीलोक को, कोई दिन रात्रि को, कोई सूर्य चन्द्रमा को अश्विनौ कहते हैं इत्यादि संस्कृत भाष्य में निरुक्त प्रमाण उद्धृत है ॥ ऋग्वेद १ । ९२ । १७ में भी ॥ ३ ॥

इत्येकोनविंशाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ तृतीये खण्डे—

प्रथम तृचस्य—वसुश्रुत ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ १र २र ३ २उ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
(१७३५) अग्निं तं मन्ये योवसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन
१ २ ३ २ ३ १ २
इषᳪ स्तोतृभ्य आभर ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४२५) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २उ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१७३६) अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
३ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
अग्नीराये स्वाभुवᳪ सुप्रीतो याति वार्य
१ २ ३ २ ३ १ २
मिषᳪ स्तोतृभ्य आभर ॥ २ ॥

भावार्थः—(अग्निः) अग्नि (हि) ही (विशे) प्रजा के लिये (वाजिनम्) बलयुक्त अन्नादि (ददाति) देता है, (विश्वचर्षणिः) सब को देखने का सामर्थ्य देने वाला (अग्निः) अग्नि (स्वाभुवम्) सुन्दर सर्वतोव्याप्त (वार्यम्) वरणीय तेज को (याति) प्राप्त कराता है (सुप्रीतः) शोभन होम से प्रसन्न किया हुवा अग्नि (राये) धनादि ऐश्वर्य के लिये (स्तोतृभ्यः) ऋत्विज् आदि को (इषम्) अन्न (आभर) लाकर देता है ॥ ऋ० ५ । ६ । ३ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

२ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(१७३७) सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
समर्वन्तो रघुद्रुवः सᳪ सुजातासः सूरय

१ २ ३ २ ३ १ २
इषं स्तोतृभ्य आभर ॥ ३ ॥ [१०]

भावार्थः—(सः) वह (अग्निः) अग्नि (यः) जो (वसुः) वसु है (यम्) जिस का (धेनवः) वाणीयें (सम्—आ—यन्ति) समागम करती हैं, (रघुद्रुवः) शीघ्रगामी (अर्वन्तः) घोड़े वा प्राण [श० ५ । २ । ४ । ९] (सम्) समागम करते हैं, (सुजातासः) सुफल शोभन जन्म वाले (सूरयः) विद्वान् (सम्) समागम करते हैं, उस को (गृणे) मैं प्रशंसित करता हूं, वह (स्तोतृभ्यः इषम् आभर) ऋत्विज् आदि को अन्न प्राप्त कराता है ॥

ऋग्वेद ५ । ६ । ४ यजुः १५ । ४३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीय तृचस्य—सत्यश्रवा वत्सोवर्षिः । उषा देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१७३८) महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये
२र ३ १ २
सुजातेअश्वसूनृते ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४२१) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३१र २र
(१७३९) या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
१र २ ३ १२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये, सुजाते अश्वसूनृते२

भावार्थः—(सुनीथे) सुन्दर प्राप्ति वाली ! (शौचद्रथे) प्रकाशक रथ=रमणीय स्वरूप वाली ! (सहीयसि) अत्यन्त बलवति ! (सत्यश्रवसि) सच्चे यश वाली । (अश्वसूनृते) व्यापक प्यारे शब्द वाली ! (दिवः दुहितः) द्युलोक वा सूर्य की पुत्रि । उषाः ! देवि ! (या) जो तू (व्यौच्छः) पूर्व अन्धकार का नाश करती थी (सा) वही तू (व्युच्छ) अब भी अन्धकार को निवारक॥

उषा=प्रभातवेला की स्तुति के बहाने मनुष्यों और स्त्रियों को परमात्मा का उपदेश है कि जो लोग उषःकाल में उठते हैं वे बड़े धन धान्यादि ऐश्वर्य

को प्राप्त होते हैं, और जिन घरों में उषा के तुल्य गुणवती स्त्रियें होती हैं वहां भी धन धान्यादि की वृद्धि होती है। जैसे उषा का सुन्दर दर्शनीय जन्म सब को आह्लाद उत्पन्न करता है, जैसे उषःकाल में सब जन्तु प्यारा शब्द करते हैं, जैसे उषा सब ओर विस्तृत होती है, और जैसे प्रकाशमान है, वैसे ही उत्तम स्त्रियों को भी बनना चाहिये॥ ऋ० ५।७९। २ में भी ॥२॥

इस मन्त्र में सुजाते अश्वसूनृते शब्दों पर जो महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि ने अर्धएकार, अर्धओकार की आशङ्का और समाधान किया है उसको यहां सत्यव्रत सामश्रमी जी इस प्रकार टिप्पणी में अङ्कित करते हैं कि:—

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २र

(१७४०) सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छादुहितर्दिवः।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र

यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये

२र ३ १ २

सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥ [११]

भाषार्थः—(दिवः) द्युलोक वा सूर्य की (दुहितः) बेटी। उषा। (या) जो तू (आभरद्वसुः) धनादि धारण करती हुई (व्यौच्छः) अब से पहले अन्धकार को हटाती थी, (सा उ) वही तू (अद्य) आज भी (नः) हमारे (व्युच्छ) अन्धकार को मिटा॥ ऋ० ५। ७९। ३ में भी॥ ३॥

अथ तृतीय तृचस्य—अवस्युर्ऋषिः। अश्विनौ देवते। पङ्क्तिश्छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१७४१) प्रति प्रियतमꣳरथं वृषणं वसुवाहनम्।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३

स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेभिर्भूषति प्रति

२ ३ १ २ ३ १ २

माध्वी मम श्रुतꣳहवम् ॥१॥

इस की व्याख्या (४१८) में हो चुकी है॥ १॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १२ २२ ३ १२ २२
(१७४२) अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहंꣳ सना।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
दस्रा हिरण्यवर्त्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा,
२ ३ १ २ ३ १ २
माध्वी मम श्रुतꣳहवम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(दस्रा) दोषों के उपक्षय करने वालो ! (हिरण्यवर्त्तनी) तेजयुक्तमार्ग वालो ! (सुषुम्णा) सुन्दर सुख देने वालो ! (सिन्धुवाहसा) वर्षा से नदियों के प्रवाह चलाने वालो ! (माध्वी) मधुर मनोहरो ! (अश्विना) सूर्यचन्द्रो ! वा प्राण उदानो! वा प्राण अपानो ! तुम दोनों (आयातम्) मुझे प्राप्त होओ और (मम) मुझ यजमान के (हवम्) आवाहन को (श्रुतम्) सुनो=स्वीकार करो (अहम्) मैं यजमान (विश्वाः) सब अपनी विरोधी प्रजाओं को (अति) पार करके (तिरः) तिरस्कृत कर सकूं ॥

ऋग्वेद ५ । ७५ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१७४३) आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम्।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
रुद्रा हिरण्यवर्त्तनी जुषाणा वाजिनी वसू माध्वी
१ २ ३ १ २
मम श्रुतꣳहवम् ॥ ३ ॥ [१२]

भावार्थः—(रत्नानि) रमणीय पदार्थों को (बिभ्रती) धारण करते हुवे (अश्विना) सूर्यचन्द्रो ! वा प्राणाऽपानो ! (युवम्) तुम दोनों (नः) हम यजमानों को (आ–गच्छतम्) प्राप्त होओ (रुद्रा) भयोत्पादको ! (हिरण्य वर्त्तनी) तेजयुक्तमार्ग वालो ! (जुषाणा) यज्ञ का सेवन करते हुवो ! (वाजिनी) बलवानो ! (वसू) आठ ८ वसुओं के अन्तर्गतो ! (माध्वी) मनोहरो ! (मम हवं श्रुतम्) मेरे आवाहन को स्वीकारो ॥

ऋग्वेद ५ । ७५ । ३ में भी ॥ ३ ॥

इत्येकोनविंशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थे खण्डे—

प्रथम तृचस्य—बुधो गविष्ठिरो वा ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१७४४) अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायती-
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मुपासम् । यह्वाइव प्रवयामुज्जिहानाः प्र भानवः
३ २ ३ १ २
सस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (७३) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
(१७४५) अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः
३ १ २ ३ १२ १ २ ३ १ २ ३
सुमनाः प्रातरस्थात् । समिद्धस्य रुशददर्शि
१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ॥ २ ॥

भावार्थः—(होता) होम का सिद्ध करने वाला (अग्निः) अग्नि (देवान्) वायु आदि देवों को (यजथाय) यजन करने के लिये (अबोधि) प्रदीप्त किया जाता=जगाया जाता है, (प्रातः) प्रातःकाल में (सुमनाः) मन को प्रसन्न करने वाला मनभावना अग्नि (ऊर्ध्वः अस्थात्) लपटरूप से उठता है, (समिद्धस्य) प्रदीप्त अग्नि का (रुशत्) प्रकाशमान (पाजः) बल=ज्वालारूपी (अदर्शि) दीखता है, सो यह (महान्) बड़ा (देवः) देव=अग्नि (तमसः) अन्धकार से (निरमोचि) जगत् को छुड़ाता है ॥

ऋग्वेद ५ । १ । २ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३१र २र ३ १ २ ३
(१७४६) यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते
१ २ ३ १ २ ३ २ १र २र
शुचिभिर्गोभिरग्निः । आद्दक्षिणा युज्यते
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३॥ [१३]

भावार्थः—(यत्) जब कि (ईम्) यह (अग्निः) अग्नि (गणस्य) समूहात्मक जगत् के (रशनाम्) रस्सीरूप से व्यापार के बांधने=रोकने वाले अन्धकार को (अजीगः) निगलता है, खा जाता है, प्रकाश फैला देता है, (शुचिः) शुद्ध अग्नि (शुचिभिः गोभिः) शुद्ध किरणों से (अङ्क्ते) प्रकट होता है (आत्) तभी (दक्षिणा) दक्षिण हाथ से दक्षिणा के समान दान की हुई घृत की धारा (वाजयन्ती) बल चाहती हुई (युज्यते) युक्त की जाती है=छोड़ी जाती है (उत्तानाम्) ऊपर फैली हुई उस धारा को (ऊर्ध्वः) ऊपर को उठता हुवा अग्नि (जुहूभिः) जुहू नामक पात्रों से (अधयत्) पीता है ॥ ऋग्वेद ५ । १ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीय तृचस्य—कुत्स ऋषिः । उषादेवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
(१७४७) इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः
२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा । यथा प्रसूता
३ २ ३ २ ३२उ ३ २ ३ १ २
सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥१॥

भावार्थः—(ज्योतिषाम्) ग्रहनक्षत्रादि ज्योतियों में (इदम्) यह उषा रूप (ज्योतिः) ज्योति (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ (आगात्) उदय होती है (विभ्वा) व्याप्ति से, यह (चित्रः) विचित्र (प्रकेतः) प्रज्ञान (अजनिष्ट) उत्पन्न होता है (यथा) जैसे (सवितुः) सूर्य से (प्रसूता) उत्पन्न गर्भ वाली भूमि

प्रसव को प्राप्त हुई (सवाय) ओषधि आदि के जनने को (योनिम्, आरैक्) गर्भाशय को रिक्त करती हैं (एवा) ऐसे ही (रात्री) रात्रि भी (उषसे) उषा के उत्पादनार्थ स्थान को रिक्त करती है। इस का निरुक्तकृत व्याख्यान निरु० २। १९ के अनुसार संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० १। ११३। १ में भी ॥१॥

अथ द्वितीया–

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र

(१७४८) रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा

२र ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ

सदनान्यस्याः। समानबन्धू अमृते अनूची

३ १ २ ३ २

द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥ २ ॥

भावार्थः–(रुशती) प्रकाशमाना (रुशद्वत्सा) प्रकाशमान सूर्य वा दिन वत्सवाली (श्वेत्या) उषा (आगात्) आती उदय होती है (उ) और (कृष्णा) रात्रि (अस्याः) इस उषा के (सदनानि) स्थानों को (आरैक्) रिक्त कर देती है। (समानबन्धू) ये दोनों रात्रि और उषा समान नियमरूपी बन्धन से बन्धी हैं (अमृते) अमर हैं काल रूप से नित्य होने से (अनूची) एक दूसरे के पश्चात् चलने वाली हैं (वर्णम्) एक दूसरे के रङ्ग को (आमिनाने) नष्ट करती हैं और (द्यावा) आकाश मार्ग से सदा (चरतः) चलती हैं॥

निरुक्त २। २० का व्याख्यान संस्कृत भाष्य में देखिये॥ भाव यह है कि जब चमकते हुए सूर्य वा दिन को उत्पन्न करने वाली चमकती हुई उषा आती है तो रात्रि उस आती हुई उषा के स्थानों को अपने शेष आधे प्रहर में खाली कर देती है, इस प्रकार सूर्य के उदय अस्त के पीछे २ ये रात्रि और उषा घूमती रहती हैं, जब एक देश में दिन होता है तो उस से पश्चिम में उषा और उषा से पश्चिम में रात्रि, इसी प्रकार आगे पीछे चक्र चलता रहता है। सूर्य को उषा का वत्स (पुत्र वा बछड़ा) इस लिये कहा है कि गौ के पीछे बछड़े के समान आगे २ उषा और उस के पीछे २ सूर्य चलता जान पड़ता है। अथवा रस खींचने से दूध खींचने=चूसने वाले बछड़े की उपमा है। कृष्णा शब्द कृष धातु से बना है उस का अर्थ=निकृष्ट रङ्ग है॥

ऋग्वेद १। ११३। २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २उ ३ १ २ ३२उ ३ १ २
(१७४९) समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या

३१२ १ २ ३ १ २ ३२३
चरतो देवशिष्टे। न मेथेते न तस्थतुः सुमेके

२ ३ २ ३ १२ ३ १ २
नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥ [१४]

भावार्थः—(स्वस्रोः) रात्रि और उषा दोनों बहिनों का (समानः) एक सा (अनन्तः) अनन्त (अध्वा) मार्ग है (तम्) उस मार्ग को (देवशिष्टे) परमेश्वर की आज्ञा पालने वाली (अन्या अन्या) एक एक पृथक्-पृथक् (चरतः) दोनों चलती हैं। (समनसा) मन को समान रखने वाली (विरूपे) एक का रूप अन्धकार, दूसरी का प्रकाश इस प्रकार परस्पर विरुद्ध रूप वाली (सुमेके) भले प्रकार सींचने वाली (नक्तोषासा) रात्रि और उषा दोनों (न मेथेते) न तो लड़ती हैं, और (न तस्थतुः) न ठहरती हैं, किन्तु निरन्तर चलती रहती हैं॥ ऋग्वेद १ । ११३ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—अत्रिर्ऋषिः। अश्विनौ देवते। त्रिष्टुप्छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २३२३ १२ ३१र २र ३ १र
(१७५०) आभात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया

२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १
वाचो अस्थुः। अर्वाञ्चा नूनꣳ रथ्येह

२ ३ १ २ १ ३१र २र
यातं पीपिवाꣳसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥

भावार्थः—(उषसाम्) प्रातः समयों का (अनीकम्) मुखरूप (अग्निः), अग्नि (आभाति) प्रज्वलित होकर चमकता है, (विप्राणाम्) यज्ञ करने वाले मेधावी ब्राह्मणों की (देवयाः वाचः) देवकामा वाणी [वेद मन्त्र] (उत् अस्थुः) उच्चारित होती हैं, (अर्वाञ्चा) सम्मुख आने वाले (रथ्या) रम्य गति वाले (अश्विना) प्राण और उदान वायु (नूनम्) निश्चय (पी-

विद्वांसम्) पुष्टिकारक (धर्मम्) शुद्धिकारक यज्ञ को (इह) इस यज्ञदेश में (अच्छ) भले प्रकार (यातम्) प्राप्त होते हैं ॥ ऋ० ५ । ७६ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया–

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २
(१७५१) न सꣳस्कृतं प्रमिमीतो गमिष्ठाऽन्ति नून-

३ १र २र ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
मश्विनोपस्तुतेह । दिवाभिपित्वेऽवसा गमिष्ठा

१र २र ३ २ ३ १ २
प्रत्यवर्तिं दाशुषे शं भविष्ठा ॥ २ ॥

भावार्थः–(इह) इस यज्ञ में (उपस्तुता) प्रशंसित (अश्विना) प्राणोदान वा सूर्य चन्द्र (संस्कृतम्) यज्ञ संस्कार से संस्कृत पुरुष को (न) नहीं (प्रमिमीतः) मारते किन्तु रक्षा करते हैं (नूनम्) निश्चय (अन्ति) समीप में (गमिष्ठा) अति शीघ्रगामी वे दोनों अश्विनौ (दिवाऽभिपित्वे) दिन निकलते ही (अवसा) अपने धर्म=रक्षण के साथ (आगमिष्ठा) अत्यन्त आने वाले हैं और (अवर्त्तिम्) अमार्ग=अन्धे के (प्रति) प्रति (दाशुषे) ज्ञानादि देने वाले के लिये (शम्) सुख को (भविष्ठा) अत्यन्त हुवाने वाले हैं ॥ ऋग्वेद ५ । ७६ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३
(१७५२) उतायातꣳ संगवे प्रातरह्नो मध्यंदिन उदिता

१ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
सूर्यस्य । दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं

३ २ ३ १र १र
पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥ [१५]

भावार्थः–(अश्विना) दोनों अश्विनौ (इदानीम्) अब यज्ञ समय में (न) नहीं (उत) किन्तु (संगवे) सायंकाल में (प्रातः) प्रातः काल में (अह्नः मध्यन्दिने) दिन के मध्याह्न काल में और कहां तक कहें (सूर्यस्य उदिता दिवा) सूर्य के उदय में दिन भर और (नक्तम्) रात्रि में भी (आ-

यातम्) हमें प्राप्त हों (पीतिः) सोमादिपान (ततान) विस्तृत है ॥

ऋग्वेद ५ । ७६ । ३ में भी ॥ ३ ॥

इत्येकोनविंशाऽध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमे खण्डे-

अथास्य तृचस्य-गोतमऋषिः । उषा देवता । जगती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा-

३ २ ३ २ ३१२ ३१२ ३ २३ २३ १ २
(१७५३) एता उ त्या उषसः केतुमक्रत, पूर्वे अर्धे रजसो
३ १ २ ३ १२ २र ३ २ ३
भानुमञ्जते । निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः,
२ ३ १२ २र ३ १ २
प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥ १ ॥

भावार्थः-(गावः) चलने वाली (अरुषीः) अरुणवर्णा प्रकाशमाना (मातरः) प्रकाश की जननी (उ) ही (एताः) ये (त्याः) उक्त लक्षणों वाली (उषसः) उषा देवियें (केतुम्) प्रकाश को (अक्रत) सूर्य से खींचती हैं और (रजसः) अन्तरिक्ष के (पूर्वे) पूर्व की ओर वाले (अर्धे) अर्ध भाग में (भानुम्) सूर्य को (अञ्जते) प्रकट करती है, पश्चिमार्ध में पृथिवी के अपनी छाया का अन्धेरा रहता है (इव) जैसे (धृष्णवः) विजयी योद्धा लोग (आयुधानि) असि=तलवार आदि शस्त्रों को (निष्कृण्वानाः) सैकल करके पैनाते हुवे हों वैसे प्रकाश से चमकाती हुई उषायें (प्रति) नित्य (यन्ति) घूमती हैं। निरुक्त १२ । ७ का व्याख्यान संस्कृत भाष्य में देखिये॥

ऋ० १ । ९२ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया-

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
(१७५४) उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा, स्वायुजो
१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अरुषीर्गा अयुक्षत । अक्रन्नुषासो वयुनानि
१ २ ३ १ २ ३ १२ २र
पूर्वथा, रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २ ॥

भावार्थः—(अरुणाः) रक्तवर्ण वाली (भानवः) उषा की दीप्तियें (वृथा) यूंही स्वाभाविक रीति से (उदऽपप्तन्) उदय हो जाती हैं और (स्वायुजः) सुगमता से जुतने वाली (अरुषीः) शुभ्र उज्ज्वल (गाः) गौवों के समान किरणों को (अयुक्षत) जोतती हैं और (पूर्वथा) पूर्व के समान नियमानुसार (उषासः) उषा देवियें (वयुनानि) ज्ञानों को (अक्रन्) उत्पन्न कर देती हैं। उषःकाल में ही सब प्राणी स्वाभाविक नियम से ज्ञान को प्राप्त होते हैं। फिर—(अरुषीः) अरुण वर्ण की वे चमकती उषा की किरणें (रुशन्तम्) प्रकाशमान (भानुम्) सूर्य का (अश्रिश्रयुः) आश्रय करती हैं अर्थात् सूर्य के साथ मिलकर एक हो जाती हैं॥ ऋ० १। ९२। २ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २३२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २३ १

(१७५५) अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः, समानेन योजनेना

२ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २३ २उ ३

परावतः। इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे, विश्वेदह

१ २ ३ २

यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥ [१६]

भावार्थः—(सुकृते) सुकर्मी (सुदानवे) सुदानी (सुन्वते) सोमाभिषवी (यजमानाय) यजमान के लिये (विश्वा इत् अह) सब ही (इषम्) अन्नादि को (वहन्तीः) पहुंचाती हुईं (नारीः) ज्ञान प्रकाश से नेता का काम करने वाली उषायें (विष्टिभिः) निवेश कराने वाले अपने तेजों से (समानेन योजनेन) एक ही उद्योग से (आ परावतः) दूरस्थों को भी (अर्चन्ति) सत्कृत करती हैं। (अपसः न) जैसे जलों को ॥

ऋग्वेद १। ९२। ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीय तृचस्य—दीर्घतमा ऋषिः। अश्विनौ देवते। जगती छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ २ ३ १ ३क २र

(१७५६) अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यू३षाश्चन्द्रा मह्यावो

२ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अर्चिषा। आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासा-

३ १ २ ३ २उ ३ १ २
वीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अग्निः) अग्नि (अबोधि) होमार्थ प्रदीप्त किया गया और (ज्मः) पृथिवी से (सूर्यः) सूर्य (उदेति) उदय हुवा । (चन्द्रा मही उषाः) आह्लादनी बड़ी उषा ने (अर्चिया) तेज से (वि आवः) अन्धेरा मिटाया और (अश्विना) प्राण अपानों ने (रथम्) रथ को (यातवे) यानार्थ (आयुक्षाताम्) जोता। इतने ही (देवः) दिव्य (सविता) जगत् के प्रेरक सविता देव ने (पृथक्) भिन्न २ (जगत्) जगत् को (प्रासावीत्) प्रवृत्त किया ॥ कैसा चमत्कार है। देखिये और लाभ उठाइये ॥
ऋग्वेद १ । १५७ १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१७५७) यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं, घृतेन नो मधुना
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
क्षत्रमुक्षतम् । अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं
३ २उ ३ १ २
वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥

भाषार्थः—(अश्विना) हे प्राणोदानो ! वा सूर्यचन्द्रो ! वा द्युलोक भूमि लोको ! (यत्) जब कि (वृषणम्) वर्षा करने वाले (रथम्) रमणीय रथ को (युञ्जाथे) तुम जोतते हो तब (नः) हमारे (क्षत्रम्) बाहुबल को (घृतेन मधुना) मधुर घृत वा जल से (उक्षतम्) सींचते हो बढ़ाते हो । (अस्माकम्) हमारे (ब्रह्म) ब्रह्मवर्चस तेज को (पृतनासु) सेनाओं में (जिन्वतम्) पुष्ट करो (वयम्) हम (शूरसाता) शूरों के भागधेय (धना), धनों को (भजेमहि) पावें ॥ ऋग्वेद १ । १५७ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१७५८) अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो, जीराश्वो

३ १-२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अश्विनोर्यातु सुष्टुतः । त्रिबन्धुरो मघवा
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
विश्वसौभगः, शं न आवक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥३॥ [१७]

भावार्थः—(अर्वाङ्) अनुकूल चलने वाला (त्रिचक्रः) ३ पहिये का (मधुवाहनः) मधुर चाल का (जीराश्वः) शीघ्रगामी घोड़ों का (त्रिबन्धुरः) ३ जुवों वाला (मघवा) धनयुक्त (विश्वसौभगः) सर्वसौभाग्यसम्पन्न (अश्विनोः रथः) अश्विनों का रथ (यातु) चले और (नः) हमारे (द्विपदे) दुपाये मनुष्यवर्ग में और (चतुष्पदे) चौपाये गौ आदि पशुवर्ग में (शम्) सुख को (आवक्षत्) लावे ॥

अश्विनोः पद से प्राण और उदान वायुवों के ग्रहण करने में नाभि के ३ चक्र उस के ३ पहिये समझो । इडा पिङ्गला सुषुम्णा ३ नाड़ी ३ जुवे जानो ॥

और सूर्य चन्द्र का ग्रहण करें तौ शीतकाल, ग्रीष्म काल, वर्षा काल भेद से दो दो ऋतु के ३ तीन मौसिमों को ३ चक्र गिनो और दक्षिण उत्तर मध्यम गति भेद से ३ जुवे समझने चाहियें, शेष समान है ॥ ऋ० १ । १५७ । ३ में भी ॥३॥

अथ चतुर्ऋचस्य तृतीय सूक्तस्य—अवत्सार ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१७५९) प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अच्छा वाजथ्ं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

भावार्थः—अगले मन्त्र में हरि पद देखने के प्रकरण से—हे सोम ! (असश्चतः) सङ्गरहित (ते) तेरी (धाराः) धारें (सहस्रिणं वाजम्) अतुल अन्न को (प्र यन्ति) देती हैं (न) जैसे (वृष्टयः) वर्षायें (दिवः) आकाश से (अच्छ) अच्छे प्रकार होती हैं; तद्वत् ॥ ऋग्वेद ९ । ५७ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१७६०) अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
१ २ ३ १र २र
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥

भाषार्थः-(हरिः) हरा सोमरस (विश्वा) सब (प्रियाणि) प्यारे (काव्या) कवितायुक्त वेदवचनों को (चक्षाणः) सामने करता हुवा (आयुधा) स्रुवादि होमपात्रों को (शुम्भानः) चमकाता हुवा (अभि अर्षति) धूमरूप से सब ओर फैलता है ॥ ऋग्वेद ९ । ५७ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया-

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २

(१७६१) स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः ।

३ १२ २२

श्येनो न वंꣳसु षीदति ॥ ३ ॥

भाषार्थः-(सुव्रतः) सुकर्मा (सः) वह सोम (आयुभिः) ऋत्विज् मनुष्यों से (मर्मृजानः) अत्यन्त शोधा जाता हुवा (वंसु) वसतीवरी -संज्ञक जलों में (सीदति) रहता है । (राजा) प्रकाशमान तेजस्वी (इभः) हस्ति (इव) सा, मदपूरित है और (श्येनः) शिखरे पक्षी (न) सा बली है ॥ ऋग्वेद ९ । ५७ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी-

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १२ २२

(१७६२) स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।

३ १ २ ३ १ २

पुनान इन्दवाभर ॥ ४ ॥

भाषार्थः-(इन्दो) सोम ! (पुनानः) अभिषुत किया जाता हुवा (सः) वह तू (नः) हमारे लिये (दिवः) आकाश के (उतो) और (पृथिव्याः) पृथिवी के (विश्वा) सब (वसु) धन (अधि) अधिकता से (आभर) लादे ॥ ऋग्वेद ९ । ५७ । ४ में भी ॥ ४ ॥

इत्यष्टमः प्रपाठकः ॥ ८ ॥

इति श्रीमल्कस्ववंशावतंस श्रीमान् पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र फ़तेहितगढ़ (ज़िला-मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में उन्नीसहवां अध्याय समाप्त हुवा ॥ १९ ॥

ओम्

अथ विंशोऽध्यायः

तत्र

प्रथमे खण्डे–

प्रथम तृचस्य–नृमेध ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा–

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

(१७६३) प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसः ।

३ १र २र ३ १ २

देवाँ अनूप्रभूषतः ॥ १ ॥

भावार्थः–(वृष्णः) वृष्टिकारक (ओजसः) बलवान् (देवान् अनु प्रभूषतः) देवों को तुष्टि देने वाले (सुतस्य) अभिषुत (अस्य) इस सोम की (धाराः) धारें (प्र-अक्षरन्) गगनमण्डल को सींचती हैं ॥ ऋ० ९ । २९ । १ में भी ॥१॥

अथ द्वितीया–

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(१७६४) सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।

१ २ ३ २३क २र

ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥२॥

भावार्थः–(वेधसः) बुद्धिमान् विद्वान् (कारवः) कर्मकर्त्ता अध्वर्यु आदि ब्राह्मण लोग (गिरा) वेदमन्त्रों से (गृणन्तः) वर्णन करते हुवे (जज्ञानम्) अभिषूयमाण (ज्योतिः) ज्योति (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (सप्तिम्) रपटने चलने वाले सोम को (मृजन्ति) शोधते हैं ॥ ऋ० ९ । २९ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१७६५) सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो ।

१ २ ३ १ २
वर्द्धा समुद्रमुक्थ्य ॥ ३ ॥ [१]

भावार्थः—(प्रभूवसो) हे पुष्कलधन ! (उक्थ्य) प्रशंसनीय (सोम) सोम ! (पुनानाय) अभिषुत किये जाते हुवे (ते) तेरे (तानि) वे तेज (सुषहा) भले प्रकार सहनयोग्य हैं, अतः (समुद्रम्) आकाश को (वर्ध) रस से पूर्ण करदे ॥ ऋग्वेद ९ । २९ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयस्य तृचस्य—नृमेधो वामदेवो वा ऋषिः । इन्द्रोदेवता । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
(१७६६) एष ब्रह्मा य ऋत्वियइन्द्रोनाम श्रुतोगृणे ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४३८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१७६७) त्वामिच्छवस्पते यन्ति गिरोन संयतः ॥ २ ॥

भावार्थः—(शवस्पते) हे बलपते ! इन्द्र ! (संयतः) भले प्रकार यत्न करके बोलने वाले की (न) सी (गिरः) वेदोक्त वाणियें (त्वाम्) तुझ को (इत्) ही (यन्ति) जाती हैं ॥ अर्थात् इन्द्रसूक्तों की प्रशंसा तुझ में ही चरितार्थ होती हैं ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(१७६८) विश्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥३॥ [२]

इस की व्याख्या (४५३) में होगई है ॥ ३ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—प्रियमेधऋषिः । इन्द्रोदेवता ।१ अनुष्टुप् २ । ३ गायत्री च छन्दः॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ २३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१७६९) आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्त्तयामसि ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रꣳशविष्ठ सत्पतिम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३५४) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१७७०) तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते ।
१ २ ३ २
आपप्राथ महित्वना ॥ २ ॥

भावार्थः—आत्मिक बल वाले महात्मा का वर्णन करते हैं:—(तुविशुष्म) हे महाबल ! (तुविक्रतो) अतएव बहुपुरुषार्थयुक्त ! (शचीवः) वाग्बलवन् ! भाषणशक्तिमन् (मते) बुद्धिमन् ! तू (विश्वया) सारे (महित्वना) बड़प्पन से (आपप्राथ) सर्वतः विस्तार को प्राप्त होता है ॥ ऋ० ८ । ६८ । २ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(१७७१) यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः ।
२ ३ १ २ ३ १२
हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥ ३ ॥ [३]

भावार्थः—(महिना) बड़प्पन से (महः) बड़े (यस्य) जिस पूर्वमन्त्रोक्त महाबलादि लक्षण वाले (ते) तेरे (हस्ता) दोनों हाथ (ज्मायन्तं) पृथिवी भर पर जाने वाले (हिरण्ययम्) तेजस्वी (वज्रम्) शस्त्रास्त्रसमूह को (परि ईयतुः) सर्वतः ग्रहण करते हैं [सो तू सर्वत्र विस्तार को प्राप्त होता है] यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है ॥ ऋग्वेद ८ । ६८ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ तृचस्य—दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २
(१७७२) आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ १ ॥

भावार्थः—(यः) जो अग्नि (अत्यः) निरन्तर चलने वाला (कविः) क्रान्तदर्शी (नभन्यः) आकाशीय (अर्वा) अश्व (न) सा और (शतात्मा) बहुत रूप वाला (रुरुक्वान्) प्रकाशमान (सूरः) सूर्य (न) सा है; वह

(नार्मिणीम्) मनुष्यों के मनभावनी (पुरम्) यज्ञभूमि को (अदीदेत) प्रकाशमान करे ॥ ऋग्वेद १ । १४९ । ३ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१७७३) अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांᳬसि
३ १ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुशुचानो अस्थात् । होता यजिष्ठो अपांᳬसधस्थे २

भावार्थः—(द्विजन्मा) दो अरणियों से उत्पन्न होने से द्विजन्मा, वा—एक वार मन्थन से और दूसरी वार आधान पवमान इष्टि आदि संस्कार से जन्म होने कारण से द्विजन्मा, अथवा—द्युलोक भूलोक से उत्पत्ति के कारण से द्विजन्मा अग्नि (त्री) तीन (रोचनानि) प्रकाशमान पृथिव्यादि ३ लोकों वा गार्हपत्यादि ३ अपने भेदों को और (विश्वा) सब (रजांसि) लोकान्तरों को (शुशुचानः) प्रकाशता हुवा (होता) देवों का आवाहन करने वाला (यजिष्ठः) उत्त का अत्यन्त यजन करने वाला अग्नि (अभि) चारों ओर (अपाम्) प्रोक्षणीपात्रादिस्थ जलों के (सधस्थे) सहवर्त्ती यज्ञदेश में (अस्थात्) स्थित हो=स्थापित किया जावे ॥ ऋ० १ । १४९ । ४ में भी ॥ २ ॥

अथ द्वितीया—

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१७७४) अयᳬस होता यो द्विजन्मा, विश्वा दधे वार्याणि
३ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रवस्या । मर्त्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ३ ॥ [४]

भावार्थः—(यः) जो (अयम्) यह (द्विजन्मा) द्विजन्मा है (सः) वह (होता) होमसाधक अग्नि (श्रवस्या) यश की इच्छा से (विश्वाः) सब (वार्याणि) वरणीय श्रेष्ठ पदार्थों को (दधे) धारण करता है (यः) जो (मर्त्तः) यजमान पुरुष (अस्मै) इस अग्नि के लिये (ददाश) हव्य देता है, वह (सुतुकः) सुन्दर पुत्र वाला होता है ॥ ऋ० १ । १४९ । ५ में भी ॥ ३ ॥

अथ पञ्चम सूक्तस्य—वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । पदपङ्क्तिश्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ २३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २

(१७७५) अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳहृदिस्पृशम्।

३ १ २ ३ १ २

ऋध्यामा त ओहैः ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (४३४) में हो चुकी है ॥ १ ॥

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

(१७७६) अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ २ ॥

भावार्थः—(अध हि) फिर (अग्ने) अग्ने ! तू (भद्रस्य, दक्षस्य, साधोः) भद्रपुरुष, चतुर और परोपकारी यजमानको (ऋतस्य, बृहतः, क्रतोः) सच्चे, बड़े, यज्ञ का (रथीः) नेता (बभूथ) हो जाता है ॥ ऋ० ४ । १० । २ में, तथा यजुः १५ । ४५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ १र २र ३ २ १र २र

(१७७७) एभिर्नो अर्कैर्भवानो अर्वाङ् स्वाऽर्ण ज्योतिः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ३ ॥ [५]

भावार्थः—(स्वः) सूर्य (न) सा (ज्योतिः) ज्योति वाला तू (नः) हमारे (एभिः) इन (अर्कैः) मन्त्रों से वा हव्यों से (विश्वेभिः) अपने सब (अनकैः) तेजों से (नः) हमारे लिये (सुमनाः) मनभावना और (अर्वाङ्) अनुकूल सम्मुख (भव) हो ॥ ऋ० ४ । १० । ३ तथा यजुः १५ । ४६ में भी ॥ ३ ॥

इति उत्तरार्चिके विंशाऽध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीये खण्डे—

प्रगाथात्मकस्य प्रथम सूक्तस्य—प्रस्कण्वऋषिः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१७७८) अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रꣳ राधो अमर्त्य ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥१॥

इस की व्याख्या (४०) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ १र २र ३ १ ३ १ २
(१७७९) जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने
३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
रथीरध्वराणाम् । सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्य,
३ १ २ ३ १ २ ३ २
मस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥ [६]

भावार्थः—(अग्ने) अग्ने ! तू (हि) ही (हव्यवाहनः) हव्य पहुंचाने वाला (दूतः) देवतों का दूत (अध्वराणाम्) यज्ञों का (रथीः) नेता (असि) है । सो तू (जुष्टः) हमसे सेवित हुवा (अश्विभ्याम्) प्राणोदानों, वा सूर्य चन्द्रों, वा द्युलोक पृथिवी लोकों, वा दिन रात्रियों और (उषसा) उषा देवी के साथ (सजूः) मिला हुवा (अस्मे) हम यजमानों में (सुवीर्यम्) सुन्दर वीर्ययुक्त (बृहत्) बड़े भारी (श्रवः) अन्न वा यश को (धेहि) धारण कराव ॥ ऋग्वेद १ । ४४ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृचस्य द्वितीयसूक्तस्य—बृहदुक्थ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३
(१७८०) विधुं दद्राणꣳ समने बहूनां, युवानꣳ
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सन्तं पलितोजगार । देवस्य पश्य काव्यं
३ २उ ३ २ ३ १र २र
महित्वा, ऽद्या ममार स ह्यः समान ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३२५) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २३ १ २ ३ २उ ३ १र
(१७८१) शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण, आ यो महः
२र ३ १र २र २ ३ १ २ ३ २उ ३
शूरः सनादनीडः। यश्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं,
१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र
वसु स्पार्हमुत जेतोतदाता ॥ २ ॥

भावार्थः—(यः) जो (शाक्मना) बल से (शाकः) शक्तिमान् (अरुणः) रक्तवर्ण (सुपर्णः) उत्तम पक्ष वाला=सहायवान् (महः) विशाल देह वाला (शूरः) शूरवीर (सनात्) पुराणा अनुभवी (अनीडः) दुर्ग वा क़िले से बाहर निर्भय रहने वाला हो, वह इन्द्र=राजा (यत्) जो (आचिकेत) प्रतिज्ञा करे (तत्) वह (सत्यम्) सच हो (मोघम्) झूंठ (न) न हो (उत) और (स्पार्हम्) चाहने योग्य (वसु) धन को (जेता) जीतेगा (उत) और (दाता) देवेगा ॥ ऋग्वेद १० । ५५ । ६ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१७८२) ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि, येभिरौक्षद्-
३ १ २ ३ २ १र २र ३ १ २ ३ १
वृत्रहत्याय वज्री। ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न—
२ ३ २ ३ १ २ ३ २
ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥ ३ ॥ [७]

भावार्थः—(ये) जो (देवाः) दिव्य बलशाली शूर लोग (क्रियमानस्य) किये जाते हुवे (कर्मणः) कर्म के (मह्ना) महत्त्व से=पुरुषार्थ से, न कि प्रारब्ध के भरोसे (उद्+अजायन्त) उन्नति को प्राप्त करते हैं, (येभिः) और जिन शूरों से (वज्री) वज्रवान् सेनापति वा राजा (वृत्रहत्याय) दुष्ट शत्रुगण के हननार्थ (औक्षत) बाणादिवृष्टि करता है (एभिः) इन्हीं वीरों से (वृष्ण्या) वीर्ययुक्त (पौंस्यानि) पौरुषों को (ऋतेकर्मम्) सत्यव्यवहार में (आददे) ग्रहण करता है ॥ ऋ० १० । ५५ । ७ में भी ॥ "ऋतेकर्मम्" यह

एक विलक्षण समास किया हुआ वैदिकपद है जो ७ भिन्न २ स्थान के पुस्तकों में, सायणभाष्य और पदपाठ में भी ऐसा ही मिलता है ॥ ३ ॥

अथ पञ्चम तृचस्य—बिन्दुः पूतदक्षो वा ऋषिः। मरुतोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
(१७८३) अस्ति सोमो अयᳪं सुतः पिबन्त्यस्य
३ १ २ ३ ३ ३ १ २ ३ १ ३
मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१७४) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
(१७८४) पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः ।
३ २ ३ १ २
त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ २ ॥

भावार्थः—(मित्रः) मित्र (अर्यमा) अर्यमा (वरुणः) वरुण इन नामों वाले वायुभेद मरुत, (तना) दशापवित्र से (पूतस्य) शोधे हुवे (त्रिषधस्थस्य) १—द्रोणकलश २—आधवनीय ३—पूतभृत इन ३ स्थानों में रक्खे जाने वाले (जावतः) ताज़े अभिषुत सोम को (पिबन्ति) पीते हैं ॥ ऋ० ८ । ९४ । ५ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
(१७८५) उतोन्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः ।
३ १र २र
प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ३ ॥ [८]

भावार्थः—(इन्द्रः) इन्द्रदेव (अस्य) इस (सुतस्य) अभिषुत (गोमतः) इन्द्रियों को शक्ति देने वाले सोम के (जोषम्) सेवन को (आ मत्सति) चाहता है (इव) जैसे (होता) होता नाम वाला ऋत्विज् (प्रातः)

प्रातःसवन में सोम सेवन चाहता है, तद्वत्। (उतो, नु) पाद पूरणार्थ अव्यय हैं ॥ ऋ० ८। ९४। ६ में भी ॥ ३ ॥

अथ प्रगाथात्मकस्य चतुर्थसूक्तस्य—जमदग्निर्ऋषिः। सूर्यो देवता। जगती छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
(१७८६) बण्महाँ असि सूर्य, बडादित्य महाँ असि।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥१॥

इस की व्याख्या (२७६) में हो गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २३ १२ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
(१७८७) बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि, सत्रा देव महाँ असि।
३ २ ३ १ २ ३क २र १ २ १ ३ २उ ३ १२
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो, विभु ज्योतिरदाभ्यम्२[९]

भावार्थः—सूर्य के दृष्टान्त से राजा की प्रशंसा कहते हैं—(सूर्य) सूर्य। तू (बट्) सचमुच (श्रवसा) यश से (महान्) बड़ा (असि) है (सत्रा) सचमुच ही (देव) देव सूर्य। तू (महान्) अन्य लोकों से बड़ा (असि) है (मह्ना) बड़ा होने से तू (देवानाम्) पृथिवी आदि लोकों का (पुरोहितः) पुरोहित है (असुर्यः) असुरों का नाशक है और (अदाभ्यम्) किसी से न नष्ट की जाने वाली (विभु) सर्वत्र फैली (ज्योतिः) ज्योति है ॥ ऋग्वेद ८। १०१। १२ में भी ॥ २ ॥

इति उत्तरार्चिके विंशाऽध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ तृतीये खण्डे—

प्रथम तृचस्य—सुकक्षऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१७८८) उप नो हरिभिः सुतं याहि मदाना पते।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१५०) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१७८९) द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः ।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(यः) जो (इन्द्रः) इन्द्र वा परमेश्वर (वृत्रहन्तमः) मेघ वा पाप का अत्यन्त नाशक (शतक्रतुः) असंख्य कर्मों वाला है वह (द्विता) दो प्रकार का (विदे) जाना जाता है । वृत्रनाशादि उग्र कर्मों से उग्र और जगद्रचनादि शान्तकर्मों से शान्त । (हरिभिः) व्यापक किरणों से (नः) हमारे (सुतम्) अभिषुत सोम को (उप) प्राप्त हो । ईश्वरपक्ष में—(नः) हम में से (सुतम्) स्तुतिकर्त्ता भक्त उपासक को (हरिभिः) व्यापक गुणों से (उप) प्राप्त हो [याहि] क्रियापद पूर्व मन्त्र में आया है, उसी में अन्वय है ॥ ऋ० ८ । ९३ । ३२ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१र २र ३र १र २र ३ १ २
(१७९०) त्वꣳ हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि ।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३ ॥ [१०]

भावार्थः—भौतिकपक्ष में—(वृत्रहन्) मेघहन्ता ! (त्वम्) तू (हि) ही (एषाम्) इन अभिषूयमाण (सोमानाम्) सोमों का (पाता) पीने वाला (असि) है । ईश्वरपक्ष में—(वृत्रहन्) पापनाशक ! (त्वं हि) तू ही (एषाम्) इन हमारे संस्कार किये हुवे (सोमानाम्) सौम्य चित्त के भावों का (पाता) ग्राहक (असि) है । शेष पूर्व मन्त्र के समान है ॥ ऋ० ८ । ९३ । ३३ में भी ॥३॥

अथ द्वितीय तृचस्य—वसिष्ठऋषिः । इन्द्रोदेवता । त्रिपदा विराट् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
(१७९१) प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं

२ १ २ ३ १र २र ३ २
कृणुध्वम् विशः पूर्वीः प्रचर चर्षणिप्राः ॥ ६ ॥

इस की व्याख्या (३२८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
(१७९२) उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त
१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विप्राः ! तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ २ ॥

भावार्थः—(विप्राः) विद्वान् ब्राह्मण (उरुव्यचसे) बहुत विस्तृत (महते) बड़े (इन्द्राय) परमेश्वर वा राजा के लिये (सुवृक्तिम्) सुन्दर प्रशस्ति को (ब्रह्म) वेद द्वारा (जनयन्त) प्रकट करते हैं (धीराः) बुद्धिमान् जन (तस्य) उस परमेश्वर वा राजा के (व्रतानि) नियमों को (न) नहीं (मिनन्ति) तोड़ते ॥ ऋग्वेद ७ । ३१ । ११ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३
(१७९३) इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे
१ २ १ २ ३ २ ३ १
सहध्यै । हर्यश्वाय वर्धया समापीन् ॥ ३ ॥ [११]

भावार्थः—हे मनुष्य ! (हर्यश्वाय) तुरगादि बल वाले राजा वा सबको प्राप्त होने वाली है व्याप्ति जिस की उस परमेश्वर के लिये (आपीन्) सब भाइयों को (संवर्हय) भले प्रकार सुशीलतादि सदाचार से बढ़ा । क्योंकि (सत्रा) सब के (राजानम्) राजा (अनुत्तमन्युम्) जिस का क्रोध किसी से न सहारा जाय वा न हटाया जाय उस (इन्द्रम्) राजा वा ईश्वर को (एव) निश्चय करके (वाणीः) प्रशंसारूप वेदवचन (सहध्यै) शत्रुओं के तिरस्कार करने को (दधिरे) धारित करते हैं अर्थात् तदनुकूलतया प्रवृत्त होते हैं ॥ ऋग्वेद ७ । ३१ । १२ में भी ॥ ३ ॥

अथ तृतीयस्य प्रगाथस्य—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३

(१७९४) यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय । स्तोतार-

१ २ ३ १ २३ १ २

मिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥१॥

इस की व्याख्या (३१०) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

(१७९५) शिक्षेयमिन्महयते दिवे दिवे राय आ कुह

३ १ २ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३

चिद्विदे। न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो

१ २ ३ २ ३ २

अस्ति पिता च न ॥ २ ॥ [१२]

भाषार्थः—(मघवन्) हे सर्वधनपते! परमेश्वर । इन्द्र । मैं (दिवे दिवे) प्रतिदिन (महयते) यज्ञादि परोपकार करने वाले (कुह चिद्विदे) कहीं भी मिलने वाले जन के लिये (रायः) धनों को (आ) सर्वतः (शिक्षेयम्) देऊं (इत्) ही । ऐसी बुद्धि करदो क्योंकि (त्वत्) आप के (-अन्यत्) अतिरिक्त कोई (नः) हमारा (वस्यः) उत्तम (आप्यम्) बन्धु (न हि) नहीं (अस्ति) है (च) और (पिता) पालक भी (न) नहीं है ॥

ऋग्वेद ७ । ३२ । १९ में भी ॥ २ ॥

अथ चतुर्थ तृचसूक्तस्य—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । विराट् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २

(१७९६) श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २

मनीषाम् । कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥ १ ॥

भाषार्थः— हे परमेश्वर ! इन्द्र ! (विपिपानस्य) जल भरे (अद्रेः) मेघ की (हवम्) ध्वनि गर्जना को (श्रुधि) सुनवाइये अर्थात् भले प्रकार वर्षा

कराइये और (गर्वतः) आप की स्तुति करते हुवे (विप्रस्य) मेधावी ब्राह्मण की (मनीषाम्) मति को (बोध) चेताइये (इमा) इन (दुवांसि) हम से की हुई सेवाओं को (अन्तमा) छुद्धिस्थ (सचा) सहायक होते हुवे (कृध्व) कीजिये ॥ ऋ० ७ । २२ । ४ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१७९७) न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य

३ २ १ २ ३ १ २

विद्वान् । सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ २ ॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! मैं सेवक (तुरस्य) दुष्टों के नाशक (ते) तुम्हारी (गिरः) वेदोक्त दृष्टाशाओं को (मृष्ये अपि न) सह भी नहीं सका और (असुर्यस्य) योगिगम्य वा मेघसहायक आप की (सुष्टुतिम्) उत्तम स्तुति को (न) नहीं (विद्वान्) जानता । किन्तु (ते) तुम्हारे (स्वयशः) असाधारण यश वाले (नाम) नाम को (विवक्मि) अनेक प्रकार से कीर्तन करताहूं ॥ वेदादि न पढ़े हुवे प्राणियों को परमेश्वर के नाम स्मरण का माहात्म्य इस में कहा गया है ॥ ऋ० ७ । २२ । ५ में भी ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

(१७९८)भूरि हि ते सवना मानुषेषु, भूरि मनीषी हवते

२ २उ ३ १ २ ३ १ २

त्वामित् । मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥ ३ ॥ [१३]

भावार्थः—(मघवन्) हे सर्वधनवान् ! इन्द्र ! परमेश्वर । (मानुषेषु) मनुष्य-लोकों में (ते) तेरे (सवना) उत्पादन (भूरि) बहुत हों, (इत्) क्योंकि (त्वाम्) तुझ को (मनीषी) विद्वान् उपासक (भूरि) बहुत (हवते) स्तुति पूर्वक भजता है पुकारता है (अस्मत्) हम से (आरे) समीप में सर्वमान तू (ज्योक्) देरी (मा) न (कः) कर शीघ्र हमारी पुकार सुन ॥

ऋग्वेद ७ । २२ । ६ में भी ॥ ३ ॥

इति विंशाऽध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थे खण्डे—

प्रथम तृचस्य—सुदास ऋषिः । इन्द्रो देवता । महापङ्क्तिश्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३१२ २२ ३१२
(१७९९) प्रोष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।
३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां
३ २उ ३ १ २
ज्याका अधि धन्वसु ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अस्मै) इस (इन्द्राय) परमेश्वर वा राजा के लिये अर्थात् उस की प्रसन्नार्थ (पुरः) नगरों (रथम्) सवारियों (उ) और (शूषम्) बल सेना आदि को (सु—प्र—अर्चत) संस्कृत करो । वह (वृत्रहा) पापियों का नाशक (लोककृत्) लोकों को उत्पादक वा वर्धक (समत्सु) संग्रामों में (अभीके चित् उ) कामादि वा पर वीरों के सामीप्य में भी (सङ्गे) मिले हुवे शत्रुबल पर (अस्माकम्) हमारा (चोदिता) प्रेरक (बोधि) हम को चेताता है । जिस से (अन्येषाम्) अन्य दुष्टों की (ज्याकाः) बुरी प्रत्यञ्चायें (अधि धन्वसु) धनुषों पर चढ़ी हुई भी (नभन्ताम्) नष्ट होजावें॥

निघण्टु २ । ९, ३ । २९, २ । १७ । २ । १९ और अष्टाध्यायी ६ । ३ । ८४, ३ । २ । ४८ वा०, ५ । ३ । ७१, ५ । ३ । ७४ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १० । १३३ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१८००) त्वं सिन्धूँ रवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् । तं त्वा
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
परिष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु २

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर! वा राजन्! वा वायुविशेष! (त्वम्) तू (अधराचः) नीचे को प्रवाहित होने वाले (सिन्धून्)नदी नदों वा नहरों को (अवासृजः) उत्पन्न करने वाला है क्योंकि (अहिम्) मेघ को (अहन्) हनन करने वर्षाने वाला है इस से (चार्यम्) जलोपजीवी (विश्वम्) जगत् वा प्रजावर्ग का (पुष्यसि) पालन करता है (अशत्रुः) शत्रुरहित तू (अजिषे) प्रकट होता है (तम्) उक्तगुणविशिष्ट (त्वा) तुझ को (परिष्वजामहे) हम उपासित करते हैं (नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु) पूर्व मन्त्र के समान है ॥ ऋग्वेद १० । १३३ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८०१) वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति ।
१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ
या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका
३ १ २
अधि धन्वसु ॥ ३ ॥ [१४]

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! वा राजन् ! वा वायुविशेष ! (यः) जो (नः) हम को (जिघांसति) मारना चाहता है उस (शत्रवे) हमारे शत्रु के लिये (वधम्) अस्त्र को (अस्ता) फेंकने वाला (असि) है तू । (नः) हमारी (विश्वाः) सब (अर्यः) सामना करने वाली (अरातयः) अदाता शत्रुभूत प्रजायें (वि नशन्त) नष्ट हों और (धियः) बुद्धियें (सु) अच्छी हों (या) जो (ते) तेरी (रातिः) दात है वह (वसु) धन को (ददिः) देने वाली हो । अन्य समान है ॥ ऋग्वेद १० । १३३ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीय तृचस्य—मेधातिथिः प्रियमेधा वा ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ २उ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१८०२) रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः ।

१ २ ३ १ २
प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥ २ ॥

भावार्थः--(हरिवः) हे हरणशील किरणरूप, वा वाणरूप, वा व्याप्तिरूप वा प्राणरूप अश्वों वाले ! इन्द्र ! (रेवतः) तुझ धनी का (स्तोता) स्तुति करने वाला उपासक (रेवान्) धनवान् (स्यात्) होगा, क्योंकि (त्वावतः) तुझसे (मघोनः) धनवान् (सुतस्य) ऐश्वर्यवान् का किसी अन्य का भी स्तोता (प्र, इत्, उ) अवश्य धनी हो जाता है तब तेरे स्तोताओं का तो कहना ही क्या है ॥ ऋग्वेद ८ । २ । १३ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया-

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२
(१८०३) उक्थं च न शस्यमानं नागोरयिराचिकेत ।
१ २ ३ २ ३ १ २
न गायत्रं गीयमानम् ॥ २ ॥

इस की व्याख्या (२२५) में हो चुकी है ॥ २ ॥

अथ तृतीया-

१ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
(१८०४) मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परादाः ।
१ २ ३ १ २
शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥ १ ॥

भावार्थः--(इन्द्र) हे इन्द्र ! तू (पीयत्नवे) हिंसक दुष्ट प्राणी के लिये (नः) हम को (मा) मत (परादाः) छोड़ (मा) और मत (शर्धते) तिरस्कार करते हुये के लिये छोड़, किन्तु (शचीवः) हे बुद्धिभाण्डागार ! (शचीभिः) बुद्धियों से (शिक्ष) हम को शिक्षा दे ॥ ऋ० ८ । २ । १५ में भी ॥३॥

अथ तृतीयतृचस्य--काण्वो नीपातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ॥

तत्र प्रथमा-

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(१८०५) एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
३ १ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३४८) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८०६) अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥

भावार्थः-(अत्र) यहां यज्ञदेश में (एषाम्) इन अभिषवग्रावों की (नेमिः) कोर (वृकः) भेड़िया (उराम्) मेंढी को (न) जैसे (विधूनुते) पीसता है । अतः (दिवावसो) हे स्वर्ग में बसाने वाले ! इन्द्र ! परमेश्वर ! (दिवः) सुखदायी स्थान के (शासतः) राजा (अमुष्य) आपके (दिवम्) सुख को (यय) प्राप्त करावो ॥ सोमयाजी स्वर्ग पाते हैं, यह भाव है ॥ ऋग्वेद ८ । ३४ । ३ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २२
(१८०७) आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥३॥ [१६]

भावार्थः—प्रकरण से—हे इन्द्र ! (सोमी) सोमरस वाला (ग्रावा) सोमाऽभिषवसाधन बट्टा (वदन्) शब्द करता हुवा (घोषेण) अभिषव शब्द से (त्वा) तुझ को (इह) यहां यज्ञ में (आ वक्षतु) बुलावे । शेष पूर्ववत् ॥ ऋग्वेद ८ । ३४ । २ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थं तृचस्य—जमदग्निर्ऋषिः । पवमानः सोमोदेवता । भुरिगार्षी द्विपदा विराड् गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८०८) पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १ ॥

भावार्थः—(सोम) सोमरस ! (मधुमत्तमः) अतिशय मधुररस माक्षिकादिमिश्रित तू (मन्दयन्) हर्ष उत्पन्न करता हुवा (इन्द्राय) वायुविशेष वा राजा वा सूर्य के लिये (पवस्व) शुद्धि कर ॥ ऋ० ९ । ६७ । १६ में भी ॥१॥

अथ द्वितीया—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१८०९) ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥ २ ॥

भावार्थः—(सुतासः) अभिषुत किये हुवे (विपश्चितः) बुद्धितत्वयुक्त बुद्धिवर्धक (शुक्राः) वीर्यवान् वीर्यवर्धक (ते) वे सोम (वायुम्) इन्द्रनामक वायुविशेष को (असृक्षत) उत्पन्न करते बढ़ाते हैं ॥ ऋग्वेद ९ । ६७ । १८ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१८१०) असृग्रन्देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥ ३ ॥ [१७]

भावार्थः—(रथा इव) रथों के समान वेगवान् (वाजयन्तः) यजमान के बल को चाहते हुवे सोम (देववीतये) देवों के भक्षणार्थ (असृग्रन्) अग्नि में छोड़े=होमे जाते हैं ॥ ऋग्वेद ९ । ६७ । १७ में भी ॥ ३ ॥

इति विंशाऽध्याये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमे खण्डे—

प्रथम तृचस्य—परुच्छेप ऋषिः । अग्निर्देवता । अत्यष्टिश्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र
(१८११) अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुंꣳ
२र ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २
सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवाच्या कृपा । घृतस्य
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१॥

इस की व्याख्या (४६५) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
(१८१२) यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र
१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३
मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः। परि ज्मानमिव
१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
द्यांᳫं होतारं चर्षणीनाम्। शोचिष्केशं वृषणं
२ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥

भावार्थः—(शुक्र) श्वेत! उज्ज्वल! (विप्र) बुद्धि तत्त्व के जगाने वाले! अग्ने! (यजमानाः) हम यजमान लोग, (यजिष्ठम्) अत्यन्त यज-नीय—(अङ्गिरसाम्) दहकने वाले अङ्गारे वालों में (ज्येष्ठम्) बड़े (त्वा) तुझ को (मन्मभिः) मननशील (विप्रेभिः) ब्राह्मण ऋत्विजों के साथ (ज्मभिः) मन्त्रों से (हुवेम) हवन करते हैं। (विशः) बैठने वाली (विशः) प्रजायें (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (होतारम्) होता—(परि) सर्वतः (ज्मानम्) गतिमान् (द्याम्) द्युलोक वा सूर्य के (न) समान (शोचिष्केशम्) चमकीले केशों सी किरणों वाले—(वृषणम्) वर्षा करने वाले (यम्) जिस अग्नि को (जूतये) स्वर्गादि अभिमत फलप्राप्ति के लिये (प्राऽवन्तु) बाहुल्य से रक्षा करें॥ निरुक्त ३। १७ का सायणोद्धृत प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥

ऋग्वेद १। १२७। २ में भी ॥२॥

अथ तृतीया—

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८१३) स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति
३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः। वीडु चिद्यस्य समृतौ
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम्। निष्षहमाणो यमते नायते
३ २ ३ १ २
धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥ [१८]

* इति नवमस्य प्रथमोऽर्धं प्रपाठकः

भावार्थः—(सः) वह अग्नि (हि) ही (विरुक्मता) विशेष प्रकाश वाले (ओजसा) बल से (दीद्यानः) प्रकाशमान हुवा (पुरूचित्) बहुत ही (द्रुहन्तरः) द्रोह करने वाले प्राणियों को पार करने वाला (भवति) है (न) जैसे (परशुः) फरसा (द्रुहन्तरः) शत्रुओं को पार करने वाला होता है, तद्वत् । (यस्य) जिस अग्नि के (समृतौ) संयम होते ही (वीडु) दृढ (चित्) भी (यत्) जो (स्थिरम्) स्थिर पदार्थ हो वह भी (वनेव) पानी सा (श्रुवत्) सुन पड़ेगा, नष्ट होता हुवा । (निष्पहःमाणः) शत्रुओं के निःशेष करके तिरस्कार करता हुवा अग्नि (यमते) उपरत होता है (न अयते) नहीं हटता (धन्वासहाः) धनुर्धारी शत्रु के अभिभव करने वाला (न) सा (अयते) चलता है ॥ ऋ० १ । १२७ । ३ में भी ॥ ३ ॥

इति श्रीगल्कपवंशावतंस श्रीमान् पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र परीक्षितगढ़ (ज़िला—मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत सतरार्चिक सामवेदभाष्य में बीसवां अध्याय समाप्त हुवा ॥ २० ॥

---

* "सर्वमूलग्रन्थ—संमतोऽयं पाठः । तथा च यथावत् रीत्याऽत्रैव सायणीय विंशाऽध्यायस्य विरामः प्रतिपद्येत, स्याच्चैवमस्य द्वाविंशाऽध्यायसमाप्तिता, परं नैतत्साचार्येण तेन भाष्यकृता विवरणकृता च नयनाञ्जलेनैकवारमप्यवलोकित मिति हन्तोयम् " इति सत्यव्रतः सामश्रमी ॥

ओ३म्

अथैकविंशाऽध्यायः

तत्र

षड्चात्मक प्रथमसूक्तस्य—अग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। १, ३, ४ पङ्क्तिः, २ भुरिक् पङ्क्तिः, ५ संस्तारपङ्क्तिः, ६ विराट् त्रिष्टुप् च छन्दः॥ तत्र प्रथमा—

२ ३ २३ २ ३ २ ३१ २ ३१ २
(१८१४) अग्ने तव श्रवो वयोमहि भ्राजन्ते अर्चयो

१२ ३ १२३ १ २३ २
विभावसो। बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं३

१ २ ३ १२
दधासि दाशुषे कवे॥ १॥

भावार्थः—(अग्ने) अग्ने! (तव) तेरा (वयः) हव्य अन्न (श्रवः) कीर्त्तनीय है (विभावसो) विशेष प्रकाशरूप धन वाले अग्ने! (कवे) वृष्टि-सहायक! तेरी (अर्चयः) ज्वालायें (महि) बहुत (भ्राजन्ते) प्रकाशती हैं (बृहद्भानो) हे प्रौढदीप्ते! (शवसा) बल के सहित वर्त्तमान (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (वाजम्) अन्न को (दाशुषे) देने वाले यजमान के लिये (दधासि) तू धारण करता=देता है॥ ऋ० १०। १४०। १ यजुः १२। १०६ में भी॥ १॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३१ २ ३ १२ ३ १२ ३१२
(१८१५) पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना।

३२ ३ १२ ३२३ १ २ ३२ ३ १२ ३२
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे॥२॥

भावार्थः—(पावकवर्चाः) शोधक किरणों वाला (शुक्रवर्चाः) निर्मल श्वेत किरणों वाला (अनूनवर्चाः) पूरे तेज वाला अग्नि (भानुना) लपट से (उदियर्षि) ऊपर को जाता है और (मातरा) मातृतुल्य दो अरणियों वा द्युलोक भूलोकों में (पुत्रः) पुत्र के समान (विचरन्) विचरता हुवा

(उपाऽवसि) उपगत यजमानों की रक्षा करता और (उभे) दोनों (रोदसी) द्यावाभूमी को (पृणक्षि) भरता है=हव्य से द्युलोक और वर्षा से भूलोक को ॥ ऋ० १० । १४० । २ यजुः १२ । १०७ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(१८१६) ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वे इषः संदधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ ३ ॥

भावार्थः—(ऊर्जः) बल के (नपात्) न गिराने वाले ! रक्षक ! (जातवेदः) ज्ञान=प्रकाश के उत्पन्न करने और फैलाने वाले ! अग्ने ! (सुशस्तिभिः) उत्तम स्तुतिमन्त्रों के साथ (धीतिभिः) अङ्गुलियों से (हितः) आधान किया हुवा=स्थापित किया हुवा तू (मन्दस्व) प्रदीप्त हो (भूरिवर्पसः) अनेक देशोत्पन्न होने से अनेक रूपों वाले (चित्रोतयः) विचित्र रक्षा वाले (वामजाताः) कमनीय जन्म वाले यजमान लोग (त्वे) तुझ में (इषः) हव्यों को (संदधुः) होमें ॥ ऋग्वेद १० । १४० । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी—

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २

(१८१७) इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥४॥

भावार्थः—(अमर्त्य) देव ! (अग्ने) अग्ने ! (इरज्यन्) ऐश्वर्य करता हुवा तू (जन्तुभिः) अपने जायमान तेजों से (अस्मे) हमारे (रायः) धन धान्यादि को (प्रथयस्व) बढ़ा । (सः) वह तू (दर्शतस्य) दर्शनीय (वपुषः) रूप के [मध्य में] (विराजसि) अपना ऐश्वर्य करता है और (दर्शतम्) दर्शनीय कमनीय (क्रतुम्) यज्ञ को (पृणक्षि) संपृक्त करता=फल से संयुक्त करता है ॥ निघण्टु २ । २१, ३ । ७ अष्टाध्यायी ५ । १ । ३९, ६ । १ । १११ के प्रमाण और ऋ० १० । १४० । ४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८१८) इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳराधसो
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
महः। रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि
३ २ ३ २
सानसिꣳ रयिम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—(अध्वरस्य) हिंसारहित यज्ञ के (इष्कर्त्तारम्) संस्कार करने वाले, (प्रचेतसम्) बहुत चेताने वाले, (महः) बड़े (राधसः) धन धान्यादि के (क्षयन्तम्) ऐश्वर्य करने वाले, (वामस्य) कमनीय पदार्थ के (रातिम्) दाता [अग्नि की प्रशंसा करता हूं। वह तू अग्नि] (सुभगाम्) ऐश्वर्यशालि (महीम्) बड़े (इषम्) अन्न को तथा (सानसिम्) भजनीय (रयिम्) धन को (दधासि) धारण करता है ॥

अष्टाध्यायी ३।१।८५ निघण्टु २।२१ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥

ऋग्वेद १०।१४०।५ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१८१९) ऋतावानं महिषं विश्वदर्शत—मग्निꣳ सुम्नाय
३ १र २र १ २ ३ १ २
दधिरे पुरो जनाः। श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा
३ २उ ३ १ २ ३ २
गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ ६ ॥ [१]

भावार्थः—अग्ने ! (जनाः) यजमानलोग (ऋतावानम्) यज्ञ वाले (महिषम्) बड़े वा अर्चनीय (विश्वदर्शतम्) सब को दिखाने वाले (त्वा) तुझ (अग्निम्) अग्नि को (सुम्नाय) सुखप्राप्ति के लिये (पुरः) आगे (दधिरे) आधान की रीति से रखते हैं वा आहवनीय रूप से पूर्व दिशा में आधान करते हैं (श्रुत्कर्णम्) सुनने वाले हैं कान जिस के उस (सप्रथस्तमम्) अति विस्तार्यमाण (दैव्यम्) हवि पहुंचाने वाला होने से देवों

के संम्बन्धी तुझ को (गिरा) मन्त्रपूर्वक (मानुषा युगा) मनुष्यों के जोड़े पत्नी और यजमान मिल कर आधान करते हैं ॥

अष्टाध्यायी ५ । २ । १२२, ६ । २ । १०६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥

ऋग्वेद १० । १४० । ६ में भी ॥ ६ ॥

इति एकविंशाऽध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ द्वितीये खण्डे—प्रगाथस्य प्रथम सूक्तस्य—सौभरिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । ककुप्छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
(१८२०) प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति

१ २ २ ३ २ २ १र १र
वाजकर्मभिः । यस्य त्वꣳसख्यमाविथ ॥१॥

इस की व्याख्या (१०८) में होगई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८२१) तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवाददे ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपोवस्तुषु राजसि ॥२॥[२]

भावार्थः—(सिष्णो) हे सोम से हूयमान अग्ने । (तव) तेरा (द्रप्सः) द्रवीभूत (नीलवान्) नीलधूम में परिणत (वाशः) कमनीय (ऋत्वियः) वसन्तादि ऋतु का उपजा हुवा (इन्धानः) प्रदीप्त करता हुवा (आददे) होमार्थ जुहू आदि पात्रों में ग्रहण किया जाता है । (त्वम्) तू (महीनाम्) विस्तृत (उषसाम्) उषाओं का (प्रियः) प्यारा (असि) है " उषःकाल में होमार्थ अग्नि प्रज्वलित किये जाते हैं " सायणाचार्य । (क्षपः) रात्रि के (वस्तुषु) घटपटादि वस्तुओं पर (राजसि) प्रकाश करता है ॥

ऋग्वेद ८ । १९ । ३१ में भी ॥ २ ॥

अथैकर्चद्वितीयसूक्तस्य—अरुणऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥ सेयम्—

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १
(१८२२) तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं

२ ३ १ २ १र २र ३ २ ३ १ २
जनयन्त मातरः । तमित्समानं वनिनश्च

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥१॥ [३]

भावार्थः—(ओषधीः) यवादि ओषधियें (तम्) उस ऋत्वियम्) अपने ऋतुसमयी (गर्भम्) गर्भ को (दधिरे) धारण करती हैं (तम् अग्निम्) उस अग्नि को (मातरः) माता रूप (आपः) जल [वाडवाऽनलरूप से] (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं (समानम्) ऐसे ही (तम्) उस को (इत्) ही (वनिनः) वन की (वीरुधः) वनस्पीतयें (च) भी (विश्वहा) सब दिनों (अन्तर्वतीः) गर्भ में धारण करतीं (च) और (सुवते च) जनती भी हैं ॥ ऋग्वेद १० । ९१ । ६ में भी ॥ १ ॥

अथैकर्चस्य चतुर्थसूक्तस्य—अग्निः प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ सेयम्—

३ १र २र ३ २ ३ १र २र
(१८२३) अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो विराजति ।

१ २ ३ १ २
महिषीव विजायते ॥ १ ॥ [४]

भावार्थः—(अग्निः) यज्ञों में अग्रणी होने वाला अग्नि (इन्द्राय) देवों के लिये (पवते) हमारे दिये हव्य से अधिकाऽधिक सेचन करता है (शुक्रः) बलवीर्यवान् अग्नि (दिवि) आकाश में (विराजति) विराजता है और दृष्टान्त—(महिषीव) भैंस के समान=जैसे भैंस तृणादि पाकर अनेक प्रकार के दुग्ध घृतादि पदार्थ उत्पन्न करती हैं, वैसे अग्नि हव्य पाकर देवों के निमित्त अनेक प्रकार के अन्नादि उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

अथैकर्चस्य पञ्चमसूक्तस्य—अवत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः ॥ सेयम्—

२ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३
(१८२४) यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार

२ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
तमु सामानि यन्ति । यो जागार तमयꣳसोम

३ २ ३ १२ ३ १ २

आह तवाहमस्मि सख्ये न्योका: ॥ १ ॥ [५]

भावार्थः—(यः) जो मनुष्य (जागार) जागता है (तम्) उस को (ऋचः) ऋग्वेदमन्त्र (कामयन्ते) चाहते हैं (यः) जो (जागार) जागता है (तम्) उस को (उ) ही (सामानि) सामवेदवचन (यन्ति) प्राप्त होते हैं (यः) जो (जागार) जागता है (तम्) उस को (अयम्) यह (सोमः) सोमादि ओषधिगण (आह) कहता है कि (अहम्) मैं (न्योकाः) नियत स्थान वाल (तव) तेरी (सख्ये) मैत्री में (अस्मि) हूं ॥

जो पुरुष आलसी निद्रालु बहुत सोने वाले पुरुषार्थरहित हैं उन को न तो ऋग्वेदादि से ज्ञान प्राप्त होता है, न सोमादि ओषधियें काम देती हैं, परन्तु जो निरालस्य पुरुषार्थी जागरूक पुरुष हैं उन को वेद फली भूत होते हैं और सोमादि ओषधिगण हितार्थ सामने हाथ जोड़े खड़े रहते हैं कि हम तुम्हारे ही लिये हैं और तुम्हारे ही हैं। इस वेदाज्ञा के पालनार्थ मनुष्य मात्र को पुरुषार्थी आलस्यरहित होना योग्य है ॥ ऋ० ५ । ४४ । १४ में भी ॥१॥

अथैकर्चस्य षष्ठसूक्तस्य—ऋष्यादयः पूर्ववत् ज्ञेयाः ॥ सेयम्—

३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ २३

(१८२५) अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३

सामानि यन्ति । अग्निर्जागार तमयꣳ सोम आह

२ ३ १ २ ३ १ २

तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १ ॥ [६]

भावार्थः—(अग्निः) अग्नि (जागार) जागता है (तम्) उस को (ऋचः) ऋचायें (कामयन्ते) चाहती हैं (अग्निः) अग्नि (जागार) जागता है (तम्) उस को (उ) ही (सामानि) साम (यन्ति) प्राप्त होते हैं (अग्निः) अग्नि (जागार) जागता है (तम्) उस को (अयम्) यह (सोमः) ओषधिगण (आह) कहाता है कि (अहम्) मैं (न्योकाः) नियतस्थानस्थित (तव) तेरी (सख्ये) मित्रता में (अस्मि) हूं ॥

भाव यह है कि पूर्वमन्त्र में जो जागरणशील होने की महिमा कही थी, अब इस मन्त्र में यह बताया है कि जो जागरूक रहना चाहते हैं और ज्ञान

तथा कर्म से अपना और संसार का भला करना चाहते हैं, उन को अग्नितत्त्व का बाहुल्य से सेवन और प्रयोग समझ कर करना चाहिये क्योंकि अग्नि ही प्रकाश का हेतु, अन्धकार आलस्य नपुंसकता=पुरुषार्थहीनता का नाशक इत्यादि विशेषणविशिष्ट होने से सर्व होमादि और औषधप्रयोग तथा शिल्प कलाकौशल में प्रयुक्त होकर मनुष्यों को जागरण का फल देता है ॥

ऋग्वेद ५ । ४४ । १५ में भी ॥ १ ॥

अथ सप्तमस्य तृचसूक्तस्य—मृग ऋषिः * । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३

(१८२६) नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः ।

३ १र २र ३ १ २

युञ्जे वाचꣳ शतपदीम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(पूर्वसद्भ्यः) पहले से विराजमान (सखिभ्यः) मित्रों को (नमः) नमस्कार करता हूं (साकंनिषेभ्यः) साथ २ आकर बैठे मित्रों को भी (नमः) नमस्कार । (शतपदीम्) असंख्य पदों की (वाचम्) प्रशस्त वाणी का (युञ्जे) प्रयोग करता हूं ॥

सभा आदि वा यज्ञ में सदस्यों को नमस्कार करने का क्या उत्तम उपदेश मधुर शब्दों में वेद में दिया है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१८२७) युञ्जे वाचꣳ शतपदीं गाये सहस्रवर्त्तनि ।

३ १र २र ३ १ २

गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥ २ ॥

भावार्थः—(शतपदीम्) अनेक पदों वाली मनोहर श्रवणप्रिय (वाचम्) वाणी को (युञ्जे) बोलता प्रयुक्त करता हूं, (सहस्रवर्त्तनि) अनेक प्रकार के

* जीवानन्दविद्यासागरमुद्रापितपुस्तकभिन्नेषु न केष्वपि मूलसभाष्यपुस्तकेषु दृश्यते ऋषिदैवतं, तत एव यथायथमस्माभिरुद्धृतं, परं न देवताया व्याख्यानं मन्त्रे दृष्टचरम् ॥ तु० रा०

रामों में (गायत्रम्) गायत्री छन्द के (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द के और (जगत्)
जगती छन्द के सामों को (गाये) गाता हूं ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१८२८) गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा रूपाणि संभृता ।
३ १र २र ३ २
देवा ओकांꣳसि चक्रिरे ॥ ३ ॥ [७]

भावार्थः–(विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों को (संभृता) धारण करने
वाले (गायत्रं त्रैष्टुभं जगत्) गायत्री त्रिष्टुप् जगती छन्दों को (देवाः) देवों
ने (ओकांसि) निवासस्थान (चक्रिरे) कर लिया है ॥ ३ ॥

इदानीं ज्योतींषि ज्योतिष्टोमे इति विवरणकारः ॥
अथाष्टमस्य तृचसूक्तस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ।

तत्र प्रथमा–

३ २उ ३ १ २३ २उ ३ २ ३ १ २
(१८२९) अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥

भावार्थः–(अग्निः) अग्नि (ज्योतिः) ज्योतिरूप है, काष्ठादि रूप
नहीं । (ज्योतिः) ज्योति (अग्निः) अग्निरूप है, तद्भिन्न नहीं । (इन्द्रः)
अन्तरिक्षस्थान देवगणान्तर्गत वायुविशेष वा विद्युद्विशेष इन्द्र (ज्योतिः)
एक प्रकार का प्रकाश है (ज्योतिः) वह ज्योति (इन्द्रः) इन्द्र कहाता है ।
(सूर्यः) सूर्यलोक (ज्योतिः) प्रत्यक्ष ज्योतिरूप है (ज्योतिः) वह ज्योति
(सूर्यः) सूर्य कहाता है ॥ इस मन्त्र में इन्द्र सूर्य और ज्योति की एकात्मता
बताई गई है ॥

यजुर्वेद ३ । ९ में भी पाठभेद से यह ऋचा पाई जाती है, वहां भाष्य-
कार महीधर कहते हैं कि " यहां से आरम्भ करके ' उपप्रयन्तः ' से पूर्व
अग्निहोत्र होम के मन्त्र हैं । सामान्य से इन मन्त्रों का प्रजापति ऋषि है
परन्तु जहां अनुक्रमणीकारों ने ऋषिविशेष कहा है वहां दोनों भी ऋषि समझने
चाहियें (एक अनुक्रमणीकारोक्त, दूसरा प्रजापति सामान्य से) " इत्यादि ॥१॥

अथ द्वितीया–

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(१८३०) पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा ।
१ ३ ३ १ २
पुनर्नः पाह्य ँहसः ॥ २ ॥

भावार्थः–अग्निहोत्र नित्य करने का फल–(अग्ने) अग्नि ! (पुनः) बारं बार (ऊर्जा) दुग्ध घृतादि रस के साथ (निवर्त्तस्व) हम को अभिमुख करके आवे (इषा) अन्न यव गोधूमादि (आयुषा) आयु के रक्षक वा प्राणों के रक्षक के साथ (पुनः) बारं बार प्राप्त होवे । (पुनः) बारं बार (नः) हम यजमानों को (अंहसः) पापरोगादि शत्रु से (पाहि) बचावे ॥ यजुर्वेद १२ । ९ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया–

३ २ ३ १र २ १र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८३१) सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ३ ॥ [८]

भावार्थः–(अग्ने) अग्नि ! तू (रय्या) रमणीय धन के (सह) साथ (निवर्त्तस्व) हमारे पास लौटआ, और (विश्वतः) सब से (परि) उपरि वर्तमान (विश्वप्स्न्या) अपनी विश्वव्यापिनी (धारया) घृतादि की धार से (पिन्वस्व) पुष्ट हो ॥ यजुर्वेद १२ । १० में भी ॥ ३ ॥

इति एकविंशाऽध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

अथ तृतीये खण्डे प्रथम तृचस्य–गोषूक्तिरश्वसूक्तिर्वा ऋषिः ।
इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा–

१ २ ३ २उ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २
(१८३२) यदिन्द्राऽहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
३ २ ३ १ २
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१२२) में हो चुकी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८३३) शिक्षेयमस्मै दित्सेयᳲं शचीपते मनीषिणे ।
२ ३ १र २र ३ २
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(शचीपते) हे बुद्धि के स्वामी! इन्द्र ! (यद्) यदि (अहम्) मैं (गोपतिः) जितेन्द्रिय वाणी का पति (स्याम्) हो जाऊं तो (अस्मै) इस उपस्थित (मनीषिणे) बुद्धिमान् जिज्ञासु को (शिक्षेयम्) शिक्षा दूं और (दित्सेयम्) दान की इच्छा करूं ॥ ऋग्वेद ८ । १४ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(१८३४) धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।
१र २र ३ १ २
गामश्वं पिप्युषीदुहे ॥ ३ ॥ [९]

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (ते) आप की (धेनुः) वेदवाणी रूपिणी गौ (सूनृता) सच्ची (पिप्युषी) वृद्धि करने वाली (सुन्वते) सोमयाजी (यजमानाय) यजमान के लिये (गाम्) गौ (अश्वम्) घोड़े इत्यादि धन को (दुहे) दुहती=भरपूर करती है ॥ ऋ० ८ । १४ । ३ में भी ॥ ३ ॥

अथ द्वितीय तृचस्य—त्रिशिराः सिन्धुद्वीपो वा ऋषिः । आपोदेवताः । गायत्री छन्दः ॥ तत्र प्रथमा—

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८३५) आपो हिष्ठा मयोभुवस्तानऊर्जे दधातन ।
३ १र २र ३ १ २
महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥

भावार्थः—(आपः) जल (हि) निश्चय (मयोभुवः) सुखदायक (स्थ) हैं (ताः) वे (नः) हम को (ऊर्जे) रस के लिये (महे) और बड़े (रणाय) रमणीय (चक्षसे) दर्शन के लिये (दधातन) धारण करें ॥ निरुक्त ९ । २७ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १० । ९ । १ यजुः ११ । ५० में भी ॥१॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१८३६) योवः शिवतमोरसस्तस्य भाजयतेह नः ।

३ १ २ ३ १ २

उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥

भावार्थः—(वः) तुम जलों का (यः) जो (शिवतमः) अति सुखदायी (रसः) रस है (अस्मान्) हम को (तस्य) उस रस का (भाजयत) सेवन करावो (इव) जैसे (उशतीः) पुत्र की भलाई चाहती हुई (मातरः) मातायें पुत्रों को दुग्ध का सेवन कराती हैं तद्वत् ॥ ऋ० १० । ९ । २ में तथा यजुः ११ । ५१ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २

(१८३७) तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

१ २ ३ १ २

आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ [१०]

भावार्थः—(आपः) जलो ! तुम (यस्य) जिस अशुद्ध्यादि पाप के (क्षयाय) नाशार्थ (वः) तुम को, हम (अरम्) पूर्णतया (गमाम) प्राप्त करते हैं (तस्मै) उस अशुद्ध्यादि नाश के लिये (जिन्वथ) प्रसन्न तृप्त करो (च) और (नः) हम विधिपूर्वक जल का सेवन करने वालों को (जनयथ) उत्पन्न करो सन्तानों से बढ़ावो ॥

जो मनुष्य विधिपूर्वक जल का सेवन करते हैं, वे सर्वाङ्गशुद्ध नीरोग होते हुवे पुत्रादि सन्तति से बढ़ते हैं ॥ ऋ० १० । ९ । ३ तथा यजुर्वेद ११ । ५२ में भी ॥३॥

अथ तृतीय तृचस्य—वातायन उल ऋषिः । वायुर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(१८३८) वात आ वातु भेषजꣳ शंभु मयोभु नो हृदे ।

२ ३ १ २

प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (१८४) में हो गई है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
(१८३९) उत वात पिताऽसि न उत भ्रातोत नः सखा ।
१ २ २ १ २
स नो जीवातवे कृधि ॥ २ ॥

भावार्थः—(उत) और (वात) हे वायो ! तू (नः) हमारा (पिता) पालक (उत) और (भ्राता) सहायक (उत) और (नः) हमारा (सखा) मित्र हित कर (असि) है (सः) वह तू (नः) हम को (जीवातवे) जीवन के लिये (कृधि) समर्थ कर ॥

यथाविधि वायु का सेवन करने वालों का वायु ही पिता भ्राता और मित्र के समान गुणकारी उपकारी होकर उन को दीर्घजीवन देता है। वायु जीवन है। इस में सन्देह नहीं ॥ ऋग्वेद १० । १८६ । २ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८४०) यददो वात ते गृहेऽ३ऽमृतं निहितं गुहा ।
१ २ ३ १ २
तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ३ ॥ [११]

भावार्थः—(वात) वायो ! (यत्) जो (अदः) यह (गुहा) छिपी जगह में (निहितम्) रक्खा हुवा (ते) तेरे (गृहे) घर=फेफड़ों में (अमृतम्) जीवन है, (तस्य) उस अमृत=जीवन का (नः) हम को (जीवसे) जीवित रहने के लिये (धेहि) धारण कराव ॥ ऋ० १० । १८६ । ३ में भी ॥३॥

अथ चतुर्थतृचस्य—सुपर्णऋषिः । * सूर्यो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
(१८४१) अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रंहिरण्ययं

* ऋषिछन्दोदैवतं, जीवानन्दमुद्रापितपुस्तके यथादृष्टमेव विन्यस्तं, नान्यद्बीजमुपलभे (तु० रा०)

२ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १र
विभ्रद्रत्कं सुपर्णः । सूर्यस्य भानुमृतुथा
२र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
वसानः परि स्वयंमेधमृज्रो जजान ॥ १ ॥

भावार्थः—(वाजी) बलवान् (विश्वरूपः) सब को रूपवान् करने वाला, (सुपर्णः) सुन्दर ज्वालारूप परों वाला, (ऋतुथा) प्रत्येक ऋतु में (सूर्यस्य भानुम्) सूर्य की किरणों को (वसानः) वस्त्र के समान परिधान करता हुवा, (हिरण्ययम्) तेजोमय (अत्कम्) अपने तेज से भरपूर (जनित्रम्) उत्पत्ति के स्थान अरणि रूप बिल को (बिभ्रत्) पुष्ट करता हुवा, (ऋज्रः) दाहक पाचक अग्नि (स्वयम्) अपने आप (मेधम्) यज्ञ को (परि) सर्वतः (अभि) लक्ष्य करके (जजान) उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३
(१८४२) अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
यत्संबभूव । अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः
१र २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥ २ ॥

भावार्थः—(यत्) जो (अप्सु) जलों में (रेतः) बीजरूप (शिश्रिये) आश्रित है और जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में (अधि) अधिक्य से (संबभूव) उत्पन्न होता है वह (विश्वरूपम्) अनेक [२४] रूपों वाला (तेजः) तेजस्वी, (वृष्णः अश्वस्य रेतः) वर्षा करने वाली बिजुली का वीर्य सोम (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (स्वम्) अपने (महिमानम्) महत्व को (मिमानः) फैलाता हुवा (कनिक्रन्ति) अग्नि में हुत होता हुवा शब्द करता है ॥

सायणाचार्य ने सोम के जलों में लीन रहने और बिजुली का वीर्य होने में दो श्रुतियें प्रमाण में प्रस्तुत की हैं उन को संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१८४३) अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य

३ २ ३१ २ ३ १ २३१ २३१ २
भानुं यज्ञो दधार। सहस्रदाः शतदा भूरिदावा,
३ २ ३१२ २२ ३ १ २
धर्त्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥३॥ [१२]

भावार्थः—(अयम्) यह (यज्ञः) यज्ञ वा अग्नि (युक्ता) अपने साथ जुड़े हुवे (सहस्रा) सहस्रों किरण जालों को (परि) सब ओर (वसानः) पहरे हुवे (सूर्यस्य) सूर्य के (भानुम्) प्रकाश को (दधार) धारण करता है (सहस्रदाः) सहस्रों का दाता (शतदाः) सैकड़ों का दाता (भूरिदावा) कहां तक कहें अपरिमित फलों का दाता (दिवः धर्त्ता) अन्तरिक्षस्थ मेघ मण्डलादि का धर्त्ता (भुवनस्य) जगत् की (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक है ॥ ३ ॥

"इदानीं परिमदोऽहर्गणेषु यदेतेषु क्षिप्रेषु यज्ञपात्रेषु त्रिः छन्दोगः परिगायेत् 'नाके सुपर्णम्' इति" इति विव०॥

अथ पञ्चमतृचस्य—वेनोभार्गव ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३२३ ३१२ २२ ३१२ २२
(१८४४) नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तꣳ हृदा वेनन्तो
३ १ २ १ २ ३ १२ ३ २
अभ्यचक्षत त्वा। हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं
३ २ ३ १ २ ३१ २३ २
यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ १ ॥

इस की व्याख्या (३२०) में होगई है ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२
(१८४५) ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ् चित्रा
२२३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
बिभ्रदस्यायुधानि। वसानो अत्कꣳ सुरभिं दृशे
१२ २२ ३ १ २
कꣳ स्वा३र्ण नाम जनत प्रियाणि ॥ २ ॥

भावार्थः—(नाके अधि) द्युलोक में (ऊर्ध्वः) ऊपर (गन्धर्वः) सूर्य (अस्थात) स्थित है, जो (चित्रा) नाना रङ्ग के विचित्र (अस्य) इस के (आयुधानि) शस्त्रास्त्रवत् प्रहार के साधन किरणों को (बिभ्रत्) धारण कर रहा है और (दृशे) संसार को दिखाने के लिये (सुरभिम्) सुन्दर (कम्) सुखद (अत्कम्) व्यापने वाले स्वरूप को (वसानः) धारण कर रहा है तथा (नाम) नम्र (प्रियाणि) प्यारे जलों को (जनत) उत्पन्न करता है वर्षा द्वारा (न) जैसे (स्वः) अन्तरिक्ष में हैं वैसे ॥ ऋ० १० । १२३ । ७ में भी ॥ सायणाचार्य के दिये प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ २ ३ १र १र ३ २ ३ १ २ ३
(१८४६) द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन्गृध्रस्य
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
चक्षसा विधर्मन् । भानुः शुक्रेण शोचिषा
३ २ ३ १ १ ३ १ २ ३ १ २
चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥३॥ [१३]

इति नवमस्य द्वितीयोऽर्धप्रपाठकः ॥

भावार्थः—(भानुः) सूर्य (द्रप्सः) अपनी कक्षा में वेग से दौड़ने घूमने वाला (विधर्मन्) विधारक अन्तरिक्ष में (गृध्रस्य) गीध के से दूर का देखने वाली (चक्षसा) दृष्टि से (पश्यन्) दिखाता हुवा (शुक्रेण शोचिषा) उज्ज्वल ज्योति से (चकानः) चमकता हुवा (यत्) जिस कारण से (तृतीये) तीसरे (रजसि) द्युलोक में (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को चारों ओर करके (जिगाति) घूमता है इस कारण से (प्रियाणि) लोक में हितकारी कामों को (चक्रे) करता रहता है ॥ ऋ० १० । १२३ । ८ में भी ॥ ३ ॥

इति एकविंशाऽध्यायस्य तृतीयः खण्डः॥ ३ ॥

"समाप्तानि एकाहाऽहीनसत्रप्रायश्चित्तक्षुद्रकल्पेषु सामानि छन्दोगानां मन्त्रभूतानि०" इत्यादि विवरणकारः॥

इति श्रीमत्कण्ववंशावतंस श्रीमान् पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र
परीक्षितगढ़ (ज़िला—मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत
उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में इक्कीसवां अध्याय
समाप्त हुवा ॥ २१ ॥

ओ३म्

अथ द्वाविंशाऽध्यायः

तत्र

प्रथमे खण्डे प्रथमतृचस्य—प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्रोदेवता। त्रिष्टुप् छन्दः।

तत्र प्रथमा—

३ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३ १र
(१८४७) आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः
२र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
क्षोभणश्चर्षणीनाम्। संक्रन्दनोऽनिमिष एक-
३ २ ३ १र २र ३ १र २र
वीरः शतꣳ सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥ १ ॥

भावार्थः—इन्द्र=राजा का वर्णन करते हैं—(इन्द्रः) इन्द्रदेव (आशुः) शीघ्रकारी फुरतीला (शिशानः) तीक्ष्ण (वृषभः न भीमः) सांड के समान डरावना (घनाघनः) प्रहार करने में चतुर (चर्षणीनां क्षोभणः) मनुष्यों के मध्य में क्षोभ वाला (संक्रन्दनः) विधिपूर्वक शत्रु पर प्रहार करने वाला (अनिमिषः) आलस्यप्रमादरहित (एकवीरः) अद्वितीय शूरवीर (शतं सेनाः) असंख्य सेनाओं को (साकम्) एक साथ (अजयत्) जीतता है ॥

मध्यस्थान देवगणान्तर्गत इन्द्र सब देवों का राजा है, वह राजसी शक्ति वाला है, मनुष्यों में भी जिन २ में ऊपर कहे मन्त्र के गुण होते हैं वे सब भी इन्द्रतत्त्व की प्रधान सहायता और प्रसाद से होते हैं, उन्हीं गुणों से राजा, राजा का सेनापति और शूरवीर राजपुरुष इन्द्रपदवाच्य होता है, जहां तक उस में इन्द्रत्व हो उतने अंश में यह बात चरितार्थ होती है ॥

कर्मकाण्ड विषय में विवरणकार कहते हैं कि "अब साग्निचित्य क्रतु में ब्रह्मा अप्रतिरथ का जप करे। इस कथन वाला ब्रह्मापन त्रयी विद्या से किया जाता है। इस कारण से उद्गात्रों को भी मास की परिसमाप्ति से ब्रह्मापन माना गया है। इस कारण सब शाखाओं में अप्रतिरथ पढ़ा जाता है। सब (अप्रतिरथ) का इन्द्र देवता, प्रजापति ऋषि और त्रिष्टुप् छन्द है" ॥

सायणाचार्य कहते हैं कि "यहां ऐन्द्र अप्रतिरथ ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द और इन्द्र देवता है। साग्निचित्य क्रतु में अग्निप्रणयन के समय ब्राह्मण को यह अध्याय जपना चाहिये" ॥

श्रीमान् स्वामी दयानन्दसरस्वती जी यजुर्वेदभाष्य में कहते हैं कि "अथ सेनापति के कृत्य बताते हैं" ॥ ऋ० १०।१०३।१ यजुर्वेद १७।३३ में भी है ॥१॥

अथ द्वितीया—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१८४८) संक्रन्दनेनाऽनिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण

३ १ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २

दुश्च्यवनेन धृष्णुना। तदिन्द्रेण जयत तत्स-

३ १ २ ३ १२ ३ १ २

हध्वं युधोनर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ २ ॥

भावार्थः—(युधः) हे युद्ध करने वाले (नरः) नायको! तुम (संक्रन्दनेन) भले प्रकार विधिपूर्वक प्रहार करने में चतुर (अनिमिषेण) आलस्यवर्जित (जिष्णुना) जयशील (युत्कारेण) युद्ध करने वाले (दुश्च्यवनेन) न हटने वाले (धृष्णुना) दूसरों को धमका सकने वाले (इषुहस्तेन) बाण हाथ में लेने वाले (वृष्णा) बाण वृष्टि करने वाले (इन्द्रेण) इन्द्र के साहाय्य से (तत्) उस सामने आये शत्रुसैन्य को (जयत) जीतो और (तत्) उस को (सहध्वम्) अभिभूत=तिरस्कृत करो ॥ ऋ० १०।१०३।२ यजुः १७।३४ में भी है ॥२॥

अथ तृतीया—

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३

(१८४९) स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युध

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

इन्द्रो गणेन। सꣳसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्यू ३

१ २ ३ १ २ ३ १ २

ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३ ॥ [१]

भावार्थः—पूर्वमन्त्र में इन्द्र से जय करना कहा था, इस मन्त्र में इन्द्र के जयसाधनों का सामर्थ्य कहते हैं:—(सः) वह (इन्द्रः) राजा (इषुहस्तैः)

बाण हाथ में रखने वाले भटों सहित (सः) वह (निषङ्गिभिः) खड्गधारियों सहित (वशी) वशवर्ती भटों सहित (गणेन) समूह से (संस्रष्टा) संसर्ग रखने वाला (सः) वह (युधः) युद्ध करने वाला इन्द्र (संसृष्टजित्) संसर्ग युक्तों को जीतने वाला (सोमपाः) सोमपान करने वाला (बाहुशर्धी) बाहुबल वाला (उग्रधन्वा) धनुष् को उद्यत रखने वाला (प्रतिहिताभिः) शत्रुओं पर फेंकी हुई शक्ति इत्यादिकों से (अस्ता) फेंक करने वाला है । इस प्रकार के इन्द्र राजा के साहाय्य से जय करो यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है ॥ ऋ० १० । १०३ । ३ यजुः १७ । ३५ में भी है ॥ ३ ॥

अथ द्वितीय तृचस्य ऋष्यादिकं पूर्ववत् ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१८५०) बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहाऽमित्राँ
३ १ २ ३ १र २र ३ २
अपबाधमानः । प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो-
३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
युधाजयन् नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(बृहस्पते) हे बड़ों के पति ! इन्द्र ! राजन् ! आप (रथेन) संग्रामसंबन्धी रथ से (परिदीय) शत्रु पर चढ़िये (रक्षोहा) राक्षसों=अन्यायियों के हन्ता (अमित्रान् अपबाधमानः) शत्रुओं के बाधक (सेनाः) शत्रु सेनाओं को (प्रभञ्जन्) नष्ट करते हुवे (प्रमृणः) उग्रता से मारिये और (युधा) युद्धद्वारा (जयन्) जीतते हुवे (अस्माकम्) हम रथी वा अतिरथी वा महारथियों के (रथानाम्) रथों के (अविता) रक्षक (एधि) हूजिये ॥ ऋग्वेद १० । १०३ । ४ तथा यजुः १७ । ३६ में भी है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

२ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र
(१८५१) बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी
२र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सहमान उग्रः । अभिवीरो अभिसत्वा

३ १र २र ३ २३ १ २ ३ २
सहौजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥ २ ॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र ! राजन् ! (बलविज्ञायः) बल का जानने वाला (स्थविरः) पूर्ण हृष्टपुष्टाङ्ग (प्रवीरः) उत्तम कक्षा का वीर (सहस्वान्) शत्रुओं के तिरस्कार का सामर्थ्य रखने वाला (वाजी) बलवान् वा अन्नादि सामग्री साथ रखने वाला (सहमानः) शत्रुओं पर प्रभाव डालने वाला (उग्रः) बल को उगलने वाला (अभिवीरः) अपने सब ओर वीरों का रखने वाला (अभिसत्वा) अपने सब ओर युद्धविद्याचतुर रक्षकों का रखने वाला (सहौजाः) ओजस्वी (गोवित्) इन्द्रियों के सामर्थ्य को पाने वाला तू (जैत्रं रथम्) विजयी रथ पर (आतिष्ठ) सवार हो ॥ ऋग्वेद १० । १०३ । २ यजुः १७ । ३७ में भी है ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
(१८५२) गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्त-
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मोजसा । इमᳬ सजाता अनुवीरयध्वमिन्द्रᳬ
३ २ ३ १ २
सखायो अनुसᳬ रभध्वम् ॥ ३ ॥ [२]

भावार्थः—(सजाताः) हे समान आयु के वीरो ! (सखायः) मित्रो ! योद्धाओ ! तुम (गोत्रभिदम्) पहाड़ों के तोड़ने वाले (गोविदम्) इन्द्रियों की शक्ति से सम्पन्न (वज्रबाहुम्) शस्त्रादि हाथ में धारण करने वाले (जयन्तम्) जय करते हुवे (अज्म) सामने आते शत्रुबल को (ओजसा) बल से (प्रमृणन्तम्) अत्यन्त नष्ट करते हुवे (इमम्) इस (इन्द्रम्) इन्द्र राजा के (अनुवीरयध्वम्) अनुसारी होकर वीरता दिखाओ (अनुसंरभध्वम्) अनुकूल होकर दौड़ो ॥ ऋ० १० । १०३ । ६ यजुः १७ । ३८ में भी ॥ ६ ॥

अथ तृतीयतृचस्य—ऋष्यादिकं पूर्ववत् ॥ तत्र प्रथमा—

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
(१८५३) अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः

३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३१२
शतमन्युरिन्द्रः । दुश्च्यवनः पृतनाषाड-
३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
ऽयुध्योऽ३ऽस्माकꣳ सेना अवतु प्रयुत्सु ॥ १ ॥

भावार्थः—(गोत्राणि) पर्वतवृन्दों में (सहसा) बल से (अभि) सम्मुख (गाहमानः) घुस जाता हुआ (अदयः) शत्रुओं पर दया न करने वाला (वीरः) वीर (शतमन्युः) अत्यन्त क्रोध वाला (दुश्च्यवनः) न हटने वाला (पृतनाषाड्) शत्रुसेनाओं का तिरस्कार करने वाला (अयुध्यः) शत्रु जिस से न लड़ सकें (इन्द्रः) ऐसा सेनापति (अस्माकम्) हमारी (सेनाः) सेनाओं को (प्रयुत्सु) संग्रामों में (अवतु) रक्षित करे ॥ ऋ० १० । १०३ । ७ यजुः १७ । ३९ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीया—

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८५४) इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः
३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् २

भावार्थः—(अभिभञ्जतीनाम्) सामने मारती हुई (जयन्तीनाम्) विजय करती हुई (आसाम्) इन (देवसेनानाम्) धर्मात्मा देवों की सेनाओं का (नेता) सेनापति=नायक (इन्द्रः) इन्द्र (पुरः) आगे (एतु) आवे (बृहस्पतिः) समूह का पति बृहस्पतिसंज्ञक (दक्षिणा) दाहिनी ओर जावे (यज्ञः) संगमनीय यज्ञसंज्ञक सेनानी उत्तर में जावे (सोमः) सेना का प्रेरक सोम संज्ञक पीछे की ओर जावे (मरुतः) मरने से न डरने वाले मरुद्गण शूरवीर (अग्रम्) आगे (यन्तु) जावें ॥

इस में प्राकृत देवाऽसुरसंग्राम के दृष्टान्त से युद्धविद्या का उपदेश है। जैसे आकाश में अन्धकार मेघ आदि दुष्ट असुरों के विनाशार्थ इन्द्र देवसेना के सहित युद्ध करता है, उस में मरुत्=वायुविशेष और सोम बृहस्पति तथा इन्द्र उचित स्थान पर युद्ध करते हैं, वैसे ही मनुष्यों के युद्धों में भी व्यूह-रचना करके विधिबद्ध युद्ध होना चाहिये ॥ ऋग्वेद १० । १०३ । ८ यजुः १७ । ४० में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३

(१८५५) इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शर्ध उग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो

३ २ ३ १ २ ३ १ २

देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ३ ॥ [३]

भावार्थः—(इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् (वृष्णः) कामनापूरक वा शस्त्रवर्षक वा मेघवर्षक (वरुणस्य) वरणीय (राज्ञः) राजा का और (आदित्यानाम्) सूर्यवत्प्रकाशमान तेजस्वी वीरों (मरुताम्) मरणार्थ उद्यत धीर योद्धाओं का (शर्धः) बल (उग्रम्) उग्र होवे । (महामनसाम्) बड़े मन वाले (भुवनच्यवानाम्) भुवनों को भगा देने वाले (देवानाम्) युद्धविद्याप्रकाशक (जयताम्) जीतते हुवों का (घोषः) जयघोष (उदस्थात्) उठे ॥

जिस प्रकार आकाश में लोक लोकान्तर परस्पर अपनी मर्यादा की रक्षा में जुटे हुवे युद्धार्थ उद्यत रहते हैं इसी प्रकार वीर राजवर्ग को दैवयुद्ध, विजय और रक्षा की शिक्षा ग्रहण करके वर्त्तना चाहिये ॥ ऋ० १० । १०३ । ९ यजुः १७ । ४१ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थसूक्तस्य—ऋष्यादिकमुक्तवत् ॥

तत्र प्रथमा—

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३

(१८५६) उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां

१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र

मनांसि । उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्र-

२र ३ १ २ ३ १ २

थानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ १ ॥

भावार्थः—(मघवन्) हे धनवन् ! (मामकानाम्) मेरे (सत्वनाम्) वीर प्राणियों के (आयुधानि) तलवार आदि शस्त्रों को (उद्धर्षय) हर्ष

पूर्वक उद्यत कराय (मनांसि) उन के चित्तों को (उत्) हर्ष से उभार (वृत्र-हन्) हे दुष्टदस्युनाशन । (वाजिनाम्) घोड़ों के (वाजिनानि) वेगों को (उत्) हर्ष से उभार (जयताम्) जीतते हुवे (रथानाम्) संग्रामस्थ रथों के (घोषाः) घोष (उद् यन्तु) ऊपर को उठें ॥ ऋ० १० । १०३ । १० यजुः १७ । ४२ में भी ॥ १ ॥ अथ द्वितीया—

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२

(१८५७) अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या

२२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२

इषवस्ता जयन्तु । अस्माकं वीरा उत्तरे

३ १ २ ३ १ २

भवन्त्वस्माँ उ देवा अवताहवेषु ॥ २ ॥

भावार्थः—(इन्द्रः) इन्द्र राजा (अस्माकम्) हम धार्मिक पुरुषों को (समृतेषु ध्वजेषु) शत्रुसैन्य में ध्वजायें पहुंचने पर रक्षक हो । (याः) जो (अस्माकम्) हमारे (इषवः) बाण हैं (ताः) वे (जयन्तु) जीतें (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर (उत्तरे) अगुवा (भवन्तु) होवें (उ) और (देवाः) देवता (आहवेषु) संग्रामों में (अस्मान्) हमारी (अवत) रक्षा करें ॥ ऋग्वेद १० । १०३ । ११ यजुः १७ । ४३ में भी ॥ २ ॥ अथ तृतीया—

३ १२ २२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३

(१८५८) असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा

१ २ १ ३ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २

स्पर्धमाना । तां गूहत तमसाऽपव्रतेन यथैतेषा-

३ २ ३ २ ३ २

मन्यो अन्यं न जानात् ॥ ३ ॥ [४]

भावार्थः—(मरुतः) हे मरुतो ! वीरो ! (असौ) यह (या) जो (परेषाम्) शत्रुओं की (सेना) सेना (ओजसा) बल से (स्पर्धमाना-) स्पर्धा करती हुई (नः) हमारे (अभ्येति) संमुख आरही है (ताम्) उस को (अपव्रतेन) काम बन्द करने वाले (तमसा) अन्धकार से (गूहत) ढकदो (यथा) जैसे (एतेषाम्) इन शत्रुओं में (अन्यः अन्यम्) एक दूसरे को (न) नहीं (जानात्) जान पावे ॥

अपने वीरों को चाहिये कि जब शत्रुसैन्य सामने चढ़ा आता हो तो अस्त्रों के प्रयोग से ऐसा घना अन्धकार शत्रुसेना में फैलादें कि वे परस्पर एक दूसरे को देख न सकें, अन्धे से होजावें ॥ यजुः १७ । ४७ में भी ॥ ३ ॥

अथ षष्ठ्मखण्डस्य—ऋष्यादिकं पूर्वसूक्ततुल्यम् । तत्र प्रथमा—

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८५९) अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गा-
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
न्यप्वे परेहि । अभिप्रेहि निर्दह हृत्सु शोकै-
३ २ ३ २ ३ १ २
रन्धेनाऽमित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ १ ॥

भावार्थः—(अप्वे) भय ! तू (अमीषाम्) इन हमारे उपस्थित शत्रुओं के (चित्तम्) चित्तों को (प्रतिलोभयन्ती) मुग्ध करता हुवा, (अङ्गानि) इन के देहों को (गृहाण) जकड़ कर पकड़ ले (हृत्सु) हृदयों को (शोकैः) शोकों से (निर्दह) निरा फूंक दे (परेहि) दूर भगा (अभिप्रेहि) व्याप जा, (अमित्राः) शत्रु लोग (अन्धेन) गहरे (तमसा) अन्धकार से (सचन्ताम्) संयुक्त हों ॥

निरुक्त ६ । १२, ९ । ३३ महीधरभाष्य इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १०।१०३।१२ यजुर्वेद १७।४४ में भी ॥१॥ अथ द्वितीया—अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८६०) प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथाऽसथ ॥२॥

भावार्थः—(नरः) हे वीर पुरुषो ! (प्रेत) उत्कृष्टता से बढ़प्पन से जाओ और (जयत) जीतो शत्रुओं को (इन्द्रः) सेनापति (वः) तुम को (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे (यथा) जिस प्रकार (अनाधृष्याः) दूसरों से न दबने वाले (असथ) होओ, उस प्रकार (वः) तुम्हारी (बाहवः) भुजाएँ (उग्राः) उग्र (सन्तु) होवें ॥ ऋ० १० । १०३ । १३ यजुः १७ । ४६ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया—इषुर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३
(१८६१) अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते । गच्छा

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
ऽमित्रान्प्रपद्यस्व माऽमीषां कंचनोच्छिषः ॥३॥ [५]

भावार्थः—(ब्रह्मसंशिते) धनुर्वेदज्ञ ब्रह्मा से तीक्ष्ण किये हुये (शरव्ये) हिंसा में अकुण्ठित बाण ! तू (अवसृष्टा) फेंका वा चलाया हुवा (परापत) शत्रुओं पर गिर (अमित्रान्) शत्रुओं को (गच्छ) प्राप्त हो (प्रपद्यस्व) उन के हृदय आदि को बींध (अमीषाम्) इन शत्रुओं में से (कंचन) किसी को (मा) मत (उच्छिषः) शेष छोड़=निःशेष करके नष्ट कर ॥ ऋ० ६ । ७५ । १६ यजुः १७ । ४५ में भी ॥ ६ ॥

अथ षष्ठसूक्ते प्रथमायाः—प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
(१८६२) कङ्काः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्न-

३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३
मसावस्तु सेना । मैषां मोच्यघहारश्चनेन्द्र

१ २ ३ १ २ ३ १ २
वयांसि श्येनाननु संयन्तु सर्वान् ॥ १ ॥

भावार्थः—(कङ्काः) कच्चा मांस खाने वाले (सुपर्णाः) पक्षिगण (एनान्) इन शत्रुओं को जो हमने मारे हैं (अनुयन्तु) प्राप्त होजावें (असौ) यह (सेना) शत्रु की सेना (गृध्राणाम्) गिद्धों का (अन्नम्) अन्न (अस्तु) हो जावे (इन्द्र) हे सेनापते ! (एषाम्) इन शत्रुओं में (चन) कोई भी (अघहारः) पापी (मा) न (मोचि) छूटने पावे, किन्तु (एनान्) इन (सर्वान्) सब को (वयांसि) मांसभक्षी पक्षी (अनु संयन्तु) पूर्ण प्रकार से प्राप्त हो जावें ॥१॥

अथ द्वितीयायाः—अप्रतिरथो मित्रो ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ २
(१८६३) अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि ।

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥२॥

भावार्थः—(वृत्रहन्) दुष्टदस्युनाशक ! (मघवन्) यज्ञादि परोपकार

वाले ! (इन्द्र) राजन् ! वा सेनापते ! आप (च) और (अग्निः) अग्नि (उभौ) दोनों (ताम्) उस (अस्मान् अभि शत्रुयतीम्) हमारे सामने शत्रुता करती हुई (अमित्रसेनाम्) शत्रु की सेना को (प्रति) सामना करके (दहतम्) फूंक दो ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः—अप्रतिरथः पायुर्भारद्वाज ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिरदितिश्च देवते । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८६४) यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखाइव ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु ।
३ २ ३ १ २
विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ३ ॥ [६]

भाषार्थः—(यत्र) जिस संग्राम में (विशिखाः) मुण्डित (कुमाराः) बालक (इव) से (बाणाः) बाण (संपतन्ति) एक पर दूसरे के फेंके सर्वतः गिरते हैं (तत्र) उस संग्राम में (ब्रह्मणस्पतिः) बड़ों का बड़ा पालक (अदितिः) अन्यों से न चोट पाया हुवा इन्द्र सेनानी (नः) हमारे लिये (शर्म) सुख को (यच्छतु) देवे (विश्वाहा) जिस से सब दिन (शर्म) सुख को (यच्छतु) देवे ॥

महीधर ने भी यजुः १७ । ४८ में इस मन्त्र के ब्रह्मणस्पतिः और अदितिः पदों को इन्द्र का विशेषण ही माना है ॥ ऋ० ६ । ७५ । १७ में भी ॥ ३ ॥

अथ सप्तमतृचे प्रथमाद्वितीययोः अप्रतिरथः ऋषिः शासो भारद्वाजो वा । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२उ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
(१८६५) वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याऽभिदासतः ॥१॥

भावार्थः—(वृत्रहन्) हे शत्रुनाशन ! (इन्द्र) इन्द्र ! (रक्षः) राक्षसगण को (वि-जहि) नष्ट कर (मृधः) शत्रुओं को (वि) नष्ट कर (वृत्रस्य) रोकने वाले (अभिदासतः) सामना करने और हिंसा करने वाले (अमित्रस्य) शत्रु को (हनु) दोनों गलाफुवों को (वि-रुज) फाड़ डाल और (मन्युम्)

उस के क्रोध को (वि) नष्ट कर॥ ऋ०१० । १५२ । ३ में भी ॥१॥ अथ द्वितीया-

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१८६६) वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥ २ ॥

भाषार्थः-(इन्द्र) हे इन्द्र ! (नः) हमारे (मृधः) शत्रुओं को (विजहि) विनष्ट कर (पृतन्यतः) युद्ध चाहने वालों को भी (नीचा यच्छ) नीचे गिरा (यः) जो (अस्मान्) हम को (अभिदासति) मारता है उस को (अधरम्) नीचे (तमः) अन्धेरे=मृत्यु को (गमय) पहुंचा ॥ ऋ०१०।१५२। ४ यजुः ८ । ४४ तथा १८ । ७० में भी ॥२॥ अथ तृतीयायाः-विराड्जगती छन्दः ॥

१ २ ३१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १२३ २
(१८६७)इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ।
१ २ ३ २उ १ २ १२३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणाꣳ सहो महत्
॥ ३ ॥ [७]

भाषार्थः-(इन्द्रस्य) वीर पुरुष की (बाहू) दो भुजाएं (स्थविरौ) मोटी (युवानौ) जवान (अनाधृष्यौ) शत्रुओं से न धमकाई जाने वाली (सुप्रतीकौ) देखने में सुन्दर (असह्यौ) शत्रु से न सही जाने वाली होती हैं (याभ्याम्) जिन बाहुओं से (असुराणाम्) दुष्ट दस्यु राक्षसों का (महत्) बड़ा (सहः) बल (जितम्) जीता जाता है (योगे) अवसर [संग्राम] (आगते) आने पर (तौ प्रथमौ) उन भुजाओं को पहले (युञ्जीत) काम में लावे ॥ ३ ॥

अथाऽष्टमसूक्तस्य प्रथमायाः-अप्रतिरथः पायुर्वा भारद्वाज ऋषिः । सोमो वरुणश्च देवते । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(१८६८) मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजाऽमृतेनानु-
३१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वस्ताम् । उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वाऽनु देवा मदन्तु १

भाषार्थः-हे राजन् ! (ते) तेरे (मर्माणि) जिन स्थानों में चोट आने से मर जावे उन मर्म स्थलों को (वर्मणा) कवच से (छादयामि) छादन करता

हूं (सोमः) सोम (राजा) ओषधिराज (त्वा) तुझ को (अमृतेन) अमृत से (अनुवस्ताम्) बसावे (वरुणः) वरुण देव (ते) तेरे (उरोः) बहुत से (वरीयः) बहुत सुख को (कृणोतु) करे (जयन्तम्) जीतते हुवे (त्वा) तुझ को (देवाः) देवता (अनुमदन्तु) उत्साहित करें ॥ ऋग्वेद ६ । ७५ । १८ यजुः १६ । ४६ में भी ॥ १ ॥ अथ द्वितीयायाः—ऋषिः देवता चोक्ते एव । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २

(१८६९) अन्धा अमित्रा भवताऽशीर्षाणोऽहय इव ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरं वरम् ॥२॥

भावार्थः—(अमित्राः) हे दुष्ट दस्यु शत्रुओ ! तुम (अशीर्षाणः) शिर कटे वा फणकटे (अहयइव) सांप से (अन्धाः) अन्धे वा मरे (भवत) होजावो (तेषाम्) उन (अग्निनुन्नानाम्) अस्त्रप्रयुक्त अग्नि से फुंके हुवे (वः) तुम में से (वरम्, वरम्) अच्छे अच्छे को छांट छांट कर (इन्द्रः) राजा (हन्तु) मारे ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः—अप्रतिरथः ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १

(१८७०) यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति । देवास्तं

२र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ ३र

सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम् ॥३॥ [८]

भावार्थः—(स्वः) अपना=हमारा (यः) जो (अरणः) अधर्मी (च) और (यः) जो (निष्ट्यः) दूरस्थ गुप्तरूप से (नः) हम को (जिघांसति) मारना चाहता है (तम्) उस को (सर्वे) सब (देवाः) देवता (धूर्वन्तु) मारें और (मम) मेरा (ब्रह्म) धनुर्वेद (वर्म) कवच (अन्तरम्) बचाव हो, (शर्म) सुखदायी (वर्म) कवच (मम) मेरा (अन्तरम्) बचाव हो ॥ ऋग्वेद ६ । ७५ । १९ में भी ॥ ३ ॥ अथ नवमसूक्तस्य प्रथमायाः—अप्रतिरथ ऐन्द्रापत्य ऋषिः । इन्द्रोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३

(१८७१) मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत

१ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २

आजगन्था परस्याः । सृकं संशाय पविमिन्द्र

३ १ २र ३ १र २र
तिग्मं वि शत्रून्त्स्ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ १ ॥

भाषार्थः—(इन्द्र) राजन् ! आप (मृगः न) सिंह के समान (भीमः) शत्रु को भयदायक (कुचरः) पृथिवी पर विचरने वाले (गिरिष्ठाः) पर्वतस्थ वा दुर्ग=क़िले में स्थित (परस्याः) अन्य दिशा से (परावतः) दूर से (आ-जगन्थ) आते हो और आकर (सृकम्) चलाऊ (तिग्मम्) तीक्ष्ण (पविम्) वज्र को (संशय) भले प्रकार से पैना कर तेज करके (शत्रून्) अधर्मी दुष्ट दस्युओं को (वि-ताढि) विशेष करके ताडित करो और (मृधः) युद्ध करते हुवे दुष्टों को (वि-नुदस्व) विशेष करके दूर भगाओ ॥

ज्वालाप्रसाद भार्गव भाष्यकार की धृष्टता पर आश्चर्य होता है कि उन्होंने इस मन्त्र के व्याख्यान में मूलविरुद्ध निर्मूल नृसिंहादि अवतारों का वर्ण कर डाला ॥

न तो ऊपर संस्कृतभाष्य में लिखे निरुक्त १ । २० में अवतार का वर्णन है । न ऋग्वेद १० । १८० । २ में सायणाचार्य ने अवतार बताये । न महीधर ने यजुर्वेद १८ । ७१ में अवतारपरक व्याख्या की और नहीं अथर्ववेद ७ । ८ । ८४ में आये इस मन्त्र पर सायणाचार्य ने अवतार की चर्चा तक की है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः—अप्रतिरथ ऋषिः राहूगणो गोतमो वा ।
विश्वे देव देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(१८७२) भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २र
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२॥

भावार्थः—(यजत्राः) हे यजनीय ! (देवाः) देवो ! हम आप के प्रसाद से (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) अच्छा वचन (शृणुयाम) सुनें (अक्षभिः) आँखों से (भद्रम्) अच्छा दृश्य (पश्येम) देखें (स्थिरैः) दृढ (अङ्गैः) हस्त चरणादि अङ्गों से और (तनूभिः) देहों से (यत्) जितनी (देवहितम्) ईश्वरस्थापित ११६ व १२० वर्ष की (आयुः) आयु है, उस को (व्यशेमहि) विशेष करके भोगें वा पावें ॥ ऋ० १ । ८९ । ८ यजुः २५ । २१ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः—ऋषिदेवते उक्ते । स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१८७३) स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
३ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु

३ २ ३ २३ १ २
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ३ ॥ [९]

इति नवमः प्रपाठकः ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(वृद्धश्रवाः) जिस का सब से बढ़कर यश है वा सब से अधिक वेदमन्त्रों में श्रवण है वह (इन्द्रः) इन्द्रदेवराज (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुख कल्याण वा अविनाश को (दधातु) धारण करे। (विश्ववेदाः) सब का लाभ कराने वा ज्ञान कराने वाला वा जानने वाला (पूषा) पोषण करने वाला पूषा देव (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुख कल्याण वा अविनाश को धारण करे। (अरिष्टनेमिः) जिस की नेमि=नीति वा चाल रोगरहित है वह (तार्क्ष्यः) विद्युद्विशेष देव (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुख कल्याण वा अविनाश को धारण करे (बृहस्पतिः) बृहस्पतिसंज्ञक, बड़े २ सूर्यादि का भी धारक पालक पोषक देवविशेष (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुख कल्याण वा अविनाश को परमेश्वर की कृपा से धारण करे ॥

ईश्वरपक्ष में—इन्द्रपूषा तार्क्ष्य और बृहस्पति सब उसी के गुणकृत नाम हैं ॥

(स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु) इतना पाठ दोवार ग्रन्थ समाप्तिसूचनार्थ है ॥

इति श्रीमत्कश्यपवंशावतंस श्रीमान् पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र
परीक्षितगढ़ (ज़िला—मेरठ) निवासी तुलसीराम स्वामिकृत
उत्तरार्चिक सामवेदभाष्य में बाइसवां अध्याय समाप्त हुवा॥२२॥

यस्य निश्वसितं वेदा यो वेदाञ्जगतेऽखिलान् ।
निर्ममे तमहं वन्दे परमात्मानमव्ययम् ॥ १ ॥
आगमप्रवणश्चाहं नाऽपवाद्यः स्खलन्नपि ।
नहि सद्वर्त्मना गच्छन्स्खलितेष्वप्यपोद्यते ॥ २ ॥

अर्थ—जिस के निश्वास वेद हैं, जो जगत् के हितार्थ सब (चारों) वेदों को रचता है, उस अविनाशी परमात्मा को प्रणाम करता हूं ॥१॥ और वेद के आगे झुकता हुवा कहीं मैं गिर पड़ूं (कोई भूल भाष्य में कर पाऊं) तौ भी कुछ निन्दनीय नहीं, क्योंकि उत्तम मार्ग पर चलता हुवा पुरुष यदि कहीं रपट कर गिर पड़ता है, तौ उस की निन्दा वा अपवाद नहीं किया जाता है ॥२॥

उत्तरार्चिकं समाप्तम्

समाप्ता चैषा सामवेदसंहिता ॥

ओं शम्

श्री पं० तुलसीरामस्वामिकृत

पुस्तकें

१—मनुस्मृति भाषानुवाद सहित ६ ठी वार

जिस में ३० पुराने भिन्न २ नगरों से प्राप्त हुवे पुस्तकों से मिलान करके मुम्बई के २५) के मनु के एडीशन का सार लेकर श्लोकों, पदों, वाक्यों और अर्थों का विवेचन करके छापा गया है और मनु में मिलावटी श्लोकों और खोये गये श्लोकों की भी खोज करके पता लगाया गया है। मूल्य १) सजि० १।)

२—दर्शनों का भाषानुवाद

प्रिय पाठक ! आर्यावर्त्त के भूषण ऋषि महर्षियों ने अपने दीर्घकालीन तप और अनुभव के द्वारा पवित्र देववाणी में जिन २ महार्ह रत्नों का सङ्गठन किया था, सर्वसाधारण तक उन का प्रकाश पहुंचाने के लिये श्री गोतमादिकृत दर्शनों का अनुवाद समर्पित करते हैं। इस में प्रथम सूत्र का शब्दार्थ, पुनः वात्स्यायनादि भाष्यों के अनुसार ही प्रायः उनका व्याख्यान किया है। इस अनुवाद के द्वारा सूत्रकार और भाष्यकार का आशय समझने में पाठकों को सहायता मिलेगी। न्यायदर्शन मूल्य ॥) बढ़िया ॥≈) ऐसा ही योगदर्शन भाषानुवाद ॥) सजिल्द ॥−) सांख्यदर्शन भाषानुवाद सजिल्द १) रुपया ॥ वैशेषिकदर्शन भाषानुवाद ॥=) सजिल्द ॥≤) आना ॥ वेदान्तदर्शन भाषानुवाद छप रहा है ॥ मूल्य १)

३—भगवद्गीता भाषानुवाद

इस में मूल श्लोक, भाषा टीका, व्याख्यान पूर्वक साइज २६ पौंड चिकने बहुत उज्ज्वल कागज़ पर छपा है। यह नवीन टीका देखने योग्य है। मूल्य ।≈

४—श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य—भाषानुवाद

प्रायः टीकाकार लोग मूल के पदों का अर्थ अपनी व्याख्या में मिला देते हैं, जिस से उस पद का कितना अर्थ है यह जानना कठिन हो जाता है। इस लिये इस में विशेष व्याख्यान पृथक् है। यदि वह मन्त्र वेद का है तो उस का पता और वेद में तथा उपनिषद् में पाठभेद है तो क्या और ऐसे मन्त्र पर मूल में उदात्तादिस्वर भी छाप दिये गये हैं। उत्थानिका पद २ का प्रायः एक शब्द ही में सरल अर्थ, विशेष व्याख्यान, भावार्थ अन्य टीकाओं के कहीं २ खैंचतान के दोष, अपने अर्थ की विशेषता। इत्यादि अत्युत्तम रीति से वर्णित है, इस पर भी मूल्य केवल ।) आना ॥